फोन : 204

डॉ० महावीर सिंह
एम०ए० (हिन्दी, अंग्रेजी, राजनीति विज्ञान)
डी०फिल्०
हिन्दी विभाग

अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अतर्रा 210201 (बाँदा) उ०प्र०

प्रमाणित किया जाता है कि **श्रीमती सन्तोष द्विवेदी** ने मेरे निर्देशन में 200 दिन रहकर **"घनानंद और बोधा के काव्य में रूप सौन्दर्य एवं प्रेम एक तुलनात्मक दृष्टि"** शीर्षक शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया। यह इनकी मौलिक रचना है।

(डॉ० महावीर सिंह)

रीडर, हिन्दी विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज,
अतर्रा

Evaluated
and returned
by Prof P.K. Tandon
of Alld.

घनानन्द और बोधा के काव्य में रूप-सौन्दर्य एवं प्रेम : एक तुलनात्मक दृष्टि

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच०डी०

उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशक :

डॉ० महावीर सिंह

एम० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी, राजनीति विज्ञान)
डी० फिल्०

रीडर, हिन्दी विभाग

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज

शोध कर्त्री :

सन्तोष द्विवेदी

एम० ए०, बी० एड्०
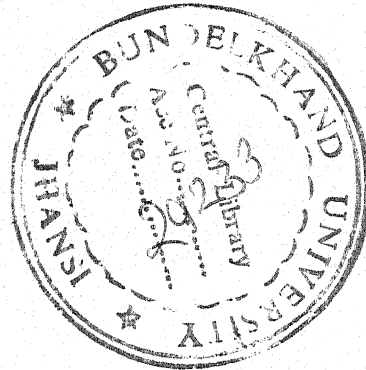
घनानन्द और बोधा के काव्य में रूप-सौन्दर्य एवं प्रेम:

एक तुलनात्मक दृष्टि

विषय-अनुक्रमणिका

भू मि का

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः की उद्घोषणा में रचनाकार की भाव प्रवणता, कल्पनाशीलता एवं सहृदय संवेद्य गुणों के साथ ही उसे प्रजापति, स्वयम्भू एवं क्रान्ति दृष्टा का उल्लेख हुआ है। कहना नहीं होगा कि हृदय की भाव प्रवणता विगलित वेद्यान्तर के रूप में काव्य का आकार ग्रहण करती है और उसकी अविछिन्न परम्परा चलती रहती है, ऐसे रस सिद्ध काव्य की अनुशंसा या समीक्षा, आलोचक, देशकाल पात्र या काव्य शास्त्रीय मापदण्डों के अनुसार करता है, इस प्रकार सामान्य जनता की चित्त प्रवृत्तियां का प्रतिफलन जिस साहित्य में एक ही प्रकार से हुआ है, उसका विश्लेषण एक धारा के रूप में करना ही साहित्येतिहास की परम्परा रही है।

हिन्दी साहित्य को आदि, भक्ति, रीति एवं आधुनिक काल में बाँटकर प्रत्येक कालखण्ड के कवि, प्रवृत्तियां, काव्यशास्त्र आदि की दृष्टि से अलोड़न–विलोड़न, अनुशीलन–परिशंसन शोध के क्षेत्र में बहुत हुआ है। सर्वाधिक कार्य, भक्ति ओर रीतिकाल में हुआ, क्योंकि अपने–अपने ढ़ग से दोनों प्रवृत्तियों ने मानव मन की विकृत मन का उदात्तीकरण या उजागर कर शमन करने का महत् कार्य किया है।

हिन्दी का उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल में अपने भोगे हुए यथार्थ का चित्रांकन जितनी विशदता से किया है, शृंगार रस को राजत्व की कोटि में स्थापित कर उसके अंग और उपांगो का वास्तविक और काल्पनिक रूप में बड़ी गहराई से वर्णन हुआ है, इसीलिए शोध कर्त्री ने काम, सौन्दर्य एवं रस के विवेचन हेतु इसकाल के उस खण्ड का चयन किया है, जिनका समग्र काव्य सौन्दर्य और रस का अक्षय कोष है, क्योकि इस धारा के कुछ विशिष्ट कवियों ने काम–प्रेम को व्यवहारिक जीवन में निकट से देखा ही नहीं, परिचय ही नहीं प्राप्त किया, अपितु उसे अपने जीवन में उतारकर उसे काव्यत्व से मण्डित किया है। हिन्दी साहित्य के इस कालखण्ड को रीतिमुक्त काव्य कहते हैं, जिसमें रूप और प्रेम की उद्दाम लालसा का निष्कपट भाव से वर्णन हुआ है

और इस क्षेत्र में घनानन्द और बोधा का एक विशिष्ट स्थान है, दोनों कवि तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रत रंग में डूबे, उतराये एवं उससे ईश्वर भक्ति की ओर अभिमुख हुए, इस विश्लेषण हेतु मैंने अपने शोध प्रबन्ध का शीर्षक 'घनानंद और बोधा के काव्य में रूप सौन्दर्य एवं प्रेम एक तुलनात्मक दृष्टि' रखा है। प्रस्तुत शोध प्रबंध षष्ठ अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय रीति मुक्त कविता तथा घनानंद–बोधा के परिचय से सम्बन्धित है, इस परिपेक्ष्य में रीतिकाव्य का स्वरूप, वर्गीकरण, प्रवृत्तियां प्रमुख कवियों के साथ आलोच्य कवियों का सामान्य परिचय दिया गया है। इस सम्बन्ध में कहा गया है, रीतिकाव्य वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्टि पद्धति अथवा नियमों को दृष्टि में रखकर की गयी हो, हिन्दी भाषा साहित्य के उत्तर मध्य काल में अनेक कवियों ने संस्कृत काव्य शास्त्र के नियमों की बंधी – बधायी परिपाटी पर अपने काव्य की रचना की, इसी कारण से उन्हें रीति कवि तथा उनके काव्य को रीति काव्य से बोधित किया गया।

रीतिकाल के काल विभाजन में पर्याप्त मतभेद है, लेकिन निष्कर्ष के आधार पर इसका समय 1700–1900 तक मानने में कोई हिचक नहीं, यह ऐसा समय है कि सभी विद्वान इस सीमावधि को स्वीकार कर लेते हैं।

रीति निरूपण के आधार पर रीतिकवियों के मुख्यतः दो वर्ग किये जा सकते हैं सर्वांग–निरूपक और विशिष्टांग निरूपक। काव्य लक्षण, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य की आत्मा, शब्द शक्ति, गुण दोष, रीति, अलंकार और छन्द का विवेचन अपने ग्रन्थों में किया – चिंतामणि, कुलपति, सूरतिमिश्र आदि ऐसे ही आचार्य हैं। विशिष्टांग निरूपक आचार्यों ने काव्य के सभी अंगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर रस, अलंकार एवं छन्द में से एक, दो अथवा तीनों का निरूपण एक अथव अनेक ग्रन्थों में किया। इनमें तोष, पद्माकर, मतिराम भूषण आदि हैं।

रीतिकालीन कविता के प्रसंग में विद्वानों ने तीन प्रकार का विवरण दिया है – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त। रीतिबद्ध शब्द के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार रीतिबद्ध रचना लक्षण और उदाहरण से युक्त होती है, परन्तु डॉ0 नगेन्द्र इस प्रकार की रचनाओं को रीतिबद्ध नहीं मानते, उनकी दृष्टि में रीतिबद्ध कवि वो हैं जिन्होंने रीतिग्रन्थों की रचना न करके काव्य सिद्धांतों या लक्षणों के अनुसार काव्य रचना की। अलंकार, रस, नायिका भेद, ध्वनि आदि उनके ध्यान में तो रहे हैं, परन्तु उनका प्रत्यक्षतः निरूपण इन कवियों ने नहीं किया वरन् उनके अनुसार उत्कृष्ट काव्य का सृजन किया वे कवि हैं आचार्य नहीं, इसलिए उन्हें रीतिबद्ध कवि मानना चाहिए। आचार्य मिश्र ऐसे ही कवियों को रीतिसिद्ध मानते हैं। रीति मुक्त ऐसे कवि हैं जो रीति का बंधन तोड़ना चाहते थे शास्त्र में गिनाई हुयी सूची तक ही सीमित रहना नहीं चाहते थे ये प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग संगठित करने के अभिलाषुक थे और ये कवि हैं, घनानंद, बोधा. आलम, ठाकुर, रसखान, द्विजदेव।

घनानंद नाम से बड़ी भ्रामक धारणा प्रचलित रही. आनंद, घनआनंद, आनंदघन तीन तरह के कवि मिलते हैं। कुछ विद्वान इन तीनों को एक मानते हैं जबकि ऐसा नहीं है ये तीनों अलग–अलग हैं।

घनानंद मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में खास कलम थे, सुजान नामक वेश्या पर अनुरक्त हुए परिणाम स्वरूप राज्य से निष्कासित किए गये, सुजान ने बेवफाई की वह साथ नहीं गयी परिणामस्वरूप वृन्दावन में जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और इनकी मृत्यु संवत् 1817 आषाढ़ रविवार को हुई।

बोधा कवि के नाम पर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, क्योकि एक बोधा रीतिबद्ध रचना करने वाले थे और दूसरे रीतिमुक्त रचनाकार थे गहन विवेचन के पश्चात् मै यह प्रमाणिकता से कह सकती हूँ कि बुद्धिसेन, खेतसिंह

के आश्रित थे जो बाँदा जिले के राजापुर नामक गाँव में पैदा हुए थे। राजा खेतसिंह स्नेहवश बुद्धिसेन को बोधा कहने लगे थे। सुभान नामक वेश्या से प्रेम किया छः माह के लिए देश निकाले का दण्ड मिला, वियोग से जलते कई शहरों की खाक छानी (इश्कनामा) तथा (विरहवारीश) की रचना की। विरहवारीश को सुनकर पन्ना नरेश खेत सिंह प्रसन्न हुए और सुभान के साथ रहने का आदेश दे दिया।

रीतिमुक्त कविता की प्रवृत्तियों के अर्न्तगत काव्य सिद्धांतों में भिन्नता, प्रेम की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति, श्रृंगार का संयोग पक्ष, वियोग की प्रधानता, प्राचीन परम्परा का त्याग, रीतिमुक्त कवियों की भक्ति भावना, लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति, अरबी-फारसी काव्य से प्रभावित, प्रकृति चित्रण इन सभी विशेषताओं का गहन विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में रूप सोन्दर्य एवं प्रेम का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया गया है 'सोन्दर्य' सुन्दर की भाववाचक संज्ञा है जिसका अर्थ होता है अच्छी तरह से आर्द्र करने वाला, मन को प्रसन्न करने वाला, सुकरात का मानना था कि सुन्दर और शिव एक हैं अतः सुन्दर ही जीवन सापेक्ष है, पाश्चात्य विचारकों के अनुसार सौन्दर्य सामाजिक जीवन के यथार्थ का ऐसा प्रतिबिम्ब है जो हमें आनन्द ही नहीं देता प्रगतिशील होने की प्रेरणा भी देता है।

भारतीय विचारकों का मत है कि हमारा मन ही 'सुम' अनुभूति का दाता होने से सुन्दर है एवं जिस वस्तु या विभाव द्वारा आकर्षित होकर मन में अनुभूति विभावित होती है उसे सुन्दर कहा जाता है। अतः उस वस्तु या विभाव के आकर्षण को ही सुन्दर कह सकते हैं इसलिए मनोहारिता, मनोज्ञता शब्द सौन्दर्य के पयार्यवाची समझे जाते हैं। सौन्दर्य के दो अधिष्ठान हैं विषयगत और विषयीगत, कुछ लोगों की मान्यता है कि मन विषयी है और वस्तु विषय

जबकि कॉलरिज विषय और विषयी को एक ही प्रक्रिया के दो रूप मानते हैं, सैद्धांतिक दृष्टि से विषय और विषयी का, ज्ञेय और ज्ञाता का अभेद सिद्ध किया जा सकता है लेकिन व्यवहार दृष्टि से दोनों में अन्तर है। प्रोफेसर दुकासे का मत है कि सौन्दर्य वस्तु का गुण है और इसकी सार्थकता विषयी के हृदय में आनन्द उत्पन्न करने में है। सौन्दर्य न केवल विषयगत है और न केवल विषयीगत वह विषय विषयीगत है। विषयी अपने अहम को, अपनी सांसारिक उलझनों को भूलकर सुन्दर वस्तु के साथ जितना तादात्म्य कर लेता है उतना ही सुन्दरता का आनन्द उठाता है। साहित्य में सौन्दर्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है, अनुभूति का सम्बन्ध कवि–कलाकार से है और सामाजिक पाठक दर्शक से भी। कवि–कलाकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को (जो उसके मन में चतुर्दिक व्याप्त सौन्दर्य से जागती है) अपनी अभिव्यक्ति के अनुकूल माध्यम से व्यक्त करता है तथा दर्शक, पाठक भी अपनी अनुभूति की तीव्रता की सापेक्षता से उससे रस ग्रहण करते हैं। शृंगार में जिस सौन्दर्य का चित्रण सामान्यत: हुआ है, वह मानव रूप का सौन्दर्य है। इसमें भी वह अधिकतया स्त्री रूप–सौन्दर्य इसका मूल कारण था सौन्दर्य में दिव्यता एवं अलौकिकता।

सृष्टि की दित्त्व प्रसूतियों में परस्परिक प्रत्याकर्षण एवं एकत्त्व स्थापित करने की अभिलाषा के कारण ही संसार के सभी व्यापार और व्यवहार चल रहे हैं, एकत्त्व–प्राप्ति की सर्वाधिक प्रबल इच्छा का नाम प्रेम है। प्रेम के मूल में **'काम'** सिद्धांत को मानने वालों में **'फ्रायड'** ने यौनि–भावना को विश्व के समस्त क्रिया–कलापों का मूल माना है, पाश्चात्य विचार कहीं न कहीं इस विचार से अवश्य प्रभावित हैं। भारतीय विद्वानों ने **'काम'** को सत्त्व गुण समन्वित करके उसे समस्त सद्‌गुणों को उत्पन्न करने वाला साहित्य क्षेत्र का स्वामी बताया है। उप्त, यत्त, ललित, दलित, मिलित, कलित, छलित, चलित, क्रान्त, विह्त, गलित, संतृप्त प्रेम के द्वादश भेद हैं – इन सभी का विवेचन है।

तृतीय अध्याय – घनानंद और बोधा के काव्य में रूप सौन्दर्य से

सम्बन्धित है – घनानंद और बोधा दोनों रीतिमुक्त कवियों ने केश–भाल, नेत्र, कटाक्ष, नाक, दाँत, मुखमण्डल, उरोज, उदर, पीठ, कटि, पिण्डली, चरण के वर्णन जीवन्त रूप चित्रित किये हैं। घनानंद **'सुजान'** पर अनुरक्त हैं तो बोधा **'सुभान'** पर – सौन्दर्य के सूक्ष्म वर्णन में प्रभावोत्पादकता, कान्ति, तरल रूप सौन्दर्य, अंग दीप्ति, लज्जा, यौवनोन्माद, अन्तः सौन्दर्य की व्यापक चर्चा है। कवियों ने अंगो की कांति, उज्ज्वलता, अरूणाई, सौन्दर्य, तरूनाई, सरसता, सुकुमारता, मधुरता, ताजगी एवं नवीनता, दीवाली सा उत्साह होना, आदि बातों को तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है। नर्तन के समय अंगों की थिरकन, मर्मस्पर्शी अभिनय से प्रेमी कवियों का मन मोहित होकर भाव विह्वल हो जाता है। प्रेयसियों का सौन्दर्य, भावुक कवियों की अन्तः सत्ता पर इस कदर छाया है कि मन, प्राण, हृदय, जीव सभी सुजान–सुभान के आधीन हो गये हैं। इस सोन्दर्य वर्णन में एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि इन कवियों ने प्रचलित परम्पराओं से अलग हटकर सारे चित्र चित्रित किये, सोन्दर्य चित्रण में नई सोच थी, वर्णन के रंग अलग, सोन्दर्य परक दृष्टि भाव–भावित है, बुद्धि बाधित नहीं, आन्तरिकता से युक्त उनका सोन्दर्य चित्रण ऐसा तारल्य प्रस्तुत करता है, जो अपनी अनूठी चमक से दे दीप्यमान हो उठा है। अन्त में घनानंद और बोधा की सोन्दर्य दृष्टि में साम्य और वेषम्य का व्यापक विवेचन है। मूल वेषम्य यह है कि बोधा पर रीतिकालिक कवियों का प्रभाव अधिक है; सोन्दर्य वर्णन में सिद्धांत पक्ष को स्थापित किया है, पाडित्य प्रदर्शन से आनन्द की प्रच्छन्न धारा में व्यवधान उपस्थित हुआ; घनानंद का सोन्दर्य वर्णन–हृदय प्रधान है तो बोधा में बुद्धि–प्रधानता आवश्यकता से अधिक है।

चतुर्थ अध्याय में घनानंद और बोधा के काव्य में चित्रित संयोग शृंगार का वर्णन है। प्रारम्भ में शृंगार रस की महत्ता, उसके उपादान, भेदादि का वर्णन कर संयोग शृंगार की विवेचना काव्य–शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर की गयी है। घनानंद के काव्य में चित्रित संयोग शृंगार का रूप निरूपित करते हुए कहा गया है, कि उनका प्रेम रीतिकालिक वातावरण के ऊपर एक नवीन भाव–भूमि पर खड़ा है जिसका पर्यवसान वासना, भोग में न होकर प्रेम में

हुआ है। यह साध्य भूत प्रेम सुजान के माध्यम से तथा साधनात्मक प्रेम का वर्णन राधा-कृष्ण के संयोग निरूपण में हुआ है। आलम्बन के रूप में सुजान के नखशिख का चित्रण रीतिबद्ध कवियों के लक्षणानुधावन के अनुसार न कर प्रिय के तरल सौन्दर्य का रेखांकन हुआ है। घनानंद ने प्रेम को लुका छिपी उसे संकरी अलियों-गलियों, रथ्या-वीथिका से बाहर निकालकर राजमार्ग में प्रतिष्ठित किया है। सुजान के संश्लिष्ट अनुपातिक सौन्दर्य, उसकी भंगिमाओं, केश, मुख, भ्रू निक्षेप, आँख, ओंठ इत्यादि आंगिक सौष्ठव का बहुविधि वर्णन किया गया है। इस आकर्षण के मूल में शारीरिक-मिलन का अभाव, हार्दिक तीव्र पिपासा होती है। शारीरिक-मिलन जन्य अनुभूति का कम ही चित्रण हुआ है। इस सुख की उमंग, आनन्द, केलि की आतुरता, रति-सुख की चाह इत्यादि का वर्णन यह सिद्ध करता है कि संयोग शृंगार के रूप में कवि ने दो स्थितियों को स्वीकार किया है। सम्भोग पूर्व दशा तथा सम्भोग कालिक अनुभूति। सम्भोग कालिक स्थितियों के वर्णन में नायिका की प्रसन्न मुख-मुद्रा, विशाल एवं चंचल नेत्रों की सलज्जता, कामोदीप्ति, एवं सुरतान्त शिथिलता का वर्णन हुआ है। संयोग में वियोग की अनुभूति, तथा स्वप्न जन्य संयोग का निरूपण भी मार्मिक ढंग से हुआ हे।

बोधा ने वैयक्तिक जीवन में प्रविष्ट हुयी सुभान तथा काव्य की नायिका काम कंदला एवं लीलावती के सौन्दर्य का निरूपण किया है। नायिका की देह-यष्टि, चम्पक वर्णीया-कान्ति, केश पाश, आंगिक छटा का काव्यशास्त्रीय एवं कामशास्त्रीय उपमानों के आधार पर किया गया है। बोधा ने आलम्बन के रूप में पुरुष और नारी सौन्दर्य का निरूपण किया है। रस-विशेष रूप से शृंगार निरूपण में मुक्तक काव्य कारों की अपेक्षा प्रबन्धात्मक कवि नाना परिस्थितियों की कल्पना कर उसमें अधिक सफलता प्राप्त करते हैं। बोधा संयोग शृंगार की पुष्टि हेतु आलम्बन सौन्दर्य आश्रय की व्याकुलता, उद्दीपन विभाव के रूप में प्राकृतिक व्यापारों का स्वाभाविक चित्रांकन किया है। सम्भोग

कालिक क्रिया–व्यापारों एवं सुरतान्त श्रम का विस्तृत वर्णन रीतिबद्ध कवियों के अनुरूप वर्णित पद्धति के अनुसार हुआ है। इस प्रकार संयोग शृंगार के आधारभूत तत्वों – आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारी भावों के साथ संयोग की अतृप्त आकांक्षा, पूर्ण सम्भोग, सुख–विलास, काम–क्रीड़ायें, सुरतान्त वर्णन, इत्यादि दृष्टि से घनानंद और बोधा के काव्य की समीक्षा एवं तुलना करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि दोनों कवियों ने प्रेमिकाओं का तरलायित सौन्दर्य का निरूपण नूतन परिवेश में किया है। आंगिक छटा, देह–यष्टि, तथा संयोग कामना के चित्र दोनों में समान रूप से मिलते हैं। संभोग, रति क्रीड़ाओं के चित्र घनानंद में मर्यादित और भावुकता लिए है, जबकि बोधा के चित्र रीतियुगीन विलासिता के पूरक बनकर उभरे हैं। मांसलता बोधा के काव्य में अधिक है। तरलता, और अतृप्त आकांक्षा के स्वर घनानंद के काव्य की विशिष्टता है। ऐन्द्रियता, अभिलाषा, हर्ष, आनन्द तृप्ति आगे चलकर घनानंद के सुख को महासुखवाद पर्यवसित करती प्रतीत होती है। घनानंद की कविता, भाव प्रवणता से युक्त है जो पाठकों को पूर्णतया भावनाओं की गहराई में डुबो देती है तो बोधा कई स्थलों पर आचार्यत्व कर्म में तल्लीन दिखाई देते हैं –

सात्विक अनुभाव का पारिभाषिक विवेचन पाठकों को शुष्क लगने लगता है ऐसा लगता है, कि वे शास्त्रीय लक्षण ग्रन्थ का पाठ, मनन कर रहे हों, इस भूमि तक वह अपने को तैयार ही नहीं कर पाता, यही मूल वैषम्य घनानंद और बोधा में है।

पंचम अध्याय में विवेच्य कवियों के वियोग का वर्णन है। प्रारम्भ में विप्रलम्भ शृंगार की महत्ता भेद–अन्तर्दशायें, एवं विरह की स्थितियां का वर्णन काम–शास्त्र एवं काव्य–शास्त्र ढंग पर किया गया है। घनानंद और बोधा के काव्यों में निरूपित वियोग की तुलना पूर्वराग, मान, प्रवास, करूण वियोग की दशाओं में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता–मरण इत्यादि की दृष्टि से की गयी है। इस वियोग वर्णन की

विशेषताओं का निरूपण आत्मदशा की अभिव्यक्ति, आँखों की बेचैनी, प्रेम–वैषम्य, स्मृति जन्य वेदना, ऋतु गत दाहकता प्रेयसी की निष्ठुरता, प्रेमी की अनन्यता उपालम्भ, प्रिय की हित--कामना, धिकृति, संदेश–प्रेषण, दौत्य परम्परा पालन, कामाधिक्य, वेदना का प्राचुर्य, दैन्य भाव की प्रबलता आदि को ध्यान में रखकर हुआ है। घनानंद के वियोग जन्य वैशिष्ट्य का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि उन्होंने प्रेमी के विरह–विदग्ध दृश्य तथा उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अनिर्वचनीय मानसिक व्यापारों का यथार्थ परक, स्वाभाविक रूप प्रस्तुत किया है।

सुजान को न देखने से उसे मर्मान्तक पीड़ा मिलती है, पर उसकी प्रिया, उपेक्षक, सुख--चैन की ग्राहक, लापरवाह है। कवि का एक पक्षीय प्रेम उद्वेगों का कारक है, एक कारक तत्व प्रकृति भी है। संयोग में इससे जितना सुख मिला था, वियोग में उसका चोगुना दु.ख, चाँदनी भी अनंगदाह बन जाती है।

घनानंद का विरह फारसी से अधिक प्रभावित है, आहे सर्दो, रंग जर्दो, चश्मेतर, इंतजारी, बेकरारी, बेसब्री, कम खुदर्नी, कम गुफ्तगो, नींद हराम – इन सभी अवस्थाओं का ऊहात्मक वर्णन, वर्णित हुआ है।

घनानंद 'सुजान' से विलग हो परम सत्ता से जुड़े, ध्यान प्रवण वियोगी प्रेमी, अपने हृदय देश में जब प्रिय के दर्शन करता है तो पूज्य बुद्धि के सहारे प्रिय में परमेश्वर देखने लगता है, भावना, इतनी ऊपर उठ जाती है कि उसे प्रिय तथा परमेश्वर अभेद प्रतीत होने लगते हैं, भावुक भक्त प्रेमी वेदना में जीवित रहना चाहता है, मरना नहीं, यही उसकी भक्ति है।

बोधा ने विरह वर्णन में आचार्यत्व कर्म का अच्छा खासा प्रदर्शन किया है, वियोग की अन्तर्दशाओं का सिद्धांत पक्ष स्थापित कर,

कथा के माध्यम से उदाहरण प्रस्तुत किये गये। सुभान को देखे बिना आँखें बेचैन, व्यथित एवं उदास रहती हैं, बोधा ने अपने विरह को लीलावती, माधव एवं काम कंदला की कथा से भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रकृति उनकी भावनाओं को उद्दीप्त करती है। प्रकृति का प्रभाव, मानसिक व्यापारों पर पड़ता है, शारीरिक मानसिक स्थितियों में जो भी परिवर्तन परिलक्षित हुए 'बारहमासा' के रूप में सफल प्रस्तुति बोधा के द्वारा प्रस्तुत की गयी, जो उनकी अपनी विशेषता है। प्रकृति का ऐसा सम्मोहक, उद्दीपक रूप बोधा ने बिम्बित किया कि रसानुभूति स्वतः उपस्थित हो जाती है, इस तरह की विशेषता, कम कवियों में देखी गयी।

विरहाधिक्य से चेतन, अचेतन मन, एकात्म स्थापित कर लेते हैं व्याधि--आधि का ऐसा संगम हो जाता है कि जड़ता आ जाती है, इस मानसिक व्यापार का विस्तार भी उनके विरह वर्णन की विशेषता है। जहाँ तक मरण दशा के चित्रण का प्रश्न है, घनानंद उस स्थिति में पहुँचकर आध्यात्मिक संसार से जुड़ गये, बोधा ने कथा ने माध्यम से कंदला--माधव की मृत्यु वर्णित की है। कवि, प्रेयसी के विरह में हर क्षण जीते और मरते रहे, तभी तो इतने कारुणिक दृश्य को चित्रित कर पाये।

घनानंद, बोधा में कुछ पक्षों में साम्य दिखाई देता है तो वैषम्य भी कुछ कम नहीं। प्रारम्भिक अवस्था के विरह वर्णन, फारसी से प्रभावित होने के कारण घनानंद के चित्रण अतिश्योक्ति के साथ वीभत्स भी हो गये लेकिन स्वाभाविकता आगे विशेषता बन गयी, बोधा रीतिबद्ध कवियों के अधिक निकट थे इसी कारण ऊहात्मकता का आधिक्य ही उन्होंने स्वीकार किया, जिसे तमाम सन्दर्भ वर्णन में कृत्रिमता आ गयी।

षष्ठ अध्याय, आलोच्य कवियों की प्रेमाभिव्यंजना से सम्बन्धित है – घनानंद का प्रेम वर्णन अनवरूद्ध और अकुण्ठ है, उनके भाव वेगवती धारा की तरह फूट चले हैं, किन्तु उनमें संस्कार जनित संयम है जो आगे चलकर

उनकी भक्ति परक रचनाओं में उज्ज्वल रूप में दृष्टिगोचर होता है।

संसार में सच्चा सनेही दुर्लभ है, यदि सच्चा सनेही मिल भी जाये तो उसका जीवन भीषण संकटों से आपन्न हुआ करता है, यह प्रेम का मार्ग सीधा तो अवश्य है, उसमें चातुर्य का लेश भी अपेक्षित नहीं, प्रेम में वासना का तिरोभाव हो चुका रहता है और निष्ठा या अनन्यता आ चुकी रहती है, इसमें सर्वात्म भाव से आत्म–समपर्ण करना पड़ता है, इसी कारण प्रेम का पंथ कराल है, ऐसा घनानंद–बोधा मानते हैं।

इस लोक में जितना भी प्रेम गोचर हो रहा है, उस अनन्त प्रेम के कनूके का प्रसार है, तभी तो इसका इतना महत्त्व है, प्रेम अपने आप में एक शुद्ध और निर्मल वृत्ति है, इस वृत्ति का धारण कर्त्ता होने पर वासनायें विलुप्त हो जाती हैं, अंतःकरण से आनन्द रस की ऐसी वृष्टि होती है कि प्रेमी सकाम होते हुए भी निष्काम हो जाता है। इसी कारण घनानंद ने लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम से सम्बद्ध कर लिया।

घनानंद और बोधा के रोम–रोम में अपनी प्रेयसियों का प्रेम बसा हुआ था, उन्होंने प्रेम के उद्भव के बाद जो भी लिखा प्रेमी कवि होने के नाते लिखा, उनका समस्त काव्य सुजान–सुभान की कहानी कहता है। कहीं गौर वर्ण की चर्चा, कहीं तिरछी चितवन की, कहीं कजरारी आँखों की। बोधा ने कथा के माध्यम से लीलावती–कामकंदला के प्रति नायक माधव के प्रेम की विशद् व्याख्या की है।

रीतिमुक्त कवि प्रेम के मार्ग को कठिन बताते हुए, प्रेम महत्त्व को स्वीकार करते हैं तभी तो उन्होंने प्रेम का खुला वर्णन प्रस्तुत किया। वे प्रेम को गुप्त भी रखना चाहते थे इसी कारण वियोग की स्थिति में दुःख को स्वयं ही सहन करने की सामर्थ्य भी रखते हैं, वियोग दाह बताकर वे उपहासित नहीं नहीं होना चाहते थे, इस कारण सादगी से प्रेम की निश्छलता अभिव्यक्त करते हैं।

घनानंद और बोधा ने संयोग के वर्णनों में रीझ, उत्सुकता, लालच रोम-रोम आनंद से भरना तथा अंग-प्रत्यंग से प्रसन्नता फूटना, संयोग के समय शताधिक भावनाओं का तीव्र गति से आना चित्रित किया है। प्रिय के साथ संयोग में सम्भोग का सुख-संयोग की अन्तिम परिणति है, परन्तु दुर्भाग्य कि ऐसी स्थिति अधिक दिनों तक न रह सकी, तभी तो दोनों ने संयोग में वियोग की अवस्था को देखा है, प्रिय के वियोग की आशंका संयोग में भी बनी रहती है, इसी भावना के कारण तो घनानंद को प्रेम का पीर कहा जाता है।

घनानंद ने काव्य का अधिकांश भाग सुजान के विरह में लिखा तो बोधा ने सुभान के विरह में 'विरहवारीश' की रचना की; लेकिन इनकी कविताओं में रीतिबद्ध कवियों जैसा आडम्बर नहीं है, जो भी भावनायें हैं वे भीतर ही हैं बाहर से वियोग प्रशान्त और गम्भीर है। प्रेयसी की स्मृति से उत्पन्न पीड़ा को वे हमेशा हृदय से लगाये रखना चाहते हैं, क्योंकि इनका प्रेम लौकिक था, रूप सौन्दर्य से उत्पन्न था, एक सांसारिक रमणी की छवि पर वे फिदा थे, उसी का अदर्शन इनके प्राणों की पीड़ा और अनन्त व्यथा का कारण भी हो गया था। घनानंद-बोधा ने प्रेयसियों के अन्यान्य अंगो पर रीझे हुए मन की विरही दशा के ऐसे सुन्दर चित्र उकेरे हैं जो अमूल्य निधि हैं।

घनानंद के काव्य में जो भाव सर्वाधिक मिलता है, वह है प्रेम वैषम्य। सुजान की बेवफाई, निर्मोहिता, उदासीनता को कवि ने स्वीकार किया और उसी विपन्नता को अपने जीवन में समाहित कर लिया, इसी कारण भावना वैषम्य परक हो गयी। घनानन्द और बोधा ने प्रेम वैषम्य को मुख्य रूप से तीन रूपों में अभिव्यक्त किया है, प्रिय के असंगत और अनुचित आचरण पर टीका-टिप्पणी, प्रिय के निष्ठुर आचरण पर अपनी दशा का वर्णन तथा प्रिय के निष्ठुर एवं विषम आचरण पर रीझ, प्रिय से विषम आचरण न करने का नाना रूपों में आग्रह। प्रार्थना, उपदेश, व्यंग्य एवं फटकार को सुन्दर रूपों में प्रस्तुत करने का श्रेष्ठ प्रयास दोनों कवियों ने किया।

घनानंद की प्रेमाभिव्यंजना से एक बात प्रमाणित हो जाती है

कि उनके प्रेम को लौकिक कह तिरस्कृत नहीं किया जा सकता क्योंकि, करवट बदलने वाला 'प्रेम' नहीं है। प्रेम की अनिन्द्य धारा को जैसा घनानंद ने बहाया वैसा रीतिकाल के अन्य किसी कवि ने नहीं। कारण वे 'सुज्ञान' से परिचित हो गये थे और लौकिक प्रेम के धरातल से उठकर ही पारलौकिक प्रेम में आसक्त हुए, उनके प्रेमानुराग का भण्डार कृष्ण की ओर ढुलक पड़ा, अब उनके नेत्रों को कहीं आनन्द मिलता है तो राधा–कृष्ण युगल छबि के दर्शन में, यही उनके प्रेम का उदात्तीकरण है।

जहाँ तक बोधा के प्रेम में उदात्तीकरण का प्रश्न है – लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की प्राप्ति की बात का खूब ढिंढोरा उनके द्वारा पीटा गया, प्रेम पंथ की गम्भीरता को वे सम्भाल न पाये, मजाजीइश्क में ही अटक कर रह गये, हकीकी इश्क तक वे पहुँच नहीं सके, पारलौकिक संसार से जुड़ने का वाग्जाल उन्होंने फैलाया कारण वे फारसी शैली से अधिक प्रभावित थे। यही वैषम्य, बोधा और घनानंद के प्रेम उदात्तीकरण में है। इसी तरह के वैषम्य कई जगह घनानंद–बोधा में हैं; काम–प्रेम के चित्रण में घनानंद स्वाभाविकता के कारण सफल रहे, कृत्रिमता के कारण बोधा पहली सीढ़ी भी नहीं चढ़ सके; यही हाल 'प्रेम–वैषम्य' चित्रण में है – प्रार्थना, भर्त्सना दोनों ही भाव घनानंद ने व्यक्त किये बोधा इन भावों को गम्भीरता न दे सके। रीतिमुक्त धारा यदि घनानंद से प्रवाहित होती है, बोधा तो उस धारा के एक छोटे नद हैं।

अन्त में रूप सौन्दर्य एवं प्रेम की दृष्टि से आलोच्य कवियों के काव्य वैशिष्ट्य पर विहंगम दृष्टि डाली गयी है, जिसमें चर्चा की गयी है कि घनानंद और बोधा ऐसे स्वच्छन्दतावादी कवि हैं, जिनके आत्मिक भावों का प्रकाशन उनके काव्य में है, जो कविता आत्मा को आनंदित करने की क्षमता रखती है, वह परमानंद तक पहुँच जाती है, इन दोनों ने रूप सौन्दर्य चित्रण, प्रेम वर्णन से सहृदय पाठक की आत्मा को आन्दोलित, आलोकित कर दिया। उनका प्रेम निश्छल और निष्पाप था, इस कारण प्रेम के मार्मिक उद्‌गारों और स्त्री–पुरुष

के मधुर सम्बन्ध के रमणीय प्रसंगो का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत कर सके। घनानंद के बारे में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ। बोधा में प्रेम का वही नशा, विरह की वही बेचैनी, भावुकता की वही लहर और निराशा में तड़प कर जान देने की वही चाह। जहाँ प्रेम-भावना मांसल सौन्दर्य से आन्तरिक सौन्दर्य की ओर होती है वहाँ वह प्रेम विशुद्ध तथा उच्च कोटि का माना जाता है, ऐसा प्रेम बोधा का है, जिसमें न तो व्यर्थ का शब्दाडम्बर है न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरोधी भावों का उत्कर्ष, वे श्रेष्ठ प्रेमी हैं जो प्रेमरस में निरत रहते हैं।

स्वच्छन्द प्रेम-वर्णन काव्य परम्परा तथा घनानंद एवं बोधा का वैशिष्ट्य – इस विषय पर चर्चा की गयी कि प्रेम के जिन उन्मुक्त गायकों ने हिन्दी साहित्य के मध्य युग में रीति स्वच्छन्द शृंगार काव्य की धारा प्रवाहित की उनमें प्रधान हैं, रसखान, आलम, घनानंद, ठाकुर, बोधा एवं द्विजदेव। ऐसा प्रतीत होता है कि ये कवि प्रेम के लिए ही बने थे, लोक-लज्जा, रीति, मर्यादाओं से परे इनका प्रेम निर्बन्ध है, प्रेम इनका भोगा हुआ यथार्थ है। इनकी प्रेम गाथाओं से सहृदय पाठक परिचित हैं, वह आयातित नहीं तीव्र स्वानुभूति है। आलम प्रेमी थे तथा उनका काव्य उनकी भावनाओं तथा अनुभूतियों की सहज स्वाभाविक अभिव्यंजना है। उसमें प्रेम जन्य व्यथा, मिलन का आनन्द और विरह-वेदना का चित्रण है, अभिव्यंजना तथा वर्णित भावोद्गारों के सुन्दर साम्य हैं। ठाकुर भी भावुक, सरस तथा प्रेमी कवि थे, प्रेम की अनन्यता को दर्शाया है, वे प्रेम मे ही निमग्न रहना चाहते हैं। सहज और सीधी प्रेमाभिव्यक्ति और लोकपर्वो में अनूठा उत्साह के अतिरिक्त भक्ति भावना से ओत-प्रोत उनके कवित्त दोहे मिलते हैं, ठाकुर ने लोकोक्तियों और मुहावरों का इतना उन्मुक्त प्रयोग किया है कि वे एक नवीन मार्ग की स्थापना करते से लगते हैं। रसखान ने अपने सवैयों में ब्रज-प्रेम, बाल-कृष्ण की सुन्दरता, ग्वालिनों के सौभाग्य, कृष्ण की मुरली तथा राधा पर उसके प्रभाव का सुन्दर चित्रण किया है, वे प्रेम को ज्ञान

से श्रेष्ठ मानते हैं। निराडम्बर और प्रवाह पूर्ण भाषा में उन्होंने अपने हृदय का समस्त माधुर्य उड़ेल दिया। द्विजदेव ने प्रेम–शृंगार के साथ ही साथ ऋतुओं का स्वच्छन्द वर्णन प्रस्तुत किया है, सम्भवतः उनको प्रकृति से ही मोह था, इसी कारण उसी के वर्णन में अपनी समस्त प्रतिभा को लगा दिया। इन सभी कवियों का मूल स्वर प्रेम है और प्रेम में भी वियोग पक्ष को ज्यादा निखार दे पाये। जहाँ तक घनानंद और बोधा के वैशिष्ट्य का प्रश्न है, इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इनमें ठाकुर की तन्मयता है, रसखान की सी प्रेम की अनिर्वचनीयता है, आलम की सी उन्मुक्तता है। बोधा से घनानंद श्रेष्ठ हैं क्योंकि घनानंद की मार्मिकता, असाधारण काव्य सौष्ठव, तीव्र गहन, उत्कृष्ट समृद्ध भावों की अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। विरोध–मूलक चमत्कार वैचित्र्य, लाक्षणिकता, वक्रोक्ति का अनुपम सौन्दर्य, जिससे भाषा समृद्ध हुयी है – घनानंद को रीतिमुक्त कवियों में सर्वोच्च स्थान पर अधीष्ठित करती है। सरल भाषा के द्वारा मार्मिक भावों को हृदय में गहराई तक उतारना इनके बाएं हाथ का खेल था, तभी तो अपनी धारा के ये एकमात्र कवि सम्राट हैं।

और अन्त में आभार प्रदर्शन – मेरे ज्येष्ठ **डॉ0 वेद प्रकाश द्विवेदी, रीडर–अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज** – विद्वान, समीक्षक हैं उन्होंने कठिनाइयों का निराकरण कर मेरा मार्ग दर्शन किया, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। **डॉ0 महावीर सिंह – रीडर, हिन्दी विभाग – अतर्रा** कालेज का अथ से इति तक निर्देशन प्राप्त हुआ जिसकी परिणति ही शोध प्रबन्ध के रूप में है – उनके प्रति कृतज्ञता एवं आभार।

मेरे पति **डॉ0 विष्णु दत्त द्विवेदी – स्नातकोत्तर** शिक्षक, के0 वि0 ने शोध कार्य **करने** की प्रेरणा दी, उत्साह **सम्वर्धन** किया, उनको क्या लिखूँ, सारी भावनाएं ही उनकी हैं।

डॉ0 रामानुज त्रिपाठी, प्रवक्ता डी0 एस0 एन0 कालेज, उन्नाव ने अमूल्य सुझाव दिये, उनके प्रति शुभकामनाएं।

चि0 विजय, चि0 विनय एवं चि0 विपिन, कु0 पूजा, कु0 मंजरी की जिज्ञासा थी कि मेरा शोध कार्य कब पूरा होगा, उनकी आँखों में आशा की चमक है, जिज्ञासा है, इन सभी को आशीष।

मेरे **बाबूजी** जब भी आते, अतिशय उत्सुकता से पूँछते कि कार्य की प्रगति कितनी है, कार्य तो पूरा हुआ लेकिन अश्रुपूरित, क्योंकि **बाबूजी** अचानक स्वर्गस्थ हो गये। मैं उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करती हूँ; उस स्वर्गस्थ आत्मा को आत्मीय सुख होगा कि, उनकी बिटिया ने शोध को समग्रता दी। **बाबूजी स्व0 देवकीनन्दन शुक्ल** ने ज्ञान–ज्योति प्रज्वलित की थी, वह ज्योति जलेगी, कुहासा छँटेगी, इसी आशा के साथ।

आकृति टंकण संस्थान – 58, काजीखेड़ा रोड, हरजेन्दर नगर–II, के संचालक श्री **विमल** कुमार तिवारी, श्रीमती सुनीता तिवारी युवा दम्पति ने लगन, निष्ठा, प्रयत्न एवं अपनत्व से इस शोध प्रबन्ध को टंकित किया, दोनों के प्रति असीम शुभकामनाएं।

शोध कर्त्री

सन्तोष द्विवेदी

(श्रीमती सन्तोष द्विवेदी)

छोटा डेरा, अतर्रा

प्रथम - अध्याय

रीतिमुक्त कविता तथा घनानंद और बोधा

नामकरण – विमर्श :– हिन्दी – साहित्य – रचना के दो सौ वर्ष (सं0 1700–1900) का समय साधारण तथा 'रीतिकाल' के नाम से जाना जाता है। आचार्य पं0 रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी–साहित्य का इतिहास' में हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को दो भागों में विभाजित किया है– पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। साहित्य के मध्यकाल का दो भागों में विभाजन करना कुछ कारण रखता है। वस्तुतः साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास में एक मोड़ आता है, तभी से नवीन प्रवृत्तियों का काल मान लिया जाता है। आचार्य शुक्ल ने अपनी पुस्तक के वक्तव्य में कहा है– "जब तक पूर्व और उत्तर के अलग–अलग लक्षण न बताये जायेंगे, तब तक इस प्रकार के विभाग का कोई अर्थ नहीं। इसी प्रकार थोड़े–थोड़े अन्तर पर होने वाले कुछ प्रसिद्ध कवियों के नाम पर अनेक काल बाँध चलने के पहले यह दिखाना आवश्यक है कि प्रत्येक काल–प्रवर्तक कवि का यह प्रभाव उसके काल में होने वाले सब कवियों में सामान्य रूप से पाया जाता है। विभाग का कोई पुष्ट आधार होना चाहिए।" वस्तुतः मध्यकाल के प्रारम्भ से जो भक्ति–काव्य की धारा प्रवाहित हो रही थी, संवत् 1700 के लगभग उसके नवीन मोड़ आने की सूचना मिलती है। शुक्ल जी ने यह नवीन मोड़ चिन्तामणि त्रिपाठी (लगभग सं0 1700) से माना है और इस प्रकार इस भक्ति काव्य से पृथक प्रवृत्तियों के काल का नाम उन्होंने रीतिकाल रख दिया। उनके वक्तव्य को पढ़ने से मालुम पड़ता है कि भक्तिकाल की भाँति वह रीतिबद्ध रचना की परम्परा के भी उप–विभाग करना चाहते थे– "रीतिकाल के भीतर रीतिबद्ध रचना की जो परम्परा चली है उसका उपविभाग करने का कोई संगत आधार मुझे नहीं मिला। रचना के स्वरूप आदि में कोई स्पष्ट भेद निरूपित किए बिना विभाग कैसे किया जा सकता है?" मिश्रबन्धुओं ने इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है, जैसा कि संस्कृत–महाकाव्य परम्परा में भारवि, माघ और श्रीहर्ष का 'अलंकृत काल' था, किन्तु यह नामकरण विद्वानों को स्वीकृत न हो सका।

शुक्ल जी के उपर्युक्त वक्तव्य पर ध्यानपूर्वक विचार करने से यह मालूम पड़ता है कि उन्हें रीतिबद्ध रचनाओं में कई प्रकार की रचनाएं मिलीं, किन्तु वे स्पष्टतः

उनका पार्थक्य न कर सके। यही नहीं, वस्तुतः शुक्लजी हिन्दी साहित्य के उत्तर–मध्यकाल का रीतिकाल नाम रखकर भी संतुष्ट न हुए। उन्हें 'रीतिकाल' नामकरण का कोई पुष्ट आधार नहीं मिला– "रीतिबद्ध–ग्रन्थों की बहुत गहरी छानबीन और सूक्ष्म पर्यालोचन करने पर आगे चलकर शायद विभाग का कोई आधार मिल जाए, पर अभी तक मुझे नहीं मिला है।" इसके आगे भी एक बात और कहने की है। वह यह कि सं0 1986 में जब शुक्ल जी के इतिहास का प्रथम संस्करण निकला था, तब उन्हें घनानन्द आदि कुछ मुख्य–मुख्य कवियों का परिचय भी विशेष रूप से नहीं दिया था। यह 11 वर्ष बाद 1997 के संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण में जोड़ा गया। उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शुक्ल जी ने रीतिकाल के अर्न्तगत रीतिमुक्त धारा के कुछ महान कवियों को उस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों में विशेष योग देने वाला नहीं माना है।

<u>पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का नामकरण – श्रृंगारकाल</u> :– आचार्य पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी इस विवेच्यकाल को नामकरण श्रृंगारकाल किया है। 'घनानन्द कवित्त' की प्रस्तावना में उन्होंने इस पर विचार किया है। प्रायः रीतिकाल नामकरण के सर्मथकों ने रीतिमुक्तकाल कवियों को अपने रास्ते से हटाने का बड़ा सुगम उपाय उन्हें 'फुटकल खाते' में डालना समझा है। मिश्रजी के शब्दों में – "हिन्दी साहित्य का काल–विभाजन करते हुए इतिहासकारों ने रीतिकाल की भीतर कुछ ऐसे कवियों को 'फुटकल खाते' में डाल दिया है जो रीतिकाल की अधिक व्यापक प्रवृत्ति श्रृंगार या प्रेम के उन्मत्त गायक थे।"[1]

पं0 विश्वनाथ प्रसाद ने इन शब्दों में कहा है "भक्तिकाल के बीतते न बीतते हिन्दी में श्रृंगार की धारा वेग से प्रवाहित हुई। श्रृंगार की अभिव्यक्ति के लिए अधिकतर कवियों ने रीति को अर्थात् रस, नायक–नायिका, अलंकार, पिंगल आदि काव्यांशों के भेदोपभेदों का

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – पृ0 सं0 – 286

आधार बनाया। पर ये वस्तुतः काव्य पक्ष ही सामने करने वाले थे, शास्त्र पक्ष नहीं। बात यह थी कि संस्कृत में साहित्य का शास्त्र-पद अपने समृद्ध रूप में इन्हें विवेचित उपलब्ध हो गया, अतः स्वतः छानबीन करने की इन्हें आवश्यकता ही नहीं पड़ी। ....फल यह हुआ कि इनकी रचना शास्त्र में गिनाई सामग्री से आगे नहीं बढ़ सकी। ये केवल 'शास्त्र -स्थिति-सम्पादन' ही करते रह गए, भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति पर से इनकी दृष्टि स्वतः हट गयी।"[1]

<u>रीतिकाल नाम की लोकप्रियता</u> :- आगे चलकर अन्य हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों में शुक्ल जी द्वारा दिया हुआ उत्तर मध्यकाल का 'रीतिकाल' नाम रूढ़ हो गया। बाबू श्यासुन्दर दास भी हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल में श्रृंगार रस की प्रचुरता एवं 'रीतिमुक्त' कवियों का महत्व स्वीकार करके भी इसका नामकरण 'रीतिकाल' के अतिरिक्त अन्यथा न कर सकें- राजाओं से पुरस्कार पाने तथा जनता द्वारा समादृत होने के कारण रीतिकाल की कविता श्रृंगार-रसमयी हो गयी और अन्य प्रकार की कविताएं उनके सामने दब सी गयीं।....... श्रृंगार रस के मुक्तक पद्य यद्यपि अधिकतर अलंकारों और नायिकाओं के उधारण स्वरूप ही लिखे गये, यद्यपि लिखने का लक्ष्य भी अधिकतर आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना था, तथापि कुछ कवियों की कृति में शुद्ध प्रेम के ऐसे सरस छन्द मिलते हैं, ऐसे सौन्दर्य की पवित्र विवृति पायी जाती है कि सहसा यह विश्वास नहीं होता कि कवि शुद्ध आन्तरिक प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य से कविता करते थे। यह ठीक है कि अधिकाँश कवियों ने सौन्दर्य को केवल उद्दीपन मानकर नायक-नायिका के रति भाव की व्यंजना की है, पर कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने रीति के प्रतिबन्धों के बाहर जा कर स्वकीय सुन्दर रीति से सौन्दर्य की वह सृष्टि की है, जो मनोमुग्धकारिणी है।" आगे चलकर बाबूजी कहते हैं- "हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के सौन्दर्योपासक और प्रेमी कवियों का स्थान अमर है।"[2]

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ- पृ0 सं0 - 287
2. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ0 सं0 - 284

इन दो बातों पर ध्यान पूर्वक विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर–मध्यकाल का 'रीतिकाल' नामकरण उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इस नामकरण से तत्कालीन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति शृंगार एवं प्रेम का पूर्ण परिचय नहीं मिलता मूलतः रीति की परिपाटी का पालन करने वाले कवि और रीतिमुक्त स्वच्छन्द कवि दोनों ही शृंगार रस को लेकर चलते हैं।

शुक्लजी के इस नामकरण के संबंध में आचार्य डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि, "यहाँ साहित्य को गति देने में अलंकार–शास्त्र का ही जोर है जिसे उसकाल में 'रीति' 'कवित्त रीति' 'सुकवि रीति' कहने लगे थे। संभवतः इन्हीं शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को रीति काव्य कहा। उन्होंने विक्रम संवत् 1700 से 1900 (1643–1843 ई0) तक के काल को रीतिकाल माना है।"[1]

<u>रीति शब्द की व्याख्या</u> :– संस्कृत–काव्य–शास्त्र के अन्र्तगत 'रीति' शब्द उस काव्यांग–विशेष के लिए रूढ़ है, जिसे काव्य की आत्मा के रूप में घोषित कर आचार्य वामन ने तत्संबन्धी प्रथक सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार गुण–विशिष्ट रचना–अर्थात पदसंघटना–पद्धति–विशेष का नाम 'रीति' है। इधर व्याकरण के आधार पर गत्यर्थक 'रीड.' धातु से 'क्तिच्' प्रत्यय करके इसकी जो व्युत्पात कही जाती है, उससे यह मार्ग को वाचक ठहरता है। इस प्रकार उक्त दोनों शास्त्रों में इस अकेले ही शब्द के दो पृथक प्रयोग कहे जा सकते हैं। किन्तु, वास्तव में यह पार्थक्य किसी मौलिक विभेद का द्योतक न होकर व्यवहारिक विकास का ही परिणाम रहा है। बात यह है कि व्यक्ति अथवा वर्ग–विशेष अपने भावों की अभिव्यक्ति– व्यापारगत अनुकरण और अनुसरण का लक्ष्य हो जाती है, तो उनकी विधात्री पद्धति–विशेष लोक व्यवहार में 'मार्ग' शब्द से ही अभिहित होती है। दण्डी का यह कथन कि काव्य रचना के तो ये दो मार्ग– वैदर्भ और गौड़ ही होते है, पर कवि में आश्रित होने के कारण इसके अनन्त भेद हो जाते हैं, स्पष्टतः प्रदेश (अर्थात वर्ग–विशेष) तथा व्यक्ति की अभिव्यक्ति–

---

1. हिन्दी साहित्य– डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी – पृ0 सं0 291

पद्धति की 'मार्ग' संज्ञा द्वारा स्वीकृति है। वामन में भी संभवतः रचना पद्धति के के लिए 'मार्ग' के इस परम्परागत प्रयोग को दृष्टि में रखकर ही उसके पर्याय–रूप में 'रीति' शब्द को ग्रहण किया है, कारण, दण्डी ने जिन दो मार्गों और उनके नियामक दश गुणों को उल्लेख किया है, वे वामन ने भी ग्रहण कर रखे हैं। आगे परवर्ती आचार्यों में भोजह ने तो स्पष्ट शब्दों में 'रीति' की उपर्युक्त व्युत्पत्ति दर्शाते हुए उसे मार्ग का ही पर्याय माना है। ऐसी दशा में यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि संस्कृत–काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्य–रचना के मार्ग अथवा पद्धति–विशेष के अर्थ में ही व्यवहृत हुआ है। हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों में भी अनेक ऐसे हैं, जिन्होंने काव्य–रचना–पद्धति को 'रीति' और उसके पर्याय 'पन्थ' से ही अभिहित किया है। यथा–

1. चिन्तामणि – रीति सुभाषा कवित्त की बरनत बुध अनुसार।

(कविकुल कल्पतरू – प्रथम प्रकरण)

2. मतिराम – सो विश्रब्ध नवोढ़ यों बरनत कवि रसरीति।

(रसराज)

3. भूषण – सुकबिन हूँ की कछु कृपा समुझि कविन को पंथ।

(शिवराज भूषण)

4. देव – (क) अपनी–अपनी रीति के काव्य और कवि रीति

(ख) भाषा प्राकृत संस्कृत देखि महाकवि पंथ।

(शब्द रसायन– एकादश प्रकाश)

5. भिखारी दास– (क) काव्य की रीति सिख्यौ सुकवीन्ह सों।

(काव्य निर्णय– प्रथमोल्लास)

(ख) जातें कुछ हौं हूँ लह्यो कविताई को पंथ।

श्रृंगार–निर्णय)

इनके अतिरिक्त हिन्दी के आधुनिक इतिहासकारों तथा आलोचकों ने भी इसी अर्थ में 'रीति' शब्द का प्रयोग किया है। मिश्र बन्धुओं ने 'आचार्य' के कर्तव्य–कर्म को दर्शाते हुए इस शब्द का जो स्पष्टी करण किया है, वह अपने आप में

पर्याप्त है आचार्य लोग तो कविता करने की रीति सिखलाते है मानो वह संसार से यह कहते हैं कि अमुकामुक विषयों के वर्णनो मे अमुक प्रकार के कथन उपयोगी हैं और अमुक प्रकार के अनुपयोगी।[1] (मिश्र बन्धु विनोद, भाग--2) अतएव व्युत्पत्ति, प्रयोग और परम्परा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'रीति' शब्द संस्कृत के समान हिन्दी में भी बहुत पहले से काव्य--रचना--पद्धति के लिए रूढ़ है।" रीति शब्द को इसी रूढ़ अर्थ में ग्रहण करते हुए कह सकते हैं कि 'रीतिकाव्य' वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा नियमों को दृष्टि में रखकर की गयी हो। हिन्दी भाषा साहित्य के उत्तर-मध्यकाल मे अनेक कवियो ने संस्कृत-काव्यशास्त्र के नियमा की बंधी-बंधायी परिपाटी पर अपने काव्य की रचना की। इसीलिए आज उन्ह रति कवि और उनके काव्य को 'रीतिकाव्य संज्ञा से अभिहित किया जाता है।[2]

<u>रीति कवियों का वर्गीकरण</u> :- रीति निरूपण के आधार पर रीति कवियो के मुख्यतः दो वर्ग किये जा सकते है- 1. सर्वांग-निरूपक और 2. विशिष्टांग-निरूपक। इनक सर्वांग-निरूपक व हैं, जिन्होंने काव्य के समस्त अंगों--काव्यलक्षण काव्य हेतु, काव्य प्रयाजन, काव्य भेद काव्य की आत्मा (रस अथवा ध्वनि), शब्द शक्ति गुण, दोष रीति अलकार और छन्द का विवेचन अपने ग्रन्थो म किया है। चिन्तामणि कुलपति सूरति मिश्र श्रीपति, देव दास, जनराज आदि ऐसे आचार्य है। इन्होंने एक अथवा अनेक ग्रन्थों के भीतर इन सभी अंगो का विवेचन किया है। विशिष्टांग-निरूपक आचार्यो के काव्य के सभी अंगों को अपने विवचन का विषय न बनाकर उसक तीन महत्वपूर्ण अंगो- रस, अलंकार और छन्द में से एक दो अथवा तीनो का निरूपण एक अथवा अनेक ग्रन्थों में किया है। इसमे रस-निरूपण करन वालो के भी तीन वर्ग किये जा सकत हैं- (क) समस्त रसों के निरूपक (ख) श्रृंगार रस-निरूपक और (ग) श्रृंगार-रस के आलम्बन नायक-नायिकाओं के भदापभेदों

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास -- पृ0 सं0 – 309
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास -- पृ0 सं0 -- 309

के निरूपक । "समस्त रसों का निरूपण करने वालों में तोष, याकूब खाँ, रामसिंह सेवादास बेनीप्रवीन पद्माकर आदि का श्रृंगार रस का निरूपण करने वालों में मतिराम, उदयनाथ, कबीन्द्र, चन्द्रदास, यशवन्त सिंह, कृष्ण कवि आदि का तथा नायक-नायिका भेद-विवेचकों में कालिदास, यशोदानन्दन, गिरिधर दास आदि का नाम लिया जा सकता है। अलंकार-निरूपक आचार्यो में मतिराम, भूषण गोप, दलपतिराय, रघुनाथ, गोविन्द, दूलह, बैरीसाल, सेवादास, पद्माकर आदि तथा छन्दों-निरूपक आचार्यो में मतिराम, सुखदेव मिश्र, माखन, जयकृष्ण भुजंग, दास, दशरथ, नन्दकिशोर, रामसंहाय आदि उललेखनीय हैं।"[1]

रीतिकालीन कविता के प्रसंग में विद्वानों में तीन प्रकार का विवरण दिया है- रीतिबद्ध, दूसरा रीतिसिद्ध ओर तीसरा रीति मुक्त। रीति मुक्त के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है, परन्तु 'रीतिबद्ध' शब्द के विषय में मतभेद प्राप्त होता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'रीतिबद्ध' रचना लक्षणों और उदाहरणों से युक्त होती है, परन्तु "डा0 नगेन्द्र इस प्रकार की रचनाओं को रीतिबद्ध कहने के पक्ष में नहीं है। ऐसे कवियों को वे रीतिकार या आचार्य कवि मानते है। रीतिकार आचार्य कवि उनके मत से वे कवि है, जिन्होनें काव्य-शास्त्र की शिक्षा देने के लिए रीतिग्रन्थों का प्रणयन किया। उनका प्रमुख उद्देश्य या तो काव्य की शिक्षा देना है या किसी काव्यशास्त्रीय विषय का सोदाहरण प्रतिपादन करना। उनकी दृष्टि में रीतिबद्ध कवि वे हैं, जिन्होंने रीतिग्रन्थों की रचना न करके काव्य-सिद्धान्तों या लक्षणों के अनुसार काव्य रचना की है।"[2] अलंकार, रस, नायिकाभेद, ध्वनि आदि उनके ध्यान में तो रहे हैं, परन्तु उनका प्रत्यक्षतः निरूपण इन कवियों ने नहीं किया; वरन् उनके अनुसार उत्कृष्ट काव्य का सृजन किया है। ऐसी दशा में मूलतः वे कवि हैं, आचार्य नहीं। इसलिए उन्हें रीतिबद्ध कवि मानना चाहिए। आचार्य, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ऐसे कवियों को 'रीतिसिद्ध कवि' कहते हैं। अतः इस प्रसंग में यहाँ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी के अनुसार जो रीतिसिद्ध कवि हैं, तथा डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार जो रीतिबद्ध कवि हैं, उन्हीं का विवेचानात्मक परिचय रीतिबद्ध कवियों के अन्तर्गत आगे प्रस्तुत

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ0 सं0 322
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ0 सं0 359

किया जायेगा।

रीतिमुक्त काव्य :- इस धारा का नामकरण कुछ लोगों ने तो 'रीतिमुक्त' और कुछ ने 'स्वच्छन्द काव्यधारा' किया है। 'रीतिमुक्त' का सीधा अर्थ यही है कि यह धारा रीति-परम्परा के साहित्यिक बन्धनों और रूढ़ियों से मुक्त है। यह सब स्पष्टतः इस धारा का दूसरी समसामयिक काव्यप्रवृत्ति से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। 'रीतिमुक्त' नामकरण विवाद-रहित ओर निरापद है। पर दूसरा नाम विवेचन की अपेक्षा रखता है, क्योकि यही शब्द पश्चिमी साहित्य की एक प्रसिद्ध महती काव्यधारा के लिए रूढ़ है। तो क्या रीतिकाल की यह काव्यधारा किसी प्रकार योरूप की स्वच्छन्द काव्यधारा से सम्बद्ध है? लेकिन सम्बन्ध के लिए जो ऐतिहासिक आधार चाहिएं, वे यहाँ नाम को भी नहीं हैं।"[1]

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इन कवियों का वर्णन इस प्रकार किया है- "उसी काल में स्वच्छन्द मनोवृत्ति वाले ऐसे कवियों का भी प्रादुर्भाव हुआ जो रीति का बन्धन तोड़ डालना चाहते थे। शास्त्र में गिनाई हुई सूची तक ही रहने वाले नहीं थे। ये प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग संगठित करने के अभिलाषुक थे। रीतिबद्ध होकर एक ओर काव्य-रचना अधिकतर बहिवृत्ति के निरूपण में व्यस्त थी, दूसरी ओर इनके हृदय को वेग अन्तर्वृत्ति के निरूपण का अवकाश चाहता था। अतः इन्होंने रीति-पद्धति का अतिक्रमणि किया।"[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने इतिहास में श्रृंगारकाल के अन्र्तगत रीतिमुक्त धारा का वर्णन किया है। उन्होनें इस वर्ग के कवियों को 'रीतिकाल के अन्य कवि' शीर्षक अध्याय में रखा है। उन्होंने इनका परिचय इन शब्दों से प्रारम्भ किया है-- "अब यहाँ इस काल के भीतर होने वाले उन कवियों का उललेख होगा जिन्होंने रीति ग्रन्थ न लिखकर दूसरे प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं।"[3]

इनके अतिरिक्त शुक्ल जी ने तीन अन्य प्रकार के रीतिमुक्त कवियों की चर्चा

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - 370
2. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ0 सं0 -331
3. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ0 सं0 - 331

की है– एक तो, कथात्मक प्रबन्धों से भिन्न वर्णनात्मक निबन्धों के रचयिता। इन्होनें दानलीला, मानलीला, जलविहार, वन विहार, मृगया, झूला, होली वर्णन इत्यादि इसी प्रकार की रचनाएँ की हैं। इनमें बड़े विस्तार के साथ वस्तु–वर्णन मिलता है। दूसरे ज्ञानोपदेशक, जो ब्रह्म ज्ञान और बैराग्य की बातों को पद्य में कहते हैं। ऐसे ग्रन्थकारों को उन्होंने 'पद्यकार' संज्ञा दी है। इनमें प्रायः बोधवृत्ति जागृत करने के लिए रूपक, उपमा का प्रयोग है। कुछ भावुक कवि अन्योक्तियों के सहारे भगवत्प्रेम, विरक्ति, करूणा आदि उत्पन्न करने में समर्थ हुए है। तीसरे, वीररस की फुटकल कविताओं के रचयिता जो आश्रयदाताओं की प्रशंसा में उनकी युद्धवीरता ओर दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसात्मक कविता रचा करते थे : जैसे भूषण की 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल दशक' पद्याकार की 'हिम्मत बहादुरी विरूदावली'।

रीतिकाव्य का उद्देश्य एवं प्रयोजन

सं0 1700–1900 तक विकसित रीतिकाव्य का उद्देश्य जीवन की उदात्त नैतिक मान्यताओं ओर आमुष्मिक चिन्ता का विस्तार करना नहीं था, अपितु यह काव्य अपने सच्चे अर्थों में ऐहिकता परक काव्य था, जिसका विकास युग का सामन्ती छाया में ही सम्भव था। अतः रीतिकाव्य का विवेचन उस युग की मान्यताओं को दृष्टि में रखकर ही किया जा सकता है और यही अधिक विवेकपूर्ण और समुचित भी होगा।

रीतिकाल वस्तुतः 'कला – कला के लिए' जैसे सिद्धान्त का प्रतिपादक है रीतिकवियों का उद्देश्य भी रीतिविवेचन की कला के चषक मात्र शृंगार का आसव ढ़ालन ही था। इस उद्देश्य को भूलकर कुछ आलोचक इस युग के कवियों को अधिक महत नहीं देते और उनकी साहित्यिक सर्जना को केवल क्षत्रिष्णु एवं ध्वंसमूलक प्रवृत्तियों क परिणाम मानते हैं। यही नहीं उनके द्वारा की गई हिन्दी साहित्य की प्रगति में भी वे पू सन्देह प्रकट करते है। यह कहना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है कि रीतिकवियों ने भकि युग की अन्तर्मुखी चेतना से दूर हटकर एकान्त भाव से शृंगार के लौकिक धरातल पर अपन काव्य चेतना का सम्यक् प्रसार करने और उसे यथाशक्य प्रभविष्णु बनाने में जितना अधि योग दिया है, वह अन्यत्र दुलर्भ है। अस्तु, रीति कवियों के उद्देश्य के सम्बन्ध

अधिक अभिज्ञता प्राप्त करने के लिए उनकी रचनाओं का साक्ष्य विशेष उपादेय हो सकता है क्योंकि इन रचनाओं में उनके लक्ष्य एवं उद्देश्य का जितना जीवित सत्य मुखरित हुआ है वह अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों की तुलना में अधिक पुष्ट एवं सबल है।

रीति मुक्त कविता की प्रवृत्तियाँ

रीति मुक्त कवि अपने काव्य के प्रति सचेष्ट रहे हैं। उन्होंने अपने काव्यादर्श व्यक्त किये हैं और उन्हें अपने समसामयिक रीतिबद्ध काव्यादर्शों से पृथक् समझा है। आत्मविभोर होकर काव्य रचना करने वाले यह लोग बौद्धिकता को काव्य का अनुकूल गुण नहीं मानते हैं। ये भाव अपनी भंगिमाओं के ऐसे आकर्षक बिम्ब लेकर आते हैं कि पाठक अरूपता का अनुभव नहीं कर पाता और एक अनोखे भाव लोक में पहुँच जाता है --

(1) **काव्य सिद्धांतों में भिन्नता** :- काव्य के सम्बन्ध में रीति स्वच्छन्द कवियों का दृष्टिकोण रीतिबद्धों से भिन्न था। वे रीति के सँकरे पंथों पर नहीं चलना चाहते थे, वे काव्य-मंदाकिनी का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अभिलाषी थे। "वे काव्य को स्वानुभूति प्रेरित मानते थे आयास-प्रसूत नहीं; इसी से वे रीतिबद्ध काव्य की उपेक्षा ही नहीं निश्चित विगर्हणा की दृष्टि से देखते थे। पिटे-पिटाये ढंग पर छंद रचना कर चलना उनकी दृष्टि में निंद्य था।"[1]

रीति मुक्त कवि स्थापना के मोह में पड़कर 'कवित्त' की रचना नहीं करते थे- अपितु उनका भाव प्रवण हृदय सहज रूप से प्रेम से इतना उच्छलित था कि कवित्त स्वयं उनके मुँह से फूट पड़ते थे-

"लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत" (घनानन्द)

"रीति मुक्त के कवियों के काव्य में एक प्रवृत्ति सर्वत्र मिलती है और वह है आन्तरिकता का गुण। इसी के बारे में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है- स्वच्छ काव्य भाव भावित होता है, बुद्धि बोधित नहीं, इसलिए आन्तरिकता उसका सर्वोपरि

---

1. घन आनंद - डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा - पृ0 सं0 17

गुण है। आन्तरिकता की इस प्रवृत्ति के कारण स्वच्छ काव्य की सारी साधन सम्पत्ति शासित रहती हैं और यही वह दृष्टि है जिसके द्वारा इन कर्त्ताओं की रचना के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है।"

कवि ठाकुर ने अपने काव्य की सरलता और सहजता और स्वच्छता की ओर संकेत करते हुए लिखा है–

"डेल सों बनाय आय मेलत समा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।"[1] (ठाकुर)

(2) प्रेम की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति :–

रीतिकालिक कवियों का मूल केन्द्र बिन्दु प्रेम है, किन्तु रीतिमुक्त कवियों की प्रेम सम्बन्धी धारणा, रीतिबद्ध कवियों से भिन्न है। रीतिमुक्त कवियों को प्रेम अनुभूति जन्य, जबकि रीतिबद्ध कवियों को आरोपित प्रेम है, उसमें ऐन्द्रिय वासना नहीं, प्रेमी वियोग की व्यथा सह कर भी प्रिय की कुशल–कामना करता है। रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में कवियों का बाह्य पक्ष दिखायी देता है, जिसमें काव्य लक्षण बद्ध मार्ग का बना बनाया रास्ता है। प्रेम व्यापार के चुने–चुनाये दृश्य, लक्षण नायिकाओं की लक्षणबद्ध प्रेम चेष्टा–इन सब चीजों का रीतिमुक्त काव्य में सर्वथा अभाव है। इसके स्थान पर रीतिमुक्त कवियों के काव्य में प्रेम का उन्मुक्त स्पन्दन और भाव प्रवणता की स्वच्छ और सच्ची अनुभूति है–

"अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपै झझकै कपटी जे निसाँक नहीं।
घन आनँद प्यारे सुजान सुनौ इत, एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मनु लेहु पै देहु छटाँक नहीं।"[2]

घनानंद की भाँति बोधा प्रेमी कवि हैं, उनका प्रेम माँसल न होकर विशुद्ध प्रेम था। किसी युवती के प्रेम पाश में आबद्ध होने के कारण हृदय की पीड़ा कवित्त बनकर फूट पड़ी।

---

1. घनानंद का रचना संसार – शशि सहगल – पृ सं0 23 से
2. घनानंद – ग्रंथावली – (सुजानहित) – 267

अति छीन मृनाल के तारहु तें तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।

सुई बेह तें द्वार सकीन तहाँ पर तीति को टाँड़ो लदावनो है।

कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।

यह प्रेम को पंथ कराल है, जू तरवार की धार पै धावनो है।"[1]

घनानन्द बोधा और ठाकुर के अतिरिक्त रसखान और आलम ने भी रीति मुक्त काव्य धारा को अपनी सरस, स्वच्छन्द और प्रेम पूर्ण उक्तियों से समृद्ध किया –

"लोक वेद मरजाद सब, लाज काज संदेह।

देव बताय प्रेम करि, विधि निषेध को नेह।। (रसखान)

मन की अटक तहाँ रूप को विचारू कहाँ

रीझिबो को पड़ै तहाँ बूझि कछु न्यारी है।"[2] (आलम)

(3) <u>शृंगार का संयोग पक्ष</u> :–

रीति मुक्त कवियों के काव्य का मूल वर्ण्य शृंगार का सरस चित्रण है, यह शृंगार उनके व्यक्तिगत प्रेम सम्मन्धों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, परन्तु जहाँ यह कवि प्रेमी का आसन छोड़ भक्त के पद पर आसीन हुए वहाँ भी ये शृंगार का व्यामोह नहीं छोड़ सके, इसी कारण से राधा–कृष्ण के निमिष उन्मुक्त भाव संयोग शृंगार का वर्णन प्रस्तुत करते है–

"लाजन लपेटी चितवनि भेद–भाय–भरी,

लसिति ललित लोख–चख–तिरछानि मैं।

छवि को सदन गोरो बदन, रूचिर माल

रस निचुरत मीठी मृदु मुस्क्यानि मैं।।"[3]

---

1. बोधा ग्रन्थावली–सम्पा0 आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र –7
2. घनानंद का रचना संसार–शशि सहगल पृ0 सं0–25
3. घनानंद ग्रन्थावली (प्रकीर्णक) 1

में कहीं अश्लीलता एवं भोग विलासों की एन्द्रीयता नहीं। इसके विपरीत संयोगावस्था भी वियोगमयी सी हो जाती है–

"ये कैसो संयोग न बूझि परै,

जू वियोग न क्यों हूँ विछोहत है। (घनानंद)

इस धारा के कवियों के प्रेम में अन्तरात्मा की पुकार अधिक है। परिपाटी विहित कलात्मक चित्र कम मिलते हैं। काव्य लिखते समय कोई न कोई सजीव प्रतिमा सदैव इनके सामने प्रस्तुत रहती थी, चाहे वह सुजान हो या शेख। इसी कारण इनका श्रृंगार वर्णन जीवन के अधिक निकट जान पड़ता है।"[1]

घनानंद इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते है–

"रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आखिँन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान संकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनंद बबवरी रीझ के हाथनि हारियै।।"[2]

रीतिमुक्त कवियों की दृष्टि अपनी प्रेयसी के अंग–प्रत्यंगो पर न ठहर कर उसकी सम्पूर्ण छबि के अंकन तथा उसके रूप गुण की प्रभावमयता अधिक रहती है।

4. <u>वियोग की प्रधानता</u> :– वियोग में अनुभूति का प्राधान्य और भी बढ़ जाता है, उपमानों ओर बिम्वों के सहारे कवि अन्तर्दशाओं का ऐसा अनुभव करता चलता है कि पाठक भाव मग्न हो जाता है। घनानंद, आलमके काव्य में हमें भावों की अनेक सूक्ष्म अन्तर्दशाओं का वर्णन मिलता है, जा न रूक्ष और न अनास्वाद्य। इस सम्बन्ध में डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा का मत है कि "रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों में यह विरह असाधारण विस्तार में वर्णित हैं। रसखान और द्विजदेव में अपेक्षाकृत कम है, आलम, ठाकुर में विशेष बोधा और घनानंद में तो असाधारण रूप में अधिक। अन्तिम दो कवियों के काव्य में यदि विरह बर्हिगत कर दिया जाय तो फिर उनके काव्य में देखने लायक कुछ रह जायेगा, इसमें संदेह है।

जिसने विरह व्यथा का अनुभव नहीं किया, वह प्रेम पंथ का सच्चा पथिक नहीं है। इतना सच है कि विरह सबने झेला उसकी आँख में सब तपे और इसीलिए

---

1. घनानन्द का रचना संसार – पृ0 सं0 – 26
2. घनानन्द–ग्रन्थावली– (सुजान हित) 41

श्रृंगार काल में इन वियोग भोक्ताओं ओर अनुभावकों का काव्य प्रेम की सच्ची कान्ति से दीप्ति है। मुझे इस दृष्टि से घनानंद और बोधा श्रेष्ठ लगते हैं।"[1]

डॉ0 वर्मा के कथन से मैं पूर्णतया सहमत हूँ, क्योंकि विरह की तड़पन जितनी घनानंद–बोधा में है, उतनी रसखान, आलम एवं ठाकुर में नहीं है। घनानंद तथा बोधा में अतिशय वियोग की प्रधानता है, इसी कारण इनके काव्य में रमणीयता अधिक है।

प्रेम के लिए ये लोग बड़े से बड़े त्याग करने को तैयार हैं –

जो विशेष जग मांहि एक बेर मरने परै।

तो हित तजिये नाहिं इश्क सहित मरिबो भलो।।"[2]

इनकी व्यथा का अन्त नहीं, इनकी संवेदनाओं को विरही ही समझ सकता है, ठाकुर का कथन है –

कवि ठाकुर आपनी चातुरी सो सब ही सब भाँति बखानतु है।

पर पीर मिलै बिछुरे की बिथा मिल कै बिछुरै सोई जानतु है।

इन स्वच्छंद कवियों की प्रेम व्यथा, सूफियों के 'प्रेम के पीर' से प्रभावित है, घनानंद और बोधा पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इस संबन्ध में डा0 मनोहर लाल गौड़ का विचार है कि "स्वच्छंद धारा के कवियों विशेषतः घनानंद ने फारसी काव्य पद्धति से प्रिय की कठोरता ओर सूफी कवियों से प्रेम की पीर की प्रेणना ली है। फलतः उनकी रचनाओं में वियोग का प्राधान्य स्वाभाविक है।"[3]

नसा कध्धी न खाते हैं। अये हम इस्क माते हैं।

गये थे बाग के ताईं। उतै वे छोकरीं आईं।

इस्क दिलदार सो लागा। हमन दिलदर्द अनुरागा।"[4]

---

1. घनानंद– डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा – प0 सं0 39
2.
3. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा – पृ0 सं0 261
4. विरहवारीश – 12/19–21

यहाँ एक बात संक्षेप में स्पष्ट करना चाहूँगी कि स्वच्छन्द कवियों का विरह वर्णन रीतिबद्ध कवियों से भिन्न है, कारण–अनुभूति प्रवणता है, क्योंकि रीतिबद्ध कवि परायी व्यथा का निवेदन करते हैं तो रीतिमुक्त स्वानुभूत। स्वच्छन्द धारा के कवियों ने किसी भी सामाजिक मर्यादा की चिन्ता नहीं की, उनका जीवन ही प्रेम के लिए उत्सर्ग किया जा चुका था–

"बरूनीन मैं नैन झुकै उझकै मनौ खंजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौ सजनी अंजुरीन के पोरन छाले परे।।
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहिए निज प्रीति करे के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी जिन्ह देखिबे के अव लाले परे।।

(ठाकुर)

"एक तो यह कि इन कवियों ने मात्र नारी के विरह का ही चित्रण नहीं किया है, पुरूष के विरह का भी वर्णन किया है, जैसे रीतिबद्ध काव्य में कम मिलता है। 'बोधा' ने माधवानल कामकंदला में माधव का विरह स्थान–स्थान पर दिखाया है, यही बात 'आलम' के भी आख्यान हैं और गोपी–घनश्याम के ब्याज से वर्णित सात गोपी–विरह मूलतः तो घनानंद की स्वीय प्रीति–व्यथा की अभिव्यक्ति है।"[1]

साराँश में रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने प्रेम की पीर का विलक्षण चित्र प्रस्तुत किया है, इनके आँसू रूकने का नाम ही नहीं लेते, किराये पर लेने का प्रश्न नहीं उठता। रीति मुक्त कवियों के आँसू ही उनकी सारी पूँजी है– उसे समझने के लिए हृदय की आँखे चाहिए–

"समुझै कविता घनानंद की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी।"

(5) प्राचीन परम्परा का त्याग :–

प्राचीन काव्य–परम्परा का त्याग इनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है। रीतिकाल का समूचा साहित्य या तो आलंकारिक चमत्कारों के प्रभाव से शोभा सम्पन्न

---

1. घन आनंद – डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा – पृ0 सं0 49

हुआ है या फिर नायिका भेद अथवा भावभेद से। "रीतिमुक्त कवियों ने अपनी काव्य शैली पर जानबूझकर अलंकारों के चमत्कारों को आरोपित नहीं होने दिया है। ठाकुर ने प्राय: निरलंकृत सहज भाषा में अभिव्यक्तियाँ दी हैं। घनानंद ने अलंकारों का प्रयोग सबसे अधिक किया है, पर वे सप्रयास प्रयुक्त नहीं हुए। भाव के अंग रूप में प्रकट हुए हैं। 'आलम' और 'घनानंद' के काव्य में सैकड़ों ऐसे पद्य मिलते हैं, जिनमें एक भी अलंकार नहीं पर कविता अपनी मार्मिकता से हृदय को छू लेती है। इन कवियों की नायिकाएं व्यक्ति भी हैं, उनकी रूप चेष्टाओं का उन्होंने आँखो-देखा वर्णन किया है। सुजान का सोकर उठना, चिक से झाँकना, काली साड़ी पहनना, सज कर चलने को उद्यत होना, शराब पीना, नाचने को ऐड़ी उठाना, आदि छोटी-छोटी शतशः चेष्टाएं घनानंद के काव्य में वर्णित हैं, जिनकी प्रेरणा नायिका भेद से प्राप्त नहीं हो सकती। अतः रीति मुक्त कवियों के वर्ण्य विषय और उनकी वर्णन शैली, दोनों काव्य परम्परा से मुक्त हैं।"[1]

"रीतिकाल का रीतिबद्ध साहित्य, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार, रीति आदि काव्य सम्प्रदायों को दृष्टि में रखकर काव्य रचना करता था, परन्तु रीति मुक्त कवि ने किसी भी नियम, लक्षण, सम्प्रदाय को अनुसरण न करके एक नवीन काव्य परम्परा को जन्म दिया। वास्तव में यही इसकी विशेषता भी है कि इस धारा के काव्यकारों को 'विशेष' बनने का मोह न था।"[2]

"अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ झझके, कपटी जे निसाँक नहीं।।"[3]

घनानंद का उपर्युक्त काव्य उद्धरण सम्पूर्ण रीतिबद्ध धारा से रीति मुक्त काव्यधारा को अलग कर देता है। प्राचीन परम्परा के कवि सूधे मार्ग पर चल नहीं सकते थे, क्योंकि स्थापना को मोह, पाण्डित्य प्रर्दशन उन्हें रोकता था। उनके लिए 'सयानप' और 'बाँकपन को त्याग कर सहज मार्ग पर चलना कठिन था, इसी कारण उनके काव्य में प्रेम का जो रूप चित्रित हुआ है, रीतिमुक्त काव्य में उसका अभाव है।

---

1. घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा - डॉ0 मनोहर लाल गौड़
2. घनानंद का रचना संसार-शशि सहगल पृ0 सं0 -30
3. सुजानहित - 267

6. रीतिमुक्ति कवियों की भक्ति भावना :-

रीति युगीन सभी कवियों ने राधा–कृष्ण का स्मरण किया। रीति मुक्त धारा के कवि घन आनंद, बोधा, आलम, ठाकुर एवं रसखान सभी कवियों भक्ति परक रचनाएं निर्मित की। इन कवियों का मुख्य उद्देश्य श्रृंगार चित्रण करना ही था। रीति मुक्त कवियों का पूर्वाद्ध जीवन रास रंग, वैभव विलास में व्यतीत हुआ। 'घनानंद' ने सुजान के साथ, बोधा ने 'सुभान' के साथ आलम ने 'शेख' के साथ भोग विलास द्वारा मादक दिन व्यतीत किए। जीवन के उत्तरार्द्ध में यौवन का नशा उतरा, कहीं प्रेमी के सरस हृदय को ठेस लगी, प्रेम विरह में परिवर्तित हो गया। जब प्रेमी सब जगह से निराश हो जाता है तो ईश्वर की शरण के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं बचता। रीतिमुक्त कवियों के साथ ऐसा ही हुआ, प्रेम में असफल होने के कारण प्रेम–पारलौकिक हो गया। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का कथन है कि–

"वह दरवार से निकाले जाने के उपरान्त वैराग्य धारण करके बृन्दावन आये, और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव हो गये और वहीं पूर्ण विश्वत भाव से जीवन–यापन करने लगे। उन्होंने अपनी कविताओं में बराबर सुजान को सम्बोधित किया है जो श्रृंगार में नायक के लिए और भक्ति भाव में कृष्ण भगवान के लिए प्रयुक्त मानना चाहिए।"[1]

घनानंद को 'डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी' भक्त कवि मानते हैं। घनानंद की भाँति कवि 'ठाकुर' ने अपनी भक्ति भावना का परिचय प्रस्तुत कवित्त ने अभिव्यक्त किया है–

"दस बार बीस बार बरज दई है, याहि,
एते पै न मानै जौ तौ जरन बरन देव।
कैसे कहा कीजै कछु आपनौ करो न होई,
जाके जैसे दिन ताके वैसे ही भरन देव।।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

'ठाकुर' कहत मन आपनौ मगन राखो,

प्रेम निरलंक रस रंग बिहरन देव।

विधि के बनाय जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ,

खेलत फिरत तिन्है खेलन फिरत देव।।"[1]

'रसखान' अपनी भक्ति–कृतियों के कारण ही प्रसिद्ध हैं, कवि, श्रीकृष्ण की भक्ति में इस कदर डूबा है कि अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तत्पर है–

"या लकुटी अरू कामरिया पर, राज तिहुं पुर को तजि डारौं।

आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं।।"

(7) लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति :–

रीति मुक्त कवियों ने अपने काव्य में – ब्रज की संस्कृति का चित्रात्मक वर्णन बड़ा ही सजीव किया है। हिन्दू त्योहारों में होली, तीज, श्रीकृष्ण–राधा जन्म, गनगौर, विवाह, बसन्त, गोवर्धन पूजा यज्ञोपवीत संस्कार, वन देवी पूजन एवं वट–सावित्री की भव्य आकर्षक झाँकी प्रस्तुत की है।

रीतिबद्ध कवि होली से आगे नहीं बढ़ सके। रीतिबद्ध कवि केवल गुलाल केशर तक ही सीमित रहे। अक्षय तृतीया के दिन नर–नारियों के सहज व्यवहार का सजीव चित्रण 'ठाकुर' ने प्रस्तुत किया है–

"गाँठ गठीली चमेली की बोदर, घालो न कोऊ अनुतरी कैहे।

उसई नाम लेवाओ तो लेहैं, पै घाले ते लाल कहा रस रैहै।।

ठाकुर कंज–कली सी लली, बलिया जड़ चोट सरीर न सैहै।

बाल कहै कर जोर हहा, यह बोदर लाल हमैं लगि जैहै।।"[2]

---

1. ठाकुर – ठसक – ठाकुर
2. ठाकुर – ठसक – ठाकुर

इसी प्रकार 'बोधा' ने माधवानल कामकंदला में विवाह के समय कलश–मंडप का सजीव चित्र चित्रित किया है–

"जातरूप मय कलस संवारी। चित्र सहित बहुधा छवि वारी।।
हरित बाँस मंडप सुभ साजा। जामुन पल्लव छाया विराजा।।"[1]

"प्रकृति चित्रण में द्विजदेव और बोधा ने स्वच्छन्दता से काम लिया है। आलम ने भी प्राकृतिक रमणीयता का यत्र–तत्र विशद वर्णन किया है, द्विजदेव का प्रकृति प्रेम प्रसिद्ध है। अन्य रीति मुक्त कवियों ने भी साँस्कृतिक अभिरूचि का परिचय दिया है, जिनमें द्विजदेव का प्रकृति वर्णन, ठाकुर का गनगौर चित्रण तथा बोधा का होली वर्णन अत्यन्त सजीव रहा है।"[2]

(8) <u>अरबी–फारसी काव्य–प्रवृत्तियों से प्रभावित</u> :–

रीति मुक्त कवियों की काव्य शैली अरबी–फारसी से ज्यादा प्रभावित है। कारण यह कि इन कवियों का वातावरण दरबारी था। दरबार में फारसी कवियों में सान्निध्य में ये रीति मुक्त कवि आये, परिणाम स्वरूप इन कवियों की शैली में अरबी–फारसी के कवियों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। चाहे वह शृंगार चित्रण हो या प्रेम का वर्णन। 'इश्क लता' का एक उदाहरण जिसमें फारसी के शब्द और प्रभाव दोनों ही स्पष्ट हैं–

"पल पल प्रीति बढ़ाय हुवा बेदरद है।
आसिक–उर पर जान चलाई करद है।।
घनी हुई महबूब सु–मरम न छोलियै।
आनँद–जीवन ज्यान दया कर बोलियै।।"[3]

घनानंद और बोधा के समान आलम की शैली में भी फारसी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

---

1. विरह – वारीश – 30/26
2. घनानंद की काव्य साधना – डॉ0 सभापति मिश्र पृ0 सं0 48
3. इश्कलता – 7

(9) **प्रकृति चित्रण** :–

रीतिवद्ध कवियों से भिन्न रीति मुक्त कवियों ने प्रकृति चित्रण प्रस्तुत किया है। रीति मुक्त कवियों का प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप में नहीं स्वाभाविक रूप में चित्रित है, इस काल के कवियों ने प्रकृति चित्रण द्वारा हृदय पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर संकेत किया है–

> "एरे बीर पौन। सबै ओर गौन, वारी
> तो सो और कौन, मन ढ़रकोंहों आनि है।
> जगत के प्रान, ओछे बड़े सों समान,
> घन–आनँद–निधान, सुखदान दुखियानि दै।।"[1]

बोधा का 'विरह – वारीश' इस दृष्टि से श्रेष्ठ कहा जा सकता है, उनका प्रकृति वर्णन कुछ तो शास्त्रबद्ध और कुछ स्वच्छन्द वृत्ति वाला है।

(10) **भाषा** :–

रीति मुक्त कवियों ने ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग किया है, कहीं भी तोड़ा–मरोड़ा नहीं, अनावश्यक उपसर्ग प्रत्यय को लगाकर भाषा को महत्वहीन नहीं होने दिया। इस सन्दर्भ में डॉ0 वर्मा का कथन है कि "रसखान की सादगी और भावुकता घनआनँद का विरोधाश्रित भाषा–शिल्प, ठाकुर की लोकोक्ति प्रधान तथ्य गर्भित शब्दावली बोधा की विरहोन्मत वाणी अलग सभी अलग हैं। आलम का भाव और शैली विषयक संतुलन और द्विजदेव की धारा शैली भी विशिष्ट है। बोधा, ठाकुर और द्विजदेव के लिए अलंकार बहुत कुछ अनपेक्षित ही था।"[2]

रीति मुक्त कवियों की भाषा तो ब्रजभाषा ही थीं, लेकिन हृदयग्राहिता और नवीनता इन कवियों की मौलिक विशेषता है। घनानन्द ने भाषा प्रवीन होने के कारण ब्रज के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों को स्थान दिया है– जैसे फारसी, अरबी, पंजाबी, पहाड़ी, राजस्थानी इत्यादि।

---

1. सुजाज हित – 259
2. घनआनँद – डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा पृ सं0 – 55

"नेही महा ब्रजभाषा–प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानै।
जोग–बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना–भेद–स्वरूप को ठानै।।
चाह के रंग मैं भी ज्यौ हियो, बिछुरें मिलें, प्रीतम सांति न मानै।
भाषा–प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै।।"[1]

भाषा के सम्बन्ध में डॉ0 गौड़ का मत है कि –

"भाषा की स्वाभाविक स्वच्छन्दमार्गी सभी कवियों की अपेक्षा बोधा में अधिक है। ठाकुर ने लोकोक्तियों द्वारा घनानंद ने लक्षणाओं के बल से तथा आलम ने अलंकारों के प्रयोग से चमत्कार का आश्रय ग्रहण किया है। उर्दू–फारसी के शब्द अवश्य कहीं–कहीं बीच में आ जाते हैं। फारसी के प्रभाव से भाव भी कहीं–कहीं अधिक खुले और बाजारू हो गये हैं, पर ऐसे स्थल कम हैं और वे कवि की स्वच्छन्दता की द्योतक हैं।[2]

इस तरह हम देखते हैं कि इन मुक्त कवियों ने दरबारी संस्कृति से कविता को बाहर निकालकर सामान्य के कंठ का हार बना दिया।

रीति मुक्त काव्य धारा के प्रमुख कवि

रीति मुक्त काव्य धारा के प्रमुख कवियों में घनानंद तथा बोधा का सामान्य परिचय आगे प्रस्तुत किया जायेगा, शेष कवियों का सामान्य परिचय प्रस्तुत है–

आलम :– हिन्दी साहित्य में आलम नाम के दो कवि हुए हैं। एक सोलहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में– जिन्होंन 'माधवानल कामकन्दला' नामक प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की। रीति मुक्त धारा के आलम का रचनाकाल

---

1. प्रशस्ति – 1
2. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा – डॉ0 मनोहर लाल

संवत् 1740 माना जाता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र दोनों आलम को एक ही मानते हैं, जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मन्तव्य है कि – एक अकबर के समसामयिक और दूसरे औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम के आश्रित। आलम की 'स्याम सनेही' और 'सुदामा चरित' दो रचनाएं और प्रकाश में आ गयी हैं। इस प्रकार 'माधवानल कामकन्दला' 'स्याम सनेही' एवं 'सुदामा चरित' तीन प्रवन्ध काव्य और एक मुक्तक–संग्रह 'आलमकेलि'। शुक्ल जी के मतानुसार प्रवन्धकार आलम और हैं और मुक्तककार और। काव्य–रूप और शैली की भिन्नता इस मान्यता के मूल में है।

मेरी अवधारणा है कि 'आलम' एक ही थे। आलम जाति के ब्राह्मण थे परन्तु शेख नामक रंगरेजिन के प्रेमपाश में आबद्ध होकर इन्होंने विवाह कर लिया था और मुसलमान हो गए थे। यह प्रेम कहानी भी बड़ी रोचक है। आलम पगड़ी बाँधा करते थे, एक दिन उन्होंने पहले की तरह अपनी पगड़ी रंगने को दी, जिसके कोने में दोहे की एक पंक्ति लिखी हुई बंधी थी–

'कनक छरी सी कामिनी काहै को कटि छीन।'

रंगरेजिन पगड़ी रंगने लगी लगी तो उसने उपर्युक्त अधूरा दोहा पढ़ा, झट से उसने इसकी दूसरी पंक्ति लिखी–

"कटि को कंचन काट विधि कुचन मध्य धरि दीन।।"

और पगड़ी भेज दी। 'आलम' रंगरेजिन की कवित्व शक्ति से इतना प्रभावित हुए कि विवाह–बन्धन में आबद्ध हो गए। रंगरेजिन का नाम 'शेख' था। परन्तु डॉ0 मनोहर लाल ने लिखा है कि– 'शेख' किसी स्त्री का नाम नहीं था, क्योंकि मुसलमानों में 'शेख' नाम स्त्रियों के लिए नहीं मिलता। वास्तव में आलम का ही दूसरा नाम 'शेख' था – जो कभी 'आलम' के नाम से लिखते थे ओर कभी 'शेख' के नाम से।"[1]

इस सन्दर्भ में डॉ0 नगेन्द्र का मत है कि "आलम, घनानंद की भाँति सर्वथा

---

1. घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा– डॉ0 मनोहर लाल गौड़

स्वच्छन्द नहीं है, इनके कवित्त–सवैयों में रीति परम्परा के गुण भी कुछ–कुछ मिल जाते हैं। xxx विभाव, अनुभाव, नायिका भेद आदि की रीतिबद्ध परम्परा से मुक्त होकर मन की उलझन और व्यथा की अनेक ऐसी अन्तर्दशायें आलम ने चित्रित की हैं, जो रीतिबद्ध काव्य में देखने को नहीं मिलती। उनके द्वारा वर्णित प्रेम चेष्टा प्रधान बाह्य नहीं है, अनुभूति प्रधान आन्तरिक है; इसके लिए उनकी शैली मार्मिक है। उसमें अभिलाषा और वेदना की प्रधानता है, इसलिए वह आपततः फारसी की प्रेम–पद्धति की ओर अधिक झुका है–

"जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यों करैं।
जा रसना सों करि बहु बात सु ता रसना सों चरित्र गुन्यों करैं।।
'आलम' चैन से कुंजन में करी केलि वहाँ अब सीस धुन्यों करैं।
नैनन में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं।।"[1]

ठाकुर :– रीति स्वच्छन्द धारा के कवि 'ठाकुर' का जन्म ओरछे में संवत् 1822 में हुआ। इनका नाम लाला ठाकुरदास था। यह जैतपुर नरेश के राजकवि थे। ठाकुर का साहित्य मात्रा में अधिक नहीं है। उनके दो संगह उपलब्ध हैं– 'ठाकुर ठसक' और 'ठाकुर शतक', जिनमें से 'शतक' के कुछ पद्य 'ठसक' में भी आ गये हैं। "अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों में ये सहज–स्वाभाविक हैं। इनके भाव व्यक्तिगत होकर भी सार्वजनीन हैं। हृदय–हृदय में उनका स्पन्दन होता है। भाषा भी बोलचाल की, चलती और स्वच्छ है। उसमें प्रवाह तो है पर अलंकार आदि का लदाव नहीं। निश्छल अनुभूति और अकृत्रिम अभिव्यक्ति ठाकुर को रीतिबद्ध कवियों से पृथक कर देती है–

"का करियै तुम्हरे मन कौ जिनकौ अब लौं न मिटी दगा दीबौ।
पै हम दूसरो रूप न देखिहैं आनन आन को नाम लीबो।।
ठाकुर एक सों भाव है तौ लगि जो लगि देह धरे जग जीबो।
प्यारे सनेह निबाहिबे को हम तौ अपनो सौ कियो अरू कीबो।।"[2]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – संपादक डॉ0 नगेन्द्र पृ0 सं0 375
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – संपादक डॉ0 नगेन्द्र पृ0 सं0 376

ठाकुर के काव्य में तत्कालीन लोक संस्कृति और लोक जीवन का भी सुन्दर चित्र मिलता हैं। तीज–त्योहारों तथा ब्रज–संस्कृति के लोक पर्वों की मनोहर झाँकी भी इनके काव्य में मिलती है।

"रीतिबद्ध कवि अभिव्यक्ति के लिए लक्षण–बद्ध हो अलंकारों से युक्त काव्य रचना करते थे। यह शैली इतनी बासी हो चुकी थी कि अब उसमें कोई आकर्षण शेष न बचा था। ठाकुर ने रीतिमुक्त धारा लोकोक्तियों और मुहावरों का इतना उन्मुक्त प्रयोग किया है कि वे एक नवीन मार्ग की स्थापना करते से लगते हैं। ठाकुर ने परम्परागत अलंकारों के स्थान पर मुहावरों और लोकोक्तियों को अपनी भाषा का सहज अलंकरण बना दिया।"[1]

<u>रसखान</u> :– रसखान का जन्म संवत् 1615 के आस–पास दिल्ली में हुआ था। यह जाति के पठान मुसलमान थे। रसखान, रसखानि या रसखाँ कवि का उपनाम है। इनका वास्तविक नाम क्या था, इस विषय में विद्वानों में विवाद है. अधिकतर आलोचक "सैयद–इब्राहिम" नाम असली नाम मानते हैं। युवावस्था में ये वृन्दावन आ गये, वहाँ के उपदेशों से इनके हृदय में कृष्ण भक्ति का अनुराग जाग्रत हुआ और धीरे–धीरे वह इतना बढ़ गया कि अन्ततः यह कृष्ण भक्त ही हो गये। मुसलमान होने पर भी गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने इन्हें वैष्णव धर्म में दीक्षित करके अपना शिष्य बना लिया।

रसखान की दो रचनाएं उपलब्ध होती हैं– 'सुजान रसखान' और 'प्रेम वाटिका'। कृष्ण सौन्दर्य का इन्होंने अपनी कृतियों में बड़ा ही सरस, हृदयहारी एवं मधुर वर्णन किया है। 'रसखान' की रचनाओं में कृष्ण प्रेम की जो अनन्यता मिलती है, वह इन्हें सूर से भी उच्चकोटि का भक्त सिद्ध करती है। अगले जन्म में भी वे श्रीकृष्ण का सान्निध्य चाहते हैं :–

---

1. घनानंद का रचना संसार – शशि सहगल – पृ0 सं0 42

"मानुस हौं तो वही रसखानि वसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौ नित नंद की धेनु मंझारन।।

"रसखान ने प्रेम की कठोरता को ही उसकी प्रमुख विशेषता कहा है। प्रेम का पंथ सीधा नहीं होता, यह बात घनानंद, बोधा ने भी कही है, प्रेम में प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है, अपना हृदय समर्पित करना पड़ता है। प्रेम मार्ग की यही कठोरता प्रेमी को अमरत्व प्रदान करती है—

"प्रेम फाँस में फंसि मरै, सोई जिये सदाहिं।
प्रेम—मरन जाने बिना मरि कोउ जीवत नाहिं।।"[1]

रसखान की स्वच्छन्द भाव धारा का उल्लेख करते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं कि "जिस प्रकार यह रीति से अपने को स्वच्छन्द रखते थे, उसी प्रकार भक्ति की साम्प्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्तिमार्गी कृष्णमार्गी कृष्ण—भक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कवियों, सबसे पृथक स्वच्छन्द प्रेमोन्मत गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्ति विषयक रचना के कारण भक्त कहता है तो कहे, पर इतने 'व्यतिरेक' के साथ कहे कि यह स्वच्छन्द प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नहीं है।"

रसखान की सम्पूर्ण कविता व्रजभाषा में निबद्ध है, जिसकी सरसता और सरलता अपनेआप में एक विशेषता है। रसखान ने प्रवाहपूर्ण भाषा में अपने हृदय का समस्त माधुर्य उड़ेल दिया है। मुहावरे और अनुप्रास का आधिक्य होने पर भी उनकी कविता भाषा—गत दोष से रहित है। यदि रसखान का मूल्यांकन एक ही वाक्य में करना चाहें तो भारतेन्दु का विचार पर्याप्त है—

"इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिन्दू वारिये।"

<u>द्विजदेव</u>:— अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह 'द्विजदेव' का जन्म सम्वत् 1877 के आस—पास हुआ था, यह शाक द्वीपी ब्राह्मण थे। विद्वानों एवं कवियों के आश्रयदाता थे। प्रसिद्ध कवि 'लछिराम' और 'रसिक विहारी' इनके दरवार में रहते थे।

---

1. घनानंद की काव्य साधनाः डॉ0 सभापति मिश्र पृ सं0 60 से

50 वर्ष की अवस्था में इनका निधन हुआ। द्विजदेव ने दो ग्रन्थ लिखे हैं– श्रृंगार लतिका, श्रृंगार बत्तीसी। द्विजदेव की गणना रीतिबद्ध और रीति मुक्त दोनों काव्यधाराओं में की जाती है, किन्तु इनकी प्रवृत्ति स्वच्छन्द काव्य रचना की ओर अधिक रही है। इन्हें प्रकृति से प्रेम था, इसीलिए इनका अधिकाँश काव्य ऋतु वर्णन से भरा पड़ा है।

डॉ0 मनोहरलाल गौड़ के अनुसार, "उन्होंने श्रृंगार के रीति ग्रस्त वर्णनों के साथ–साथ हृदय की अनेक अन्तर्दशाओं का मार्मिक उद्घाटन किया है, जिससे वे घनानंद की दिशा में बढ़ते प्रतीत होते हैं। रोष , क्षोभ, दैन्य, अधैर्य, घृति, स्मृति उद्वेग, जड़ता आदि कितने ही भावों की सफल व्यंजना उन्होंने की है। ऐसा वे वियोग के प्रसंग में ही कर पाये हैं, संयोग वर्णन तो परम्पराग्रस्त है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय विशेषता प्रकृति–वर्णन की है। उनका प्रकृति प्रेम स्वच्छन्द है। प्रकृति का आलम्बन रूपों में भी उन्होंने वर्णन किया है।"[1]

"डोलि रहे बिकसे तरू एकै,
सु एकै रहि हैं नवाइकै सीसहिं।
त्यौं द्विजदेव मरन्द के व्याजहिं
एक अनन्द के आँसू बरी सहिं।
तैसेउ के अनुराग भरे,
कर पल्लव जौरि कै एकै असीसहिं।।"

द्विजदेव की एक कृष्णाभिसारिका नायिका वर्षा ऋतु की अंधेरी रात में प्रियतम का सम्भोग सुख प्राप्त करने जाती है। वह अत्यन्त निडर है, क्योंकि मनोरथ उसकी सवारी है, मिलन की उमंग उसकी सखी है, कामोन्माद उसकी रक्षा के सैनिक हैं और मुखचन्द्र ही उसके लिए नसाल है–

"कारो नभ कारी निसा कारिऐ डरारी घटा,
झूकन बहत पौंन आनंद को कंद री।
द्विजदेव साँवरी सलोनी सजी स्याम जू पै,
कीन्हौं अभिसार लखि पावस अनंद री।

---

1. घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा – डॉ0 मनोहर लाल गौड़

नागरी गुनागरी सु कैसे डरै, रैनि डर,

जाके संग सोहैं ए सहाइक अमंद री।

बाहन मनोरथ उमाहि संगवारी सखी

मैनमद सुभट मसाल मुखचंद री।

द्विजदेव की भाषा परिमार्जित ब्रजभाषा है। उनकी भाषा में माधुर्य गुण के साथ-साथ साहित्यिकता विद्यमान है। शैलीगत अलंकृति पर उन्होंने प्रायः ध्यान नहीं दिया है। वे भाव प्रवण कवि थे, अलंकारो का नगण्य प्रयोग उनके काव्य में मिलता है। कवित्त और सवैया छन्दों का प्रयोग द्विजदेव ने किया है। इनके काव्य में रूप के राशि-राशि चित्र हैं और हृदय की गम्भीरता गहराई भी विद्यमान है। द्विजदेव रीति मुक्त काव्य धारा के अन्तिम कवि हैं।"[1]

निष्कर्ष यह है कि रीति काल की रीतिबद्ध धारा में चलने वाली लक्षणानुधावन परम्परा से दूर रहकर जिन कवियों ने हृदय की रागात्मकता के उन्मुक्त गीत गाये हैं, उनमें घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर, रसखान एवं द्विजदेव प्रमुख हैं। इस धारा के अधिकाँश कवियों ने वैयक्तिक जीवन, प्रेम की मस्ती में व्यतीत किया, जबकि, जीवन की साँध्य बेला में यह प्रेम विरह में परिणित होकर ईश्वरोन्मुख हो गया। इसीलिए इनके काव्य का मूल स्वर प्रेम है। प्रेम के चित्रण में अन्य कवियों की अपेक्षा घनानंद इसलिए श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उन्होंने अपने प्रेम कौशेय पट का ताना-बाना जहाँ एक ओर मांसल सौन्दर्य चित्रण से किया है, वहीं दूसरी ओर सरसता, नादकता, हृदयद्रावकता, अतृप्ति का विशेष योग है। इस दृष्टि से ठाकुर की तन्मयता, बोधा की रस सिद्धता, रसखान की अनिर्वर्चनीयता एवं आलम की उन्मुक्तता, घनानंद में पूरी की पूरी एक साथ मिलती है, साथ ही भाषा-शिल्प की दृष्टि से बोधा, आलम, द्विजदेव में जितना माधुर्य है, आलम और रसखान में जितनी ऋजुता और रसपेशलता उन्हें, उससे कहीं अधिक घनानंद की भाषा में मसृणता, वैचित्र्य, लाक्षणिकता और इससे आगे वढ़कर अनुभूति सफल संप्रेषणीयता है, वह समूचे ब्रजभाषा में अन्यत्र दुर्लभ है। निश्चय ही भाव और भाषा की दृष्टि से घनानंद और बोधा इस काव्य धारा के विशेष कवि हैं।

---

1. घनानंद की काव्य साधना – डाॅ0 सभापति मिश्र पृ0 सं0 64

घनानंद का जीवन–वृत्त :–

भारतीय काव्य–प्रणेताओं तथा साहित्यिक मनीषियों ने ज्ञानोदधि में डुबकी लगा अगणित अमूल्य रत्नों को खोजकर अमित यश अवश्य प्राप्त किया, किन्तु अपनी जीवन–सम्बन्धी घटनाओं को कभी उद्‌घाटित नहीं किया। उपमा स्थापक कालीदास, अर्थगौरव के संवाहक भारवि, पद्य लालित्य–प्रणेता दण्डी, जिनकी कविता सर्वगुण सम्पन्न है– ऐसे माघ तथा राम कथा के अमर गायक संत प्रवर तुलसी, कृष्ण चरित के अमर गायक सूर एवं हिन्दी के अनेक काव्य प्रणेताओं का जीवन–वृत्त अन्धकार के गहन–गह्वर में क्षिप्त है।

रीति मुक्त काव्य धारा के जाज्वल्यमान नक्षत्र घनानंद का जीवन अस्पष्ट और अंधकारमय है, उस प्रेम के दीवाने और कृष्ण के मस्ताने भक्त को क्या ज्ञात था कि उसके हृदय के भावों का मूल्यांकन करने के लिए उसके जीवन की खोज कितनी आवश्यक सिद्ध होगा? संभवत: उसका प्रेम वत्सल हृदय अपने प्रेमी की महिमा का वर्णन करने में ही मग्न रहता था, अपने विषय में कुछ लिखने का उसके पास अवकाश कहाँ?

आनंद, आनंद घन एवं घन आनंद :–

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में घनानन्द के नाम के सम्बंध में बड़ी भ्रमात्मक धारणायें प्रचलित रहीं हैं। कारण यह कि हिन्दी साहित्य में केवल एक ही घनानंद नहीं हुए, इस नाम के अन्य कवि भी मिलते हैं।

डॉ0 ग्रियर्सन ने 'आनंद' को ही रीति मुक्त काव्य धारा के कवि घनानंद माना है। उनके मत में 'घन' शब्द आनंद के साथ नहीं, पर वे 'आनंद' ही 'घनानंद' हैं।"[1]

---

1. दि मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान – डा0 ग्रियरसन. – पृ0 92
– सं0 347

नवीन शोध में 'आनंद' कवि की एक पुस्तक 'कोकमंजरी' का पता चला है। जिसके आधार पर इनका कुछ परिचय प्राप्त होता है–

"कायथ–कुल आनंद कवि, बासी कोट हिसार।
कोक कला इहि रूचि करन, जिनि यह कियो विचार।।
ऋतु बसन्त संवत् सरस सोरह सै अरू साठ।
कोक मंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ।।"[1]

सं0 1660 में 'आनंद' कवि विद्यमान थे। 'साहित्य भूषण' के रचयिता महादेव प्रसाद ने आनंद घन (या घनानंद) को कायस्थ–कुल का तो अवश्य बतलाया है, पर वे इन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले का मुंशी भी कहते है, जो अंत समय में बृन्दावन गये और नादिरशाह के मथुरा आक्रमण में मारे गये। मुहम्मद शाह रंगीले का शासनकाल संवत् 1776 से 1805 तक था और नादिर शाह के आक्रमण का समय संवत् 1796ः इस प्रकार 'आनंद' और 'आनंद घन' दोनों के जीवनकाल में सौ से अधिक वर्षों का अन्तर है।

शिव सिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में 'आनंद घन' कवि दिल्ली वाले का समय संवत् 1715 दिया है।[2]

इस संबध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मन्तव्य है कि 'सरोज का यह समय कवि का काव्य–काल ही है, जन्मकाल नहीं। इस प्रकार भी दोनों के समय में 40 वर्षो का अन्तर पड़ता है। दोनों की रचनाओं में तो जमीन–आसमान का नहीं, आकाश–पाताल का अन्तर है। इसलिए 'आनंद' और 'आनंदघन' पृथक–पृथक कवि हैं।"[3]

'आनंद घन' भी क्या एक ही थे? 'मिश्र बन्धु–विनोद में उक्त दिल्ली वाले आनंद घन के अतिरिक्त 144/1 सं0 पर एक दूसरे आनंद घन का विवरण भी इस प्रकार दिया है। "आनंदघन, ग्रन्थ–आनंदघन–बहत्तरी–स्तवविली रचनाकाल–1705

---

1. खोज, 1923 – 10 बी
2. सरोज – शिव सिंह सेंगर – सप्तम् संस्करण, पृ0 सं0 380

विवरण यशोविजय के सम सामयिक थे।"

किन्तु श्री क्षितिमोहन जी सेन ने 'वीणा' में जैन मर्मी आनंद घन शीर्षक विस्तृत लेख लिखकर वृन्दावन के 'आनन्द घन' और 'जैन मर्मी आनंद घन' के एक होने की संभावना प्रकट की है।"[1]

"श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी ने इन आनंद घन और जैनमर्मी आनंदघन को एक बतलाया है।"[2] आधुनिक शोध से पता चलता है कि जैन धर्मी घनानंद और बृन्दावन के आनंदघन दोनों एक व्यक्ति नहीं थे– भिन्न–भिन्न व्यक्ति थे। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तर्क द्वारा स्पष्ट किया है कि दोनों व्यक्तियों के काव्य रचनाकाल का समय एक नहीं और न ही उनके काव्य में कोई समानता ही है। मिश्र जी ने दोनों व्यक्तियों के काल में कम से कम सौ वर्ष का अन्तर माना है। जैन धर्मी घन आनंद का समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनकी रचनाओं में 'प्रीति विमल' संवत् 1671, 'समय सुंदर' संवत् 1672 तथा 'जिनराजसूरी' सवत् 1678 के 'जिनस्तवन' की अनेक पंक्तियाँ मिलती हैं। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने जो सौ वर्ष का अन्तर माना है वह संभवतः इसी कारण है कि बृन्दावन वासी 'आनंद घन' का समय विक्रम की 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

जैन धर्मी 'घन आनंद' और बृन्दावन के 'आनंद घन' के पश्चात् तीसरा नाम शेष रहता है और वह है, 'नंद गाँव के आनंद घन' इनका समय श्री चैतन्य महाप्रभु का है, अर्थात यह एक महाप्रभु के समसामयिक कवि ठहरते हैं, जिनकी संवत् 1553 में महाप्रभु से भेंट भी हुयी थी और इनके वंशज आज भी मथुरा के निकटवर्ती 'खरोट' गाँव में मिलते हैं। रीति मुक्त काव्य धारा के 'घनानंद' के समय में और नंद गाँव के आनंद घन में लगभग 200 वर्षों का अन्तर है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त 'घनानंद' का समय 1746 से 1796 तक माना है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का मन्तव्य है कि लगता है कवि का मूल नाम 'आनंदघन' ही रहा होगा, परन्तु छन्दात्मक लय विधान इत्यादि के कारण यह स्वयं ही 'आनंद घन' से 'घनानंद' हो गये। हिन्दी साहित्य में यह अपवाद नहीं, क्योंकि, 'सूरदास' के भी 'सूर', 'सूरजदास' , 'सूरज–श्याम' और 'सूरज' आदि नाम मिलते हैं।

---

1. जैनमर्मी आनंदघन – क्षितिमोहन – वीणा, नवम्बर, 1938
2. घन आनंद – श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी – पृ0 सं0 11

जन्म तिथि व जन्मस्थान–

इनकी जन्म–तिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों की विभिन्न मान्यताएं है। 'लाला भगवानदीन' ने 'घनानंद का जन्म सम्वत् 1715 माना है, जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है कि आचार्य शुक्ल सम्वत् 1746 घनानंद का जन्म सम्वत् मानते हैं।

विभिन्न आलोचकों के मतों की आलोचना करने के पश्चात् 'डॉ0 मनोहर लाल गौड़' लिखते हैं कि "सम्वत् 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय 26 या 29 वर्ष के ये होते है जो इनके जीवन–वृत्त को देखकर ठीक प्रतीत होता है।"[1]

"जन्म तिथि की भाँति 'घनानन्द' के जन्म– स्थानका विषय भी विवाद का वस्तु बना हुआ है। कुछ आलोचक इन्हें हिसार–निवासी मानते है तो इन्हें बुलन्द शहर का मानते हैं। अधिकांश विद्वान घनानंद का जन्म दिल्ली और उसके आस–पास का मानते हैं। जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' इन्हें बुलन्द शहर का निवासी माना है और श्री बहुगुणा के विचार में यह कोट–हिसार के रहने वाले थे। घनानन्द के काव्य में कहीं भी इसका संकेत नहीं मिलता कि यह कहाँ के रहने वाले थे? यह भटनागर कायस्थ थे और दिल्ली छोड़कर वृन्दावन चले गए थे इस बात को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। इन्होंने अपने काव्य में में ब्रज और वृन्दावन का वर्णन जिस सजीवता के साय किया है, उसे पढ़कर यह अवश्य लगता है कि इनका अधिकांश जीवन यहीं बीता अन्यथा उनके काव्य में ब्रज–संस्कृति का इतना सुन्दर चित्रण न मिलता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि 'सुजान' की बेवफाई के कारण ही ये वृन्दावन गए होगें।"[2]

खास कलम से भक्त घनानंद–

घनानंद–मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में खास–कलम (प्राइवेट सैक्रेटरी) थे। अरबी–फारसी में माहिर थे। एक तो कवि और दूसरा सरस गायक , इस

---

1. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा– डॉ0 मनोहर लाल गौड़
2. घनानंद का रचना संसार – शशि सहगलन– पृ0 सं0 –14

प्रतिभा ने घनानंद के व्यक्तित्व में चार चाँद लगा दिए। राजा रंगीले की विशेष कृपा घनानंद के ऊपर होना स्वाभाविक ही है। प्रसिद्ध जनश्रुति के शाही दरबार की रूपवती, नृत्य–गायन में प्रवीण 'सुजान ' नामक वेश्या पर ये अनुरक्त हो गए। अनेक शाही दरबारी घनानंद की उन्नति से ईर्ष्यालु हो गए, उन्हें राज्य से बहिष्कृत करने का कुचक्र रचा गया। कुछ दरबारियों ने रंगीले के कान भरने शुरू किया कि मीर साहब अच्छा गाते हैं। बस, रंगीले साहब तुरन्त उनका गाना सुनने को उतावले हो गये। घनानंद ठहरे रसिक, स्वाभिमानी एवं मनमौजी, परिणाम स्वरूप इन्होंने गाने से इन्कार कर दिया, ईर्ष्यालु दरबारी इसी घड़ी की प्रतीक्षा में थे, उन्होनें बादशाह से कहा कि सुजान को बुलाया जाय और सुजान यदि गाने का आग्रह घनानंद से करे तो ये अवश्य गाना गायेंगे और यह हुआ भी। बादशाह ने 'सुजान' दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। भावुक गायक ने प्रारम्भ किया लेकिन सुजान की ओर मुँह करके और बादशाह की ओर पीठ करके उतनी तन्मयता के साथ गाया कि रंगीले और सभी दरबारी मन्त्र–मुग्ध हो गये। गाना सुनाकर घनानंद ने बादशाह को जितना प्रसन्न किया उससे अधिक अपनी बेअदबी और गुस्ताखी से क्रोधित कर दिया, इसी आवेश में घनानंद को तत्काल दरबार छोड़ने का आदेश दिया। दरबारियों की मनोकामना पूर्ण हो चुकी थी। घनानंद के चलते समय सुजान से साथ चलने का निवेदन किया, धन लिप्सा से सिक्त सुजान को प्रेमी– भावनाएं सुनने का अवकाश ही कहाँ था, उसने साथ जाना अस्वीकार कर दिया। प्रेमी बेचारा लौकिक प्रेम से हताश होकर वृन्दावन की ओर प्रस्थानित हुआ। लौकिक प्रेम का परित्यागन कर पार–लौकिक प्रेम की ओर घनानंद ने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ली। इस सम्बन्घ मे श्री शम्भु प्रसाद बहुगुणा लिखते है–

"जीवन की विरक्ति उनके लिए प्रेम पूर्ण राधा–कृष्ण के चरणों की अनुरक्ति बन गयी। मरते दम तक वे सुजान को नहीं भूल पाये। राधा–कृष्ण को उन्होंने सुजान की स्मृति बना दिया और निरन्तर सुजान के प्रेम में आँसुओं के स्वरों में ये गीत, कवित्त–सवैये लिखते रहे।"

लाला भगवानदीन ने सुजान नामक वैश्या के प्रति घनानंद की अनुरक्ति

का खण्डन करते हुए लिखते हैं–

"सुजान की इनके प्रति विरक्ति इनके भक्त होने के कारण नहीं थी, अपितु ये स्वयं 'भगवान–कृष्ण' के प्रति अनुरक्त होकर वृन्दावन में जाकर कृष्ण के उपासना में लग गये थे और अपने परिवार का मोह भी इन्होंने उस भक्ति के कारण त्याग दिया था।"

देहावसान :– जिस प्रकार घनानंद की जन्मतिथि के विषय में मतभेद हैं, उसी प्रकार उनकी मृत्यु के विषय में भी। इस विषय में विद्वानों के विचार पृथक–पृथक हैं। डा0 ग्रियर्सन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, श्री वियोगी हरि एवं डॉ0 उदयनारायण तिवारी आदि इनकी मृत्यु संवत् 1796 में मानते हैं ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता है कि संवत् 1796 में नादिरशाह के सिपाही जब लूट–पाट करते जब मथुरा पहुँचे तो उन्हें पता चला कि मीर मुंशी बड़ा ही धनी है। वहाँ जाकर सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया और फारसी भाषा में 'जर–जर' अर्थात धन कहकर उससे धन की माँग की। घनानंद ने 'जर' शब्द को उलट कर 'रज–रज' कहा और तीन मुठ्ठी रेत उनके ऊपर फेंक दिया। इस पर सिपाहियों ने अत्यन्त क्रोधित होकर उनका हाथ काट डाला। कहते हैं कि इस घाव की वेदना से मरते समय घनानंद ने अपने निम्नलिखित अंतिम छन्द की रचना की थी, जो उनकी काव्य प्रतिमा का उज्ज्वल प्रमाण कहा जा सकता है–

"वहुत दिनानि की अवधि आस–पास परे,
खरे अर बरनि भरे हैं उठ जान को।
कहि–कहि आवन छबीले मन भावन को,
गहि–गहि राखति ही दै–दै सनमान को।।
झूठी वतियानी की पत्यानि तें उदास ह्वै के,
अब न घिरत घन–आनन्द निदान को।

अधर लगै हैं आनि कै पयान प्रान,

चाहत चलन ये संदेसौ लै सुजान को।।

लेकिन ऐतिहासिक साक्ष्य बताते हैं कि नादिरशाही आक्रमण तो दिल्ली तक ही सीमित रहा, मथुरा में उसका कोई आक्रमण हुआ ही नहीं।

घनानंद की मृत्यु के संबन्ध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत ही अधिक प्रमाणिक माना जा सकता है–

"घनआनंद जी का निधन मथुरा ही में हुआ और ये नादिरशाह के आक्रमण में न मारे जाकर अहमद शाह के आक्रमण में ही मारे गये। अब्दाली ने एक बार सन् 1757 और दूसरी बार सन् 1761 में मथुरा पर आक्रमण किया था। घन आनंद जी का निधन दूसरी बार के आक्रमण में हुआ था। नादिरशाह के आक्रमण के अनन्तर तो यह जीवित थे। यह इन्हीं के कथन द्वारा सिद्ध है। इधर आनंद घन के ग्रन्थों के जो बृहत् संग्रह प्राप्त हुए हैं उनमें एक 'मुरलिका–मोद भी है, इसके अन्त में यह स्वयं लिखते हैं–

"गोपमास श्री कृस्न–पक्ष सुचि।
संबत्सर अठानबे अति रुचि।।"

इस प्रकार अब यह निश्चित हो गया कि ये संवत् 1796 में नहीं मारे गये। ब्रज से नागरी दास और घनआनंद के प्रस्थान का संवत् 'नागर समुच्चय' में कवीश्वर जयलाल ने यह दिया हे–

"अठारह सै ऊपरै संबत् तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तें कियो पयान।।"

(कहते हैं हित वृन्दावन दास जी ने घनआनंद का शव अपनी आँखों से देखा था)

उनके शव पर आँसू बहाता हुआ कवि संवत् 1817 में अषाढ़ बदी रविवार को कहता है–

"बिरह सौं तायो तन निबाहयौ बन साँचौ पन,

धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।

एहो ब्रजराज कुँवर धन्य धन्य तुमहूँ कौ,

कहा नीकी प्रभु यह जग में बिस्तरी है।

गाढ़ौ ब्रज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,

रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।

बृन्दावन हित रूप तुमहूँ हरि उड़ाई धूरि,

ऐ पै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है।

आनंदघन जी की हत्या का प्रत्यक्षदर्शी यह महात्मा जो कुछ कह रहा है, उसे अब सत्य मान कर हिन्दी वालों को अपनी 'नादिरशाही' त्याग देनी चाहिए। 'हरिकलावेलि' का निर्माण काल यह है –

"ठारहसै सत्र हों वर्ष गत जानियै।

साढ़ बदी हरिवासर बेल बखानियै।।"[1]

सम्प्रदाय :–

घनआनंद के सम्बन्ध में यह बात जनश्रुति में चली आ रही थी कि वे 'निम्बार्क सम्प्रदाय' में दीक्षित थे। उनके द्वारा विरचित ग्रन्थ परम हंस वंशावली के उपलब्ध हो जाने से उक्त धारणा परिपुष्ट हो गयी।

"उन्होंने अपनी गुरू परम्परा का भी वर्णन किया है–

1. नारायण
2. सनकादि
3. निम्बादित्य
4. श्री निवासाचार्य
5. विश्वाचार्य
6. पुरूषोत्तमाचार्य
7. विलासाचार्य
8. स्वरूपाचार्य
9. माधवाचार्य
10. बलभद्राचार्य
11. पद्माचार्य
12. श्यामाचार्य
13. गोपालाचार्य
14. कृपाचार्य
15. श्री देवाचार्य

---

1. घनआनंद [ग्रन्थावली] – आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र –

– पृ0 सं0 58–61

16. सुन्दर भट्ट
17. पद्मनाभ भट्ट
18. उपेन्द्र भट्ट
19. रामचन्द्र भट्ट
20. वामन भट्ट
21. कृष्ण भट्ट
22. पद्माकर भट्ट
23. श्रवण भट्ट
24. भूरि भट्ट
25. माधव भट्ट
26. श्याम भट्ट
27. गोपाल भट्ट
28. बलभद्र भट्ट
29. गोपीनाथ भट्ट
30. केशव भट्ट
31. मंगल भट्ट
32. श्री केशव भट्ट
33. श्री भट्ट
34. हरिव्यास
35. परमानिधि
36. हरिवंश
37. नारायण देव
38. वृदावन देव

घनानंद उक्त गुरू–शिष्य परम्परा में 37वें गुरू श्री नारयण देव के शिष्य थे। उनकी प्रशंसा में इन्होंने लिखा है कि वे विपुल विद्या की राशि थे तथा प्रेम के स्वाद से पूर्ण परिचित। उन्हीं की भक्ति से भर कर इन्होंने 'परमहंस वंशावली' लिखी–

"श्री नारायण देव कौं तिनकौं कृपा प्रसाद।
अति उदार विधा विपुल पूरन प्रेम स्वाद।।"

घन आनंद की परमहंस वंशावली से यह भी पता चलता है कि निगमागम ज्ञान में प्रवीण किसी काशीवासी शेष से इन्हें साम्प्रदायिक परम्पराओं का ज्ञान हुआ।

निम्बार्क सम्प्रदाय का दूसरा नाम 'सनकादि सम्प्रदाय' है। इस सम्प्रदाय में द्वैताद्वैत दर्शन स्वीकृत किया गया है तथा सखी के भाव से भक्तों की भावना काम करती पायी जाती है। इस सम्प्रदाय भक्त जब प्रगाढ़ भक्ति की एक अवस्था विशेष तक पहुँच जाते थे उनका साम्प्रदायिक नामकरण कर दिया जाता था। सम्प्रदाय के अपने अन्तरंग मण्डल में वे इन्हीं (स्त्री नामों) से सम्बोधित किये जाते थे। घन आनंद की गुरू परम्परा में उनके गुरू श्री नारायण देव तथा कुछ अन्य आचार्यों के सखी नाम इस प्रकार मिलते हैं–

श्री हरिव्यास देव —————— हरि प्रिया सखी
श्री परसुराम देव —————— परम सहेली

श्री हरिवंश देव ---------------- हित अलवेली

श्री नारायण देव --------------- नित्यन बेली

श्री वृन्दावन देव --------------- मन मंजरी

इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घन आनंद भी साधना की ऊँची भूमिका पर पहुँच गये थे।"[1]

"प्रेम–साधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बड़े–बड़े साधकों, सिद्धों का पीछे छोड़ सुजानों की कोटि में पहुँच गये थे, अतः सम्प्रदाय में उनका सखी भाव नामकरण हो गया था।"[2]

घनआनंद का साम्प्रदायिक अथवा सखी नाम 'बहुगुनी' था।

"नीको नावें बहुगुनी मेरो। बरसाने ही सुन्दर खेरो।।
राधा नाव बहुगुनी राख्यो। सोई अरथ हिये अभिलाख्यो।।"[3]

"राधा सब ठां सब समै रहति बहुगुनी संग
तान रमन गुन–गान की लै बरसावति अंग।।"[4]

घनानंद की कृतियाँ :–

घनानंद की सरस कविताओं के प्रथम संकलन कर्त्ता ब्रजनाथ कहे जाते हैं, जिन्होंने अनेकानेक छन्दों में घनानंद कवि की प्रशस्ति लिखी, किन्तु इनकी सरस रचनाओं का सर्वप्रथम संग्रह भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'सुजान शतक' नाम से किया। घनानंद की कृतियों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सूचना मिश्र बन्धुओं ने दी है। मिश्र बन्धुओं द्वारा प्राप्त सूचना सभा की खोज रिर्पोटों और अन्य आलोचनात्मक शोध उनके व्यक्तिगत और संस्थागत पाण्डलिपियों की उपलब्धि के पश्चात् 'आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र' ने घन आनंद की कृतियों की प्रमाणिकता को ध्यान में रखकर उन्हें 'घन आनंद' – ग्रन्थावली के नाम से प्रकाशित किया,

---

1. घन आनंद – डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा – पृ0 सं0 66–68
2. घन आनंद – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – पृ0 सं0 77
3. वृषभानुपुर सुषमा वर्णन – 9,15
4. पिया – पवाह – 83

उनकी नामानुक्रमणिका इस प्रकार है–

सुजान हित :– इसका प्रथम प्रकाशन आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सं0 2002 में किया। इसके नाम में हित शब्द जुड़ा है, सम्भवतः इसका संकलन हितहरिवंश सम्प्रदाय के किसी भक्त ने किया है। इसमें 507 छन्द हैं, सुजान सौन्दर्य के साथ ही साथ प्रेम का स्वरूप, ब्रजमहिमा, मान तथा खंडिता, सुजान के प्रति समर्पण की भावना वर्णित है।

कृपाकंद :– इस रचना में 21 कवित्त, 26 सवैया, 9 पद, 4 दोहे, 1 सारंग तथा 1 छप्पय है, कुल 62 पद हैं, इसमें भगवत्कृपा के महत्त्व का प्रतिपादन है :–

"हरि के हिय मैं जिय मैं जु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसकानि सो रंग महा लहिये।।"[1]

वियोग बेलि :– इसका नाम विरहलीला भी है, इसमें 81 छन्द है. रचना की भाषा ब्रज है किन्तु भावों की शैली फारसी है।

इसमें श्री कृष्ण के प्रति गोपियों की विरह की सरस अभिव्यक्ति है–

"लिखौं कैसे पियारे प्रेम–पाती।
लगे अंसुवन झरी ह्वै टूक छाती।।"[2]

इश्कलता :– इसमें 14 दोहे, 12 अरिल्ल, 9 माझ, 9 निसानी छन्द प्रयुक्त है जिसमें प्रिय के रूप का मादक प्रभाव, विरह जन्य पीड़ा का वर्णन फारसी शैली में है–

"बिरह सूल सो बारि करि घन आनंद सों सींच।
इश्कलता झालरि रही हिए चिमन के बीच।।"[3]

---

1. कृपानन्द – 3
2. वियोग बेलि – 12
3. इश्कलता – 5

<u>यमुनायश</u> :- यह भक्ति भावना से पूर्ण रचना है, इसमें 10, अर्द्धालियाँ तथा अन्त में एक दोहा है–

"गोकुल घाट पियौ जिन पानी।
जमुना रस महिमा तिन जानी।।"[1]

<u>प्रीति पावस</u> :- यह 106 अर्धालियों की रचना है, जो चौपाइयों में निबद्ध है। वर्षा ऋतु में श्री कृष्ण के गोप–गोपियों के साथ वन–विहार का वर्णन इस कृति में है–

"प्यासनि बरसत अति रस भरै। अचरत घन दामिनि संचरै।।
घन चातक को मरम न परसै। प्यासनि आनंद घन बरसै।।"[2]

<u>प्रेम पत्रिका</u> :- इस रचना में 95 छन्द संग्रहीत हैं, विरहिणी गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम–पत्र का सन्देश इसका वर्ण्य विषय है–

"आँखनि कहा दिखावै मन बैठे रहो।
निकसि गए तजि नेह प्रान पैठे रहो।।"[3]

<u>प्रेम–सरोवर</u> :- यह लघु रचना है, जिसमें मात्र आठ दोहे हैं, इसमें राधा के प्रेम सरोवर का वर्णन है –

"प्रेम–सरोवर अमल बर ढिग कदंब–तरु–पाँति।
भान कुँवरि विहरन सुथल काँति अपूरब भाँति।।"[4]

<u>ब्रज–विलास</u> :- इसमें 69 दोहे हैं, इसमें ब्रज के वैभव का सरस वर्णन है :-

"ब्रज विलास रसरीति को करियै कहा बखान।
कृस्नचंद क्रीड़त जहाँ, पूरन–कला–निधान।।"[5]

---

1. यमुना यश – 37
2. प्रीति पावस –55,106
3. प्रेम पत्रिका –19
4. प्रेम सरोवर – 1

सरस बसंत :— यह 78 छन्दों की रचना है, जिसमें 19 दोहे तथा 59 चौपाइयाँ हैं, इसमें वृन्दावन में व्याप्त बसन्त ऋतु का सरस वर्णन है —

"सरस बसंत प्रीति की शोभा। प्रगटित होति बिराजति शोभा।।
बृन्दावन बसन्त रसवन्त। राधा—माधव कामिनि—कन्त।।"[1]

अनुभव चन्द्रिका :— इस कृति में 3 दोहे तथा 52 अर्द्धालियाँ हैं, इसमें ब्रज के महात्म्य तथा घनआनंद की अभिलाषा व्यक्त हुई है —

"ब्रजबन—रसिक—संग अभिलाखौं।
तिनतें सुनि बूझें कछु भाखौं।।"[2]

रंग बधाई :— इस कृति में 3 दोहे तथा 50 अर्द्धालियाँ हैं। श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर बधाई का वर्णन है, क्योंकि निम्बार्क मतावलम्वियों में श्रीकृष्ण जन्म बधाई के वर्णन का प्रचलन है —

"रंग बधाई को सुख जैसो।
मन लोचन नहिं जानत तैसो।।"[3]

प्रेम पद्धति :— इसमें 35 दोहे तथा 8 अर्द्धालियाँ हैं। इसका वर्ण्य—विषय प्रेम लक्षणा भक्ति का निरूपण है —

"या रस—बिबस एक रस रहैं।
अति अमोघ सुख-सम्पत्ति लहैं।।"[4]

बृषभानुपुर सुषमा वर्णन :— यह एक दोहा तथा 40 अर्द्धालियों की रचना है। इसमें बृषभानुपुर के सौन्दर्य का संक्षिप्त वर्णन करके कवि अपने को राधा की सखि के रूप में वर्णित करता है —

"राधा की हौं चौकस चेरी। सदा रहति घर बाहिर नेरी।।
नीकौ नाँव बहुगुनी मेरो। बरसाने की सुन्दर खेरो।।"[5]

---

1. सरस बंसत — 20,21
2. अनुभव चंद्रिका — 47
3. रंग बधाई — 9
4. प्रेम पद्धति — 33
5. बृषभानपुर संषमा वर्णन — 8,9

गोकुल–गीत :– यह लघु रचना है, 21 अर्द्धालियाँ और अन्त में दो दोहे है। नन्दराय के गोकुल को देखने की अभिलाषा कवि ने इसमें प्रकट की है–

"नन्दराय की गोकुल गाऊँ। आप बरनि आप ही सुनाऊँ।।

यह गोकुल नित नैननि दरसौं। प्राननि पै आनंदघन बरसौं।।"[1]

नाम माधुरी :– यह 42 अर्द्धालियों की लघु रचना है, यह राधा के नाम–संकीर्तन से सम्बन्धित है–

"गोपी–चूड़ामनि श्री राधा । सुषमा–महिमामनि श्री राधा।।"[2]

गिरि पूजन :– इसमें 34 अर्द्धालियाँ है, इसमें गोर्बधन पूजा का सजीव, सरस और भाव पूर्ण वर्णन है–

"सबके जीवन सबके प्रान। गिरधर सबहीं को सुखदान।।"[3]

विचार सार :– इस रचना में 86 अर्द्धालियाँ तथा अन्त में 2 दोहे हैं, कवि के अनुसार श्री कृष्ण का नाम स्मरण ही समस्त विचारों का सार है–

कृस्न कथा परमानंद–सोत। कृष्न कथा अनुराग–उदोत।।

कृस्न कथा परमारथ बेलि। उर झालरी मधुर ब्रज केलि।।"[4]

दान घटा :– इसमें 13 सवैये तथा 3 दोहे है, कृष्ण – राधा का गोप–गोपियों के साथ दानलीला का वर्णन है–

स्याम सुजान सबै गुनखानि बजावत बैन महासुर साँचनि।

अंग त्रिभंग अनंग भरे दृग भौंह नचाय नचावत नाँचनि।।"[5]

भावना प्रकाश :– यह 220 अर्द्धालियों की रचना है। इसमें राधा–कृष्ण का मिलन तथा ब्रजराज की महिमा का वर्णन है–

"आनंदघन–रस भींज्यो रहै। ब्रजबन लीला–निधि अवगहै।"[6]

---

1. गोकुल–गीत – 1, 21
2. नाम– माधुरी – 26
3. गिरि पूजन – 27
4. बिचार सार – 29,30
5. दानघटा – 10
6. भावना प्रकाश– 189

<u>कृष्ण कौमुदी</u>:- इसमें 75 दोहे ओर 9 अर्द्धलियाँ है। श्री कृष्ण का नाम महात्म्य तथा नख-शिख वर्णन है-

कृस्न कौमुदी नाम यह, मोहन मधुर प्रवन्ध।
सरस भाव कुमुदावली, प्रफुलित परम सुगन्ध।।"[1]

<u>धाम चमत्कार</u> :- इस कृति में 70 अर्द्धालियाँ है, जिनमें वृन्दावन का महत्व वर्णित है-

"महामोद ब्रज सरस विनोद। परिपूरन विलास चहुँ कोद।।"[2]

<u>प्रिया प्रसाद</u> :- इसमें 25 दोहे तथा 65 अर्द्धालियाँ हैं, राधा की सेवा में कवि सखि भाव से उपस्थित होता है-

"राधा प्रेम-रसामृत-सरसी। केलि-कमल-कुल-सुषमा-दरसी।"[3]

<u>वृन्दावन मुद्रा</u> :- इसमें 5 कवित्त, 1 दोहा और 52 अर्द्धालियाँ, कुल 58 पद्य हैं, वृन्दावन की महिमा इसका वर्ण्य विषय है -

"यह वृन्दावन यह जमुनातट। सदा रहत सोभा को संघट।।"[4]

<u>ब्रज प्रसाद</u> :- इस रचना में 160 अर्द्धालियों के द्वारा ब्रज की शोभा तथा महिमा का वर्णन है -

"ब्रज को ब्रज मो नैननि जो है। मोहन ब्रज मोहि को मोहै।।"[5]

<u>गोकुल चरित्र</u> :- श्री कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का सरस वर्णन 40 अर्द्धालियों में वर्णित है -

"चिकने केस घूंघरे घनैं। बिमल कपोलनि आलैं बनैं।।"[6]

---

1. कृष्ण कौमुदी - 84
2. धाम चमत्कार - 20
3. प्रिया प्रसाद - 34
4. वृन्दावन मुद्रा - 33
5. ब्रज प्रसाद - 96

प्रेम पहेली :- इसमें किसी गोपी के प्रेम प्रसंग का सरस प्रारम्भ है, जिसमें मात्र 11 अर्द्धालियाँ हैं, यह अपूर्ण कृति है -

"डीठि-डीठि मिलि भयो मिलाप। ढुरि घुरि मिली आप ही आप।।"[1]

रसनायश :- इसकी प्रत्येक अर्द्धाली 'रसना' शब्द से प्रारम्भ हुयी है, रसना ही भगवान के नाम का संकीर्तन करती है, इसमें 28 अर्द्धालियाँ हैं -

"रसना रस की अवधि सुजान। निस दिन करै कृस्न गुन गान।।"[2]

गोकुल विनोद :- इसमें 64 छन्द हैं, जिसमें बलराम तथा कृष्ण के राजस विहार का वर्णन है -

"मंजु मंजुल कुंज ढिग ही तरनि तनया-घाट।
पुरट मनि मरततनि की तति तहाँ मंजन-ठाट।।"[3]

मुरलिकामोद :- श्रीकृष्ण की मुरली तान से मुग्ध गोपिकाओं का वर्णन है, इसमें 51 अर्द्धालियाँ हैं-

"मोहन की मुरली बन बाजी। मादक अधरनि आये बिराजी।।"[4]

मनोरथ मंजरी :- राधा-कृष्ण सुरत कालीन रसालाप को कवि सुनता है, उनके सम्भोग से स्वतः सुखी होता है। इसमें 30 छन्द हैं-

"राधा मदन गुपाल की हौं सेज बनाऊँ। दूध फेन फीको करै बर बसनबिछाऊँ।।"

ब्रज व्यवहार :- इसमें गोचारण, दानलीला, ब्रजमहिमा, ब्रज व्यवहार का वर्णन है। इस कृति में 237 पद्य हैं, जिनमें 26 दोहे तथा शेष अर्द्धालियाँ हैं-

"जीवन ब्रज त्योहार है, ब्रज जीवन ही प्रान। कहौं सुनौं समझौ सदा ब्रज प्योहार प्रधान।।"[6]

---

1. प्रेम पहेली - 2
2. रसनायश - 2
3. गोकुल विनोद - 41
4. मुरलिका मोद - 1
5. मनोरथ मंजरी - 1
6. ब्रज व्यवहार - 146

गिरि गाथा :- इसमें 4 दोहे और 50 अर्द्धालियों में गिरिराज गोवर्द्धन की महिमा का वर्णन है -

"श्री गोबरधन नाम गुन सो ताको भाग। महामधुर रसरासि को पायौ पूरन पाग।"[1]

पदावली :- इसमें भक्ति का विवेचन है, प्रेमोपालंभ, खंडितावचन, राधा का श्रृंगार तथा उनका सुरतान्तरूप एवं दूती वाक्य आदि इसके वर्ण्य विषय हैं -

"विरहा होली खेलन आयो।
कहा कहीं ब्रज मोहन जू जैसो इन सीस उठायो।"[2]

छन्दाष्टक :- इसमें रासलीला समाप्त होने पर श्रीकृष्ण के अन्तर्ध्यान हो जाने पर गोपियों का विरह वर्णित है, 8 छन्दों की लघु रचना है।

"कहौ पीति की नीति रीति कछु जीति लियो सब जग चतुराई।
ये पटियाँ फित पढ़े कहो फिनि कपट छाँडि गोपाल गुसाई।।"[3]

ब्रजस्वरूप :- इसमें 122 चौपाइयाँ हैं, व्रजमहिमा, कृष्ण-गोपियों का वर्णन है -

"ब्रजरस ब्रजरस ही सब रस है। ब्रजरस आनंद घन सरबस है।।"[4]

त्रिभंगी :- त्रिभंगी छन्द में निबद्ध 5 पद्यों की रचना है, इसमें जीव को भगवत्-भक्ति का उपदेश दिया गया है।

परमहंस वंशावली :- यह 53 दोहों की रचना है, इसमें निम्बार्क सम्प्रदाय के गुरूओं की हंस सनक से लेकर वृंदावन देव तक नामावली वर्णित है।

प्रकीर्णक :- इसमें घनआनंद के स्फुट पद्यों का संग्रह किया गया है। प्रकृति, सौन्दर्य, लीला, श्रृंगार, भक्ति से सम्बन्धित छन्द हैं -

"ब्रजमोहन रूप-छके मन नैन महामतकर प्रमानिये ते।
घनआनंद भीजे रहैं निसि द्यौस पपीहन लौं अनुमानिये ते।"[5]

---

1. गिरिगाथा - 55
2. पदावली - 490
3. छन्दाष्टक - 86
4. ब्रजस्वरूप - 122
5. प्रकीर्णक - 53

बोधा का जीवन-वृत्त

"शिव सिंह सरोज" में एक बोधा कवि सं0 1804 और दूसरे बोध कवि बुन्देलखण्डी का सं0 1855 लिखते हैं, किन्तु श्री मिश्र बन्धु लिखते हैं कि, "ठाकुर शिव सिंह जी ने इनका जन्म-संवत् 1804 लिखा है, जो अनुमान से ठीक जान पड़ता है। बोधा एक बड़े प्रशंसनीय और जगद्विख्यात कवि थे; अतः यदि संवत् 1775 के पहले के होते तो कालिदास जी इनको छन्द हजारा में अवश्य लिखते। इधर सूदन कवि ने संवत् 1815 के लगभग 'सुजान चरित्र' बनाया जिसमें उन्होंने 175 कवियों के नाम लिखे हैं, इस नामवली से प्रायः कोई भी तत्कालीन वर्तमान अथवा पुराना आदरणीय कवि छूट नहीं रहा है, परन्तु इसमें बोधा का नाम नहीं है, इससे विदित होता है कि सवंत् 1815 तक ये महाशय प्रसिद्ध नहीं हुए थे। फिर भी पद्माकर आदि की भाँति बोधा का अर्वाचीन कवि होना भी प्रसिद्ध नहीं है, अतः शिवसिंह जी का संवत् प्रमाणिक जान पड़ता है। जान पड़ता है कि बोधा ने लगभग सं0 1830 से 1860 तक कविता की।"[1]

डुमरावँ (शाहाबाद) के पं0 नकछेदी तिवारी ने भारत जीवन यंत्रालय से बोधा का इश्कनामा प्रकाशित कराया है। हिन्दी में सबसे प्रथम इसी ग्रन्थ में बोधा का कुछ वृत्त दिया गया है। जो कथानक उन्होंने बुन्देलखण्डी कवियों से सुना उसका संग्रह भी भूमिका में कर दिया है, उनके अनुसार "बोधा कवि जी (बुद्धसेन) सखरिया ब्राह्मण राजापुर 'प्रयाग' के रहने वाले थे। किसी घनिष्ठ संबन्ध के कारण बाल्यावस्था में ही निज भवन को छोड़कर बुन्देलखण्ड की राजधानी पन्ना जा पहुँचे। गुणों से महाराजा साहब बहुत मानने लगे यहाँ तक कि मारे प्यार के बुद्धसेन से 'बोधा' कहने लगे तबसे इनका नाम 'बोधा' प्रसिद्ध हुआ।" इसी सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं कि "पं0 सुशील चन्द्र चतुर्वेदी ने फिरोजाबादी बोधा कवि के विषय में एक नोट लिख भेजा है कि बोधा कवि बुन्देलखण्डी से बोधा कवि फिरोजाबादी इतर समझ पड़ते हैं। फिरोजाबादी बोधा कवि सनाढ्य ब्राह्मण थे, तथा इनकी कुछ पैतृक भूमि 'रहना' नामक ग्राम में जो फिरोजाबाद के पास है, थी। इनकी कविता कुछ अप्राप्य

---

1. मिश्र बन्धु विनोद – मिश्र बन्धु

सी हो रही है। इन्होंने 'बाग विलास' नामक एक ग्रन्थ रचा था। ये सन् 1830 अर्थात संवत् 1887 में वर्तमान थे। पर 'विनोद' ने इसे नहीं माना– समय के विचार से तया कविता शैली की दृष्टि से हमें यह दानों एक ही कवि समझ पड़ते हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा की 'खोज' में बोधा के नाम पर इतने ग्रन्थ मिले हैं –
1. विरही–सुभान–दंपति–विलास(17–20), (20–21) 2. बाग वर्णन (32–21ए) 3. बारहमासी (32–31बी) 4. फूलमाला (32–31सी) 5. पंक्षी मंजरी (32–31डी)

इसमें पहला ग्रन्थ वही है जिसे 'इश्कनामा' कहते हैं। यह बुन्देलखण्डी बोधा की रचना है। सं0 2 से 5 तक के सभी ग्रन्थ फिरोजाबादी बोधा के हैं। 'खोज' के साहित्यान्वेषक के अनुसार बोधा उसायनी (फिरोजाबाद, आगरा) के रहने वाले थे। 'पंक्षी मंजरी' में ग्रन्थ रचनाकाल भी दिया हुआ है–

"संवत् सोरह सै सही जानौ तुम छत्तीस।
तेरस सुक्ल असाढ़ की बार कुम्भ को ईस।।"

इसके अनुसार संवत् 1636 की आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी शनिवार को पुस्तक लिखी गयी। पर संवत् संदिग्ध जान पड़ता है, क्योंकि – पंक्षी मंजरी में एक दोहा यह भी है –

"सुनौ सखी मानी नहीं, ननदी बरजी सासु।
बौरी किनहूँ पाइयो चील्ह घोसुआ मासु।।"

यह दोहा बिहारी के इस दोहे से कितनी साम्यता रखता है –

"बहकि न इहि बहिनापने जब तब बीर बिनासु।
बचै न बड़ी सबीलहू चील्ह घोंसुआ मासु।।"

बिहारी संवत् 1719 तक वर्तमान थे, ऐसा माना जाता है, इसलिए 'पंक्षी मंजरी' का निर्माण संवत् 1719 के बाद का होना चाहिए। कहीं सोरह की 'सत्तरह' या ठारह न हो। बिहारी ने पक्षी मंजरी के दोहे की नकल कर अपना दोहा बनाया हो, ऐसा मानना उचित नहीं प्रतीत होता।

गणना के अनुसार संवत् 1836 ही आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी शनिवार को पड़ती है ये बोधा फिरोजाबदी थे, इसका पता इस कवित्त से चलता है–

"पाऊँ हौं गुपाल गुन गाऊँ हौं गोविन्द जू के, ध्याऊँ सिवसंकर मनाऊँ गनपति को।
सारदा सहाई बुद्धि देई अधिकाई हर करिदे सवाई महामाई मोरी गति को।।
श्री फल चढ़ाऊँ धूपदीप धरि लाऊँ जल अगन निवास बाकदेव बोध सुत को।
परम फिरोजाबाद बाग महासिंह जू को लेऊँ मन पेड़ सो बनाई देऊँ गति को।।"

पंक्षी मंजरी में दोहे हैं, इसलिए बोधा के स्थान पर बोध नहीं हो सकता क्योंकि मात्रा और प्रवाह में कमी हो जाती, पर कवित्त में जहाँ 'बोध' है वहाँ 'बोधा' रहे तो भी कोई क्षति नहीं, लेकिन बुन्देलखण्डी 'बोधा' सर्वत्र अपनी छाप 'बोधा' ही रखी है।

'सरोज' में 'बोध' 'बोधा' के अतिरिक्त बुद्धिसेन कवि हैं, पक्षी मंजरी के अन्त में फिरोजाबादी 'बोधा' के लिए बोधसेनि नाम दिया गया है, पर एक बात स्पष्ट नहीं हो पाती कि 'पक्षी मंजरी' के बोधा से बुद्धिसेन से कोई संबंध है अथवा नहीं, जो कवित्त 'सरोज' में दिया गया है वह किसी ब्रह्मभट्ट कवि का जान पड़ता है –

'बारी और खंगार नाऊ धीमर कुम्हार काछी खटिक दसौंधी ये हुजूर को सुहात हैं।'
कोल गोड़ गूजर अहीर तेली नीच सबै पास के रहे से कहाँ ऊँचे भये जात हैं।।
बुद्धिसेन राजन के निकट हमेस बसै कूकर बिलार कहा गुन अधिकात है।
दूर ही गयंद बाँधे दूर गुनवान ठाढ़े गज और गुनी के कहा मोल घटि जात है।।

राजा के निकट रहने वाले गुणहीन पार्षदों से कवि अप्रसन्न हो गये इस बात का पता नहीं चलता किस राजा से यह उक्ति कही गयी। बुन्देलखण्डी 'बोधा' का नाम भी बुद्धिसेन था, यह बात पहले कही जा चुकी है। 'विरहवारीश' में 'बोधा' छाप के स्थान पर 'बुद्धिसेन' छाप का व्यवहार दो स्थलों पर किया है–

"कंत सों न मंत और गेह सों न नेह कछु संत सों न सूत रहयौ ज्ञान को न गारयो है।
बेद सों न भेद लहै भाभी को भरोसो कौन, दुख्ख को न दोष 'बुद्धिसेन' यो विचारयो है।
काहू कहयो अंमृत कबित्त के निवेदन में कबिन बतायो प्रेमगान में लसतु है।
प्रेमगान अंमृत बतायो है फनिंद हू के, फनिप बतायो छपाकर में बसतु बहै।
छपाकर कहयो सुधा साधुन की संगति में, साधुन बतायो बेद ऋचा दरसतु है।
बेद ऋचा अमृत बतायो हमैं 'बुद्धिसेन' तरूनी की तरल तरंगन रसतु है।"

यह तो निश्चित हो जाता है कि 'बोधा' नाम 'बुद्धिसेन' का ही संक्षिप्त रूप है। पर इतना तो प्रमाणिक रूप से कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्डी कवि 'बोध' नहीं 'बोधा' थे।

अब देखना चाहिए कि 'बुन्देलखण्डी बोधा' किस समय हुए थे। 'खोज' में विरही सुभान–दंपति–विलास या 'इश्कनामा' की जो प्रति सन् 1917 त्रिवर्षी में मिलीं उसका पहला दोहा निम्न है –

"खेतसिंह नरनाह को हुकुम चित्त हित पाइ।

ग्रन्थ 'इश्कनामा' कियो बोधा सुकवि बनाई।।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि खेतसिंह (क्षेत्र सिंह) के दरबारी थे। विरहवारीश में भी इन्हीं खेत सिंह की प्रशस्ति मिलती 'सुभान' नामक वेश्या से प्रेम किया परिणाम स्वरूप दरबार से छह मास के लिए देश निकाले का दण्ड मिला। इन्होंने सुभान के वियोगानल में अपना तन–मन जलाते, जंगल पहाड़ दरिया और अनेक शहरों की खाक छानी और इश्कनामा तथा माधवानल का आशय लेकर 'विरहवारीश' नामक अद्वितीय पुस्तक की रचना की।

नियमित समय व्यतीत होने पर आप दरबार पन्ना में हाजिर हुए। उस समय सुभान भी उपस्थित थी, महाराज ने कुशलता पूँछी, उन्होंने छूटते ही पूँछा 'विरहवारीश' को तरंगित किया, फिर क्या पूछना था, सब के सब गोता खाने लगे। निदान, कुछ देर बाद महाराज ने कहा कि बोधाजी बस कीजिए, बहुत हुआ, अब कुछ माँगिए, जब ऐसी बात कई बार महाराज ने कही और बोधाजीने इस बात पर महाराज को दृढ़ देखा तो कहा कि "सुभान अल्लाह"। शील सागर परम प्रतिज्ञ महाराजा साहब बहादुर ने स्वीकर कर 'सुभान' को इनके साथ रहने की आज्ञा दे दी।"[2]

इसी सन्दर्भ एक बात और कि 'राजापुर' ग्राम 'प्रयाग' जिले में नहीं 'बाँदा' जिले में पड़ता है। 'बोधा ग्रन्थावली' में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं कि "कवि का नाम 'बुद्धिसेन'" अर्थात् बुद्धिसेन था। सैन तो 'चैन' के अनुप्रास से हो गया। xxx छह माह के देस निकाले की किंवदंती निराधार नहीं है, हाँ छह के स्थान पर बारह होना चाहिए। यही नहीं इसका भी पता चलता है कि अनेक दरबारों में टक्कर खो लेने के अनन्तर खेत सिंह के दरबार में बोधा गये थे–

"बढ़ि दाता बड़कुल सबै देखे नृपति अनेक।

त्याग पाय त्यागे तिन्है चित्त में चुभे न एक।।"

कहाँ–कहाँ चक्कर काटा था, उन स्थानों की भी सूची प्रस्तुत कवित्त में दी है–

"देवगढ़ चाँदा गढ़ा मंडला उज्जैन रीवाँ, साम्हर सिरोज अजमेर लौं निहारो जोइ।
पटना कुमाऊ पेषि कुर्रा औ जहानाबाद साँकरी गली लौं बारे भूप देखि आयो सोइ।।
बोधा कवि प्राग औ बनारस सुहागपुर खुरदा निहारि फिरि मुरक्यो उदास होइ।
बड़े बड़े दाता ते अड़ेन चित्त माहिं कहूँ ठाकुर प्रवीन खेत सिंह सो लखो न कोइ।।"

---

1. इश्कनामा – प्रथमखण्ड/1

राजा क्षेत्र सिंह (खेत सिंह) कौन थे इसका पता भी बोधा ने ही दिया है –

"बुंदेला बुदेलखण्ड कासी–कुल मंडन।

गहरिवार पंचम नरेस अरिदल–बल–खंडन।

तासु बंस छत्ता समर्थ परनापत बुझियै।

तासु सुवन हिरदेस. कुल्ल आलम जस सुझिये।

पुनि सभा सिंह नरनाथ लखि वीर धीर हिरदेससुव।

तिहि पुत्र प्रबल कवि कल्पतरू खेतसिंह चिरजीव हुव।"

बोधा ने अमानसिंह को समर्थ अवश्य लिखा पर महाराज नहीं लिखा महाराज, नरेश आदि विशेषण खेत सिंह को दिये गये हैं। अतः 'सरोज' में जो संवत् 1804 बोधा कवि का काव्यकाल दिया गया है, वह ठीक बैठ जाता है। यदि अमानसिंह का समय संवत् 1809 से 1815 लें तो इससे संवत् 1809 के वाद की रचना यह होगी। इनके काव्यकाल को संवत् 1830 से 1860 तक नहीं खींचा जा सकता है।

रीतिबद्ध रचनाकारों की सी शास्त्रबद्ध प्रवृत्ति पन्ना वाले बुन्देलखण्डी बोधा में नहीं है, इससे इन्हीं फिरोजाबादी बोधा से पृथक करने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। दोनों की शैली एक सी कहीं नहीं है, जैसा अनुमान लगाया गया है। इस प्रकार यह निश्चित है कि एक बोधा रीतिबद्ध रचना करने वाले थे, वे फिरोजाबाद (आगरा) के थे और महासिंह के वंशज आवासिंह के आश्रित थे। दूसरे रीति मुक्त रचनाकार थे, ये पन्ना (बुन्देलखंड) के थे और खेत सिंह के आश्रित थे।"[1]

<u>रचनाएं</u> :– 'विरहवारीश' और 'इश्कनामा'– बोधा की ये दो कृतियाँ उपलब्ध हैं। इसमें पहली तो माधवानल–कामकन्दला की प्रसिद्ध प्रेमकथा पर लिखी गयी प्रबंध रचना है और दूसरी प्रेम पर लिखे मुक्तकों का संग्रह है। 'विरहवारीश' में घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। सूफी कवि आलम की रचना से यह आकार में बड़ी है, लेकिन आलम– जैसी प्रांजलता इसमें नहीं है, सम्भोग आदि के कुछ वर्णन अश्लील भी हो गये हैं–

"कर छूटत बाल उठाय चलै। तब माधव पीन उरोज मलै

xxx हँसिये खिलिये कहिये बतियाँ। रतिनाथ न हाथ धरौ छतियाँ।।

पटु चापि रही कसि जंघ दुवौ। प्रिय सों विनवै जिन अंक छवौ

---

1. बोधा ग्रन्थावली – सम्पा0 आचार्य विश्वनाथ प्रसाद पृ0 सं0 1से 10 तक

बल कै कर सों कुच चापि रही। पिय तो घंघराहि कि फूँद गही।

कुच सूर भले रन माह लरै। दोउ जंघ सुजानहु ते न टरै।"[1]

'इश्कनामा' में प्रेम सम्बन्धी मुक्तक पद्य मिलते हैं। बोधा पर घनानंद का पूरा–पूरा प्रभाव मिलता है। कवि दिनकर ने तो बोधा को घनानंद का गुटका संस्करण कहा है, यही कारण है कि प्रेम की पीर जैसी तीव्रता, पीड़ा असह्यता घनानंद में मिलती है, बोधा भी उसी प्रकार तृषित, पीड़ित और वियुक्त प्रेमी लगते हैं – बोधा के काव्य में जिस प्रेम की पीर का वर्णन है, उसी पंथ की विषमता के विषय में बोधा का यह सवैया बहुत प्रसिद्ध है–

"अति छीन मृनाल के तारहु तें, तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।

सुई बेह तें द्वार सकीन तहाँ परतीति को टाड़ो लदावनो है।

कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।

यह प्रेम को पंथ कराल है, जू तरवार की धार पै धावनो है।।"[2]

विरहवारीश की कथा इस प्रकार है– श्रीकृष्ण द्वारका प्रस्थान कर गये, परिणामस्वरूप तो उनके विरह में गोपिकाएं व्यथित रहने लगीं। बसंत के अवसर पर काम और रति ने अपनी माया का प्रसार किया, विरह विदग्धा गोपिकाएं इधर–उधर वन में घूमती हुयी श्रीकृष्ण की लीला भूमि के दर्शन करके विरहाग्नि में और तपने लगीं। परिणामस्वरूप उन्होंन काम और रति को शाप दे दिया। काम और रति ने उनसे क्षमायाचना की और पूँछा कि यह विरह हमें कितने वर्षों तक सहन करना होगा। उन्होंने कहा, यह वियोग व्यथा तुम्हें बारह वर्ष तक भोगनी होगी। फलस्वरूप काम और रति को नर योनि में जन्म लेना पड़ा। काम 'माधवानल' हुआ और रति 'कामकन्दला' हुई।

द्वापर के अन्त में सुमन्त कायस्थ की सुपुत्री लीलावती विदुषी थी उसने अनेक ग्रन्थों की रचना की। एक बार एक ब्राह्मण ज्ञान के घमण्ड से चूर होकर, काशी के पण्डितों को ललकारा, शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया, लीलावती ने पाण्डित्य से उस पण्डित को पराजित कर दिया। परिणामस्वरूप पण्डित ने लीलावती को शाप दे दिया कि तुम्हारा ज्ञान समाप्त हो जाये और वैधव्य का दुःख प्राप्त हो। शाप के प्रभाव के कारण लीलावती विधवा हो गयी। उसने बारह वर्ष तक शिव की आराधना की और वरदान पाया कि तेरा पति स्वयं कामदेव हो। दूसरे जन्म में वह राजपुरोहित रघुदत्त ब्राह्मण के घर जन्मी। विद्याप्रकाश नाम का ब्राह्मण धर्मिष्ठ था,

---

1. विरहवारीश – सप्तम तरंग – 13–18
2. इश्कनामा– प्रथम खण्ड/7

उसके यहाँ पुत्र ने जन्म लिया, जिसका नाम माधवानल रखा। माधव को वीणावादन में महारत प्राप्त थी। एक दिन शिव उद्यान में उसने वीणा वादन किया, उसके प्रथम दर्शन, वीणावादन को सुनकर लीलावती मूर्च्छित हो गयी, उसको देखकर माधव भी मूर्च्छितहो गया। पिता ने माधव को विष्णुदास पण्डित के यहाँ अध्ययन हेतु भेजा, संयोग से लीलावती भी वहीं पढ़ती थी। दोनों का विद्या और प्रेम व्यापार साथ-साथ बढ़ने लगा। विद्या अध्ययन समाप्त कर लीलावती अपने पिता के घर चली गयी। उसके विरह से व्यथित होकर माधव इधर-उधर वीणा-वादन करते हुए घूमने लगा। परिणामस्वरूप नगर की रमणियाँ घर के कार्य छोड़कर वीणा सुनने में मग्न हो जाया करती थीं। लोगों ने राजा से शिकायत की कि माधव को देश निकाला दे दिया जाय। राजा ने माधव की परीक्षा ली मुग्ध होने पर भी प्रजा के दबाव में आकर माधव को देश निकाला का आदेश दे दिया, लीलावती भी उसके साथ चली प्रजा ने न रोक लिया होता तो वह भी वनवासिनी हो जाती।

दक्षिण देश में नर्मदा के तट पर प्रभावती नगरी थी, वहाँ का राजा रूक्मण था, उसके यहाँ कन्या का जन्म हुआ ज्योतिषियों ने घोषणा की कि यह कन्या संगीत में दक्ष होकर वेश्यावृत्ति करेगी भयभीत होकर उसे काष्ठ मंजूषा में रख नर्मदा में प्रवाहित कर दिया। मंजूषा वेश्याओं के हीरापुर ग्राम के घाट जाकर लगी। वेश्याओं का नायक गूजर उसे घर ले आया संगीत की शिक्षा-दीक्षा देकर कामवती पुरी के नरेश कामसेन को ले जाकर समर्पित कर दिया उसका नाम कामकन्दला पड़ा। उधर माधव घूमते-घूमते बाँधवगढ़ (रीवां) पहुँचा। वीणा की आवाज से लोग आकर्षित हुए, साथ ही एक तोता भी प्रभावित हुआ। चातुर्मास्य वहीं व्यतीत कर माधव चित्रकूट पहुँचा, फिर वह कामवती पुरी की ओर चला। राज कामसेन के दरबार में नृत्यगीत होने वाला था, माधव भी वहाँ पहुँचा पर द्वारपाल ने रोक दिया, बाहर बैठे माधव ने संगीत की त्रुटि वहीं से बता दी। राजा से द्वारपाल ने सारा वृत्तान्त बताया, राजा ने माधव को मोतियों का हार पहनाकर सम्मानित किया। कन्दला उस समय नृत्य कर रही थी। माधव ने मोतियों की माला कामकन्दला के गले में डाल दी राजा रूष्ट हो गया और उसने माधव को देश छोड़ने का आदेश दे दिया कन्दला चाहती थी कि माधव चुपचाप उसके यहाँ छिपा रहे लेकिन माधव ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उसके जाने पर कन्दला व्यथित हो गयी। माधव ने कन्दला को पत्र दिया कि वह उसका एक वर्ष इन्तजार करे। माधव के साथ तोता भी गया। घूमते-घूमते दोनों विक्रमादित्य की नगरी उज्जैनी पहुँचे। माधव की कथा विक्रमादित्य तक पहुँची। राजा ने माधव को दरबार में बुलाया। माधव ने कन्दला के प्रति अपनी विरह गाथा सुनाई। राजा कन्दला के नगर गया और उसने कन्दला से कहा कि विरह से व्यथित माधव स्वर्ग सिधार गया, स्वर्ग

सिधारने की गाथा सुनकर कन्दला भी प्रचण्ड वेदना से पंचत्व को प्राप्त हो गयी। उद्विग्न राजा उसके शव को उसी प्रकार रख माधव के पास आया। कन्दला के प्राणत्याग की घटना सुनकर माधव भी मर गया। दोनों के प्राणत्याग से चिंतित राजा स्वतः चितारोहण हेतु तत्पर हो गया। तभी अचानक बेताल ने आकर, दो अमृत बूँदों से जीवित कर दिया। राजा विक्रम ने कन्दला को प्राप्त करने के लिए कामसेन के पास बेताल को दूत बनाकर भेजा। अपमानित कामसेन युद्ध के लिए तत्पर हो गया। इस युद्ध में शताधिक लोग हताहत होते हैं। तब द्वन्द्व युद्ध से समाप्ति का निर्णय हुआ। विक्रम के पक्ष से रणजोर सिंह पवार ने कामसेन के पक्ष से निर्वाचित प्रतिद्वन्द्वी मेढ़ामल्ल को पराजित कर दिया। अतः कामसेन से कामकन्दला को अर्पित कर उनका उत्तम सत्कार किया।

उधर माधव के वियोग में लीलावती अत्यन्त व्याकुल थीं। स्वप्न में व्याकुल लीलावती को देख व्यथित माधव ने कन्दला से लीलावती की प्रेम कहानी और स्वप्न की बात बताई। कन्दला विक्रमादित्य से माधव की प्रणय गाथा सुनाकर उसे पुष्पावती नगरी पर आक्रमण के लिए प्रेरित किया। पुष्पावती राजा गोविन्दचन्द्र ने नीति का सहारा लेकर बड़ी धूम-धाम से लीलावती के साथ माधव का विवाह सम्पन्न करा दिया। इस प्रकार लीलावती और कामकन्दला एक साथ सुखपूर्वक बिना किसी प्रकार की सापत्न्य जनित ईर्ष्या के रहने लगीं।

विरहवारीश की कथा इस प्रकार समाप्त हो जाती है। 'विरहवारीश' का जितना अंश प्राप्त है उसमें इतनी ही कथा प्राप्त है किन्तु कवि ने पुस्तक के प्रारम्भ में कहा है कि इसमें नौ खण्ड हैं।

"प्रथम साप[1] कृत बाल[2] दुतिय आरन्य[3] खंड गनि।
पुनि कामावति[4] देस बेस, उज्जैन गवन[5] भनि।
युद्धखंड[6] पुनि गाह रूचिर सिंगार[7] बखानो।
पुनि बहुधा बनदेस[8] नवम बर ज्ञानहिं[9] जानो।
कहि प्रीतिरीति गुन की सिपत नृप ब्रिकम को सरस जस।
नौ खंड माधवा-कथा मैं नौरस बिद्या चतुर्दस।"[1]

उपलब्ध भाग में शापखंड, बालखंड, अरण्यखंड, कामावतीखंड, उज्जयिनीखंड, युद्धखंड, और श्रृंगारखंड,-ये सात ही हैं। शेष दो खण्ड-वनदेशखंड और ज्ञानखंड नहीं हैं। पहले से लेकर छठे खंड तक प्रत्येक में चार-चार तरंग हैं। श्रृंगारखंड में सात तरंगे हैं। इस प्रकार प्राप्तांश में कुल इकतीस तरंगे हैं। यदि अनुपलब्धाँश में कम से कम प्रखंड 4-5 तरंगों के हिसाब से 8-9 ही तरंगे हों तो भी यह ग्रंथ 40 तरंगों का वृहत्त प्रबन्ध काव्य है। अप्राप्त अंश में कथा क्या होगी, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है।

द्वितीय - अध्याय

रूप सौन्दर्य एवं प्रेम का तात्त्विक विवेचन

सौन्दर्य की व्युत्पत्ति :— 'सौन्दर्य' सुन्दर की भाववाचक संज्ञा है। वाचस्पत्य कोश के अनुसार 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'उन्द्' धातु में 'अरन' प्रत्यय जोड़कर 'सुन्दर' की सिद्धि की गयी है। जिसका अर्थ हुआ अच्छी तरह से आर्द्र करने वाला।[1] 'नन्द' धातु से भी सुन्दर की व्युत्पत्ति मानी गयी है। सुन + नन्द अर्थात जो भली प्रकार से प्रसन्न करे। संस्कृत हिन्दी कोश में सुन्दर की व्युत्पत्ति सुन्द + अर से की गयी है।[2]

सुन्दर की एक और व्युत्पित्ति भी सम्भव है – सुन्द राति इति सुन्दरम्। 'सुन्द' का अर्थ है कर्त्तनी अर्थात जो कैंची की तरह काटने वाला हो, उसको जो लाता हो, वह सुन्दर है। सौन्दर्य हृदय पर, कैंची की तरह काट वाला प्रभाव, नेत्रों द्वारा करता है।[3]

इसके अतिरिक्त 'सुनर' तथा 'असन' से भी सुन्दर का सम्बन्ध जोड़ा गया है।[4]

परन्तु ये व्युत्पत्तियां कल्पना क्रीड़ा की उपज हैं।

अतः सौन्दर्य की सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती है। विभिन्न विद्वानों द्वारा सौन्दर्य की जो परिभाषाएं दी गयी हैं, उनके संकलन से एक लघु ग्रन्थ बन सकता है। यूनान में सौन्दर्य की जो परिभाषाएं दी गयी हैं वे हैं – सुकरात, अफलातून , अरस्तू की परिभाषाएं। रोम में प्लूटार्क, प्लाटिनस ने; जर्मनी में –– काण्ट, हीगेल, शापेनहॉबर एवं लेसिंग ने, इग्लैण्ड में रस्किन, एडिसन, वर्क एवं पेन ने मुख्य रूप से तथा अन्य देशों में अनेक विद्वानों ने सौन्दर्य की परिभाषाएं दी हैं। भारतीय कवियों एवं विचाराकों ने भी सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ परिभाषाएं निम्न प्रकार से हैं –

---

1. वाचस्पत्यकोश, पृ0 5314
2. संस्कृत–हिन्दी–कोश, वी0 एस0 आप्टे, पृ0– 1115
3. डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवालः जयशंकर प्रसाद वस्तु एवं कला, पृ0 288
4. डॉ0 लालता प्रसाद सक्सेना। मंझन कसा सौन्दर्य दर्शन – पृ0 18

महाकवि माघ :- "जो क्षण-क्षण नवीनता प्राप्त करे, वही रूप रमणीय है।"[1]

कालीदास के अनुसार :- "प्रियेसु सौभाग्यफला हि चारुता।"[2]

सम्पूर्णानन्द की मान्यता है :- "कुछ ऐसे दृश्‍ हैं जिनको देखकर हृदय में रस का संचार होता है। ---- हम इन सब में जो मनोहारिता पाते हैं, उसे सौन्दर्य कहते हैं।"[3]

डॉ0 हरिद्वारी लाल शर्मा :- "अपनी अनुभूति, प्रत्यक्ष, स्मृति, कल्पनादि द्वारा जो आनन्द को उत्पन्न करने वाले हैं वस्तु के गुण को सौन्दय, वस्तु का सुन्दर कहते हैं।"[4]

राम विलास शर्मा :- "प्रकृति, मानव-जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।"[5]

हरिबंश सिंह के अनुसार :- "स्थूल या सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।"[6]

प्रसाद जी ने सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है।"[7]

सौन्दर्य के सम्बन्ध में डॉ0 फतह सिंह की मान्यता मौलिक है। उनके मत से यह प्रश्न अर्थ विज्ञान का है। उन्होंनें कल्पना की है कि संस्कृत भाषा भाषियों के पूर्वजों ने उन्ही पदार्थों के लिए सुन्दर शब्द को प्रयुक्त करना प्रारम्भ

---

1. माघ - शिशुपाल वध 4/17
2. कालीदास कुमार सम्भव (पञ्चम सर्ग) : कालीदास ग्रन्थावली- सम्पा0 सीताराम चर्तुवेदी, 268
3. डॉ0 सम्पूर्णानन्द: चिद्‌विलास - 209
4. सौन्दय शास्त्र पृ0 101
5. समालोचक का सौन्दर्य - शास्त्र विशेषांक - पृ0 176
6. सौन्दर्य-विज्ञान - पृ0 56-571
7. कामायनी - लज्जा सर्ग - पृ0 102

किया होगा जिनके सम्पर्क से उनके हृदय में 'सुम' नामक अनुभूति उत्पन्न हुई होगी। उन्होंने लिखा है कि – "हमारा मन ही 'सुम' अनुभूति का दाता होने से सुन्दर है एवं जिस वस्तु या विभाव द्वारा आकर्षित होकर मन में अनुभूति विभावित होती है, उसे सुन्दर कहा जा सकता है, अतः उस वस्तु या विभाव के आकर्षण को ही सौन्दर्य कह सकते हैं। इसीलिए मनोहारिता, मनोज्ञता आदि शब्द सौन्दर्य के पर्यायवाची समझे जाते हैं।"[1]

पाश्चात्य विचारकों में वाउमगार्टन, हीगेल, क्रोचे, कीट्स, रीलिंग आदि ने सौन्दर्य को परिभाषित किया है –

The appearance of perfections or

We may define beauty as successful expression, or better, as expression and more, because expression when it is not successful, is not expression"[3]

"Beauty is Truth, Truth is beauty - that is all[4]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय एवं पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों ने सौन्दर्य पर दो दृष्टि से विचार किया है –

1. भौतिकवादी या वस्तुगत दृष्टिकोण, जिसमें विभाव को दृष्टि में रखकर विचार हुआ है।

---

1. सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका – पृ0 127
2. वाउमगार्टन
3. हीगल
4. क्रोचे
5. कीट्स

2. आध्यात्मवादी या व्यक्तिगत दृष्टिकोण जिसमें व्यक्ति को दृष्टि में रखकर विचार हुआ।

कुछ ऐसे समन्वय वादी विचारक हैं जिन्होंने सौन्दर्य को वस्तुगत भी माना एवं व्यक्तिगत भी। इन सभी पर विचार करना उपयोग एवं प्रसंगानुकूल होगा।

प्रत्ययीकृत पुनः प्रत्यक्ष (आइडियालाइज्ड रिप्रेजन्टेशन) में ललित कलाओं का सोन्दर्य बोध छिपा है। अत. सुन्दर की अभिव्यक्ति या सोन्दर्य का अभिवर्द्धन कला का उद्देश्य है। वास्तविकता यह है कि कला में हमें सृष्टा (कलाकार) की चेतना के मुग्ध संवेग सा समग्र मानव चेतना तक आशु संक्रमण मिलता है। यह संक्रमण सौन्दर्य–स्फूर्ति के सहारे निस्पन्न होता है। ललित कला (चारु–कला) की तरह उपयोगी कलाओं (कारूकला) में भी सोन्दर्य–बोध का महत्त्व है। वस्तुतः प्रत्यक कला कलाकार की मनः स्थिति अथवा आत्मानुभूति का एक आन्तरिक अंश है। बाह्य उपादानों से उसका तात्विक नहीं, अभिव्यक्तिगत सम्वन्ध है। कलाकार की अनुभूतियों में सुरक्षित अर्मूत कला जब प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से मूर्त बनने लगती है, तब सांसारिक उपदानों की आवश्यकता होती है। अत. उपयोगी कलाओं में भी आवश्यक उपादानों के प्रस्तुत रहने पर उन्हें समंजस संगठन, आकारिक अनुपात एवं नयनाभिरामता प्रदान करने के लिए कलाकार को अपनी शिल्प–रूचि तथा सोन्दर्य–बोध का प्रयोग करना ही पड़ता है।

दूसरा ध्यातव्य तथ्य यह है कि सौन्दर्य दृष्टि से कला में मुख्य और गौड़ अथवा अल्प और विराट का कोई भेद नहीं होना चाहिये। यह आवश्यक है कि कला में प्रस्तुत सौन्दर्य के आलम्बन विधान में रूचि–भेद क्रियाशील रहता है। अतः कला सृजन एवं कला भावन में, क्रमश. सृष्टा एवं सहृदय की स्वाद रूचि का आपेक्षिक महत्त्व है। आधुनिक सौन्दर्य प्रधान कलानुचिंतन से बहुत पूर्व प्लेटो ने इस आश्रगत रूचि भेद को संकेतित किया था। किन्तु इस मान्यता को कुछ सीमाओं के साथ ही स्वीकृत होना चाहिए, क्योकि आत्मरूचि निर्भर व्यक्ति अपनी ---- कल्पानाओं से उच्चकोटिक कला का सृजन अथवा चयन नहीं कर

सकता। अतः कला की सृजन-क्षमता हेतु कल्पना, भावना अथवा संवेग में अंशतः वस्तु प्रत्ययनेयता आवश्यक है।"[1]

कुछ विचारकों की दृष्टि में सौन्दर्य पूर्णतः वस्तुनिष्ठ है।[2] इसीलिए वह प्रत्यक्ष-बोध से सम्बन्धित है। प्रत्यक्ष हेतु अन्तः करण और इन्द्रिय दोनों का वस्तु के साथ सान्निकर्ष या संयोग होना चाहिए। इस प्रत्यक्ष की मात्रा इन्द्रियों की सशक्तता, अशक्तता ओर अच्छाई बुराई पर निर्भर है। इन्द्रिय एक प्रकार की शक्ति है जिसमें बाहरी वस्तु, ज्ञेय अथवा दृश्य से प्रभावित होने तथा उनको प्रभावित करने की क्षमता है। ऐन्द्रिय होने के कारण ही, अर्थात प्रत्यक्षीकरण के माध्यम की विशेषता के कारण ही हम व्यक्तियों में 'सौन्दर्य' के प्रभाव से मुग्ध होने तथा सुन्दर को प्रभावित करने में स्तर अथवा मात्रा की भिन्नता पाते हैं। इसीलिए व्यक्ति के सौन्दर्य-बोध की भिन्नता भी इसका पुष्कल प्रमाण पेश करती है कि सौन्दर्य का सम्बन्ध ऐन्द्रिय-प्रत्यक्ष से है।

इस मान्यता को स्वीकृत करने पर एक दूसरा तथ्य स्वयं उद्घाटित होता है - वह है- सौन्दर्य-ग्रहण में अन्तःकरण का योग। अन्तःकरण के योग की आवश्यकता दो अवस्थाओं में है - एक सौन्दर्य की प्रत्यक्षवस्था में, दूसरे उनकी स्मृति में। पहली अवस्था में इसलिए अन्तःकरण का योग होना चाहिए कि अन्यमनस्क होने की दशा में, चित्त कहीं और लगे रहने की अवस्था में सौन्दर्य के अवलोकन में मन नहीं रमता है। स्मृति अवस्था में - अन्तःकरण का योग इसलिए चाहिये कि इसमें सौन्दर्य का वास्तविक आलम्बन अन्तर्हित रहता है।

द्वितीयावस्था की उद्भूति प्रथमावस्था में ही निहित है। सौन्दर्य - भावन में यही वह स्थल है, जहाँ 'आइडिया' एवं 'इमेज' में एकत्व अपना संतुलन रखता है। इन दोनों में यदि भावगत पौर्वापर्य माना जाय तो 'आइडिया' कारण एवं 'इमेज' कार्य होगा।

---

1. काव्य में सौन्दर्य तत्व - डॉ0 कुमार विमल
2. काव्य में सौन्दर्य तत्व - डॉ0 कुमार विमल

(क) यूनान

1. <u>सुकरात</u> – सुन्दर आरै शिव एक हैं अतः सुन्दर की जीवन–सापेक्ष है। (जनोफेन–रचित 'मेमांरविलिया' नामक ग्रन्थ के आधार पर सुकरात के सौन्दर्य सिद्धांत का यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है।)

2. <u>प्लेटो</u> :– सुन्दर, शिव एवं सत्य एक हैं। सुन्दर 'सत्य' है एवं पूर्ण है तथा सुन्दर के लिए नैतिक होना आवश्यक है।

3. <u>अरस्तू</u> :–सौन्दर्य अकांक्षा, वासना और उपयोगिता से ऊपर की वस्तु है, तथा सुन्दर वस्तु में 'आर्डर' 'सिमंट्री' और डिफिनिटनस' की विद्यमानता रहती है। इनका सिद्धांत–सार यह है कि सुन्दर और शिव एक नहीं हैं, क्योंकि शिव का अनुभव गति की अवस्था में होता है और सुन्दर की अनुभूति स्थिति की अवस्था में।

ख. <u>जर्मनी</u>

1. <u>वाउमगार्टन</u> :– प्रकृति सौन्दर्य का चल प्रतिमान है। अतः प्रकृति का अनुकरण ही सौन्दर्य सृजन है।

2. <u>काण्ट</u> :– (इन्होंने 'ट्रान्सेण्टेण्टल एस्थेटिक्स' की उद्‌भावना की। इनके अनुसार) सौन्दर्य चिन्तनशील धारणा का आनन्द है। इसका अस्तित्व वस्तुनिष्ठ नहीं है, किन्तु इसका उद्‌देश्य नैतिक शिवत्व का स्थापन है।

3. <u>हीगेल</u> :– 'आइडियल' की अभिव्यक्ति का प्रयास सौन्दर्य सृजन है और इसका माध्यम अथवा अनुकरण ही सुन्दर है।

4. <u>शापेनहावर</u> :– इच्छाओं अथवा 'प्लैटोनिक आइडियाज' का सम्मूर्तन ही सौन्दर्य है।

5. <u>लेसिंग</u> :– सौन्दर्य अभिव्यक्ति में नहीं, वस्तु–विधान और पद्धति में है। इन्होने केवल चित्रकला एवं कविता को दृष्टिपथ करके सौन्दर्य पर विचार

ग. इगलैण्ड

सौन्दर्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रारम्भ करने का श्रेय इगलैण्ड के सौन्दर्य शास्त्रियों को है। ये सौन्दर्यशास्त्री मुख्यतः दो निकाय के हैं – 'आइडियालिस्ट' (अर्थात् इनट्यूशनलिस्ट) एवं 'फार्मेलिस्ट' अर्थात् एना त्रिटिकल प्यांरिस्ट) प्रथम निकाय के विचारक सौन्दर्य को विश्लेषण से परं मानते हैं; क्योंकि सौन्दर्य का विश्लेषण नहीं हो सकता, चूँकि वह वस्तु एक अखण्ड गुण है। किन्तु फार्मेलिस्टो विचारको का कथन है कि सौन्दर्य का विश्लेषण हो सकता है, क्योंकि उसका सम्बन्ध वस्तु–विशेष के आकृति–विधान से है।

इगलेण्ड के ' आइडियालिस्ट' विचारकों में ये प्रधान हैं–

(1) **शैफ्ट शबरी** – सौन्दर्य ओर परम विभु एक हैं।

(2) **टॉमस रीड** – सोन्दर्य का आध्यात्मिक चैतन्य है।

(3) **रस्किन** – सोन्दर्य ईश्वर की विभूति है। रस्किन ने मनुष्य में दो वृत्तियाँ मानी हे– सहज, काल्पनिक सहज–वृत्ति के अन्तर्गत ही सोन्दर्य बोध आता है। इन्होंने सौन्दर्य की दो श्रेणियाँ मानी हैं– टिपिकल एवं बायव्लन।

इन्होंने बायटलन के दो भेद माने हैं– रिलेटिव, जेनेटिक।[1]

इगलैण्ड के 'फार्मेलिस्ट' विचारों में निम्नलिखित प्रमुख हैं–

(1) **एडिसन** –सौन्दर्य परिवेश और संगीत का फल है।

(2) होगार्थ – सौन्दर्य वस्तु विशेष के अंगों के सन्धि–बन्ध, प्रयुक्तियों की रंजकता और अनुक्रम में विद्यमान रहता है।

(3) वर्क – वस्तु विशेष की वर्णगत चारुता, आंगिक कोमलता एवं उज्ज्वलता ही सौन्दर्य है।

---

1. लैक्चर्स आन आर्ट – जान रस्किन, जार्ज एलेन, 1904।

(4) बेन – सौन्दर्य सोद्‌देश्य होता है। हमारा वह संवेग जो जीवन के प्रयोजनों से परे रहता है, सौन्दर्य कहलाता है।

(5) एल्सन – सौन्दर्य विचारों का प्रवाह है।

च. रूस

(1) चर्नासेत्सकी – सौन्दर्य ही जीवन है।

सौन्दर्य सामाजिक जीवन के जीवन यथार्थ का ऐसा प्रतिबिम्ब है, जो हमें आनन्द ही नहीं देता, प्रगतिशील होने के प्रेरणा भी देता है।

सौन्दर्य का स्वरूप –

भौतिकवादी या वस्तुगत दृष्टिकोण :

इस दृष्टिकोण के विचारकों ने विभाव या वस्तु में ही सौन्दर्य की खोज की है। संस्कृत काव्यशास्त्र में क्षेमेन्द्र औचित्य को जो महत्व दिया है, उसे सौन्दर्य की दृष्टि से माना जा सकता है। अरस्तू ने सममात्रा (SYMMETRY) व्यवस्थित क्रम तथा निश्चित आकार के रूप सौन्दर्य के जिन अंगो का प्रतिपादन किया है, वे इसी औचित्य के अन्दर आ जाते हैं। " संसार में सौन्दर्य की भावना इसी औचित्य तत्व पर आश्रित हैं। प्रत्येक वस्तु का अपना एक विशिष्ट तथा निर्दिष्ट स्थान है। जहाँ से भ्रष्ट होने पर उसका मूल्य तथा महत्व नष्ट हो जाता हे।[1]

क्षेमेन्द्र ने औचित्य को ही सौन्दर्य का मूल तत्व माना है। यदि कोई सुन्दरी अपने गले में करधनी धारण कर ले तो उसकी प्रचण्ड मूर्खता देख कर उस पर कौन नहीं हंस पड़ेगा? यदि कोई पुरूष शरणागत प्रणत के ऊपर वीरता दिखाये ओर शत्रु पर करूणा करे तो उसकी हंसी कौन नहीं उड़ायेगा? सच्ची बात तो

---

1. बल्देव उपाध्याय-साहित्यशास्त्र, पृ0 31

यह है कि औचित्य के बिना न तो अलंकार ही सौन्दर्य का उन्मेष करते और न ही गुण ही प्रीति विस्तार करते हैं।[1]

दिदिशे ने कहा था कि वस्तु के पारस्परिक सम्बन्धों में सौन्दर्य है।

वर्क ने आकार की लघुता मसृणता क्रमिक परिवर्तन, कोमलता, वर्ण दीप्ति एवं शुद्धता को सौन्दर्य के उपकरण माना है। रिचार्ड प्राइस एकरूपता, वैशिष्ट्य, व्यवस्था तथा सम्मात्रा में सौन्दर्य स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वस्तु के बाह्य रूपाकार में सौन्दर्य की खोज करने वाले विचारकों ने विभिन्न गुणों को प्रमुख स्थान दिया है। यह वस्तुगत गुण किसी न किसी प्रकार कलाओं के सौन्दर्य में भी महत्वपूर्ण ध्यान रखते हैं।

इस वर्ग के विचारकों की खोज वस्तु तक ही परिमित रही। सौन्दर्य का अनुभवकर्ता से भी कोई सम्बन्ध है, इस ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी। कुछ विद्वान विभाव या वस्तु के रूपाकार से आगे किन्तु उनका दृष्टिकोण भौतिकवादी ही रहा। डॉ0 जेरार्ड ने जहाँ विभाव की दृष्टि से आकृति एवं वर्ण--सौन्दर्य का स्वीकार किया, वहाँ प्रमाता को दृष्टि में रखकर उपयोग सौन्दर्य को भी माना है।[2]

जेफ्रे, एलीसन एवं बेन इत्यादि ने साहचर्यवाद की प्रतिष्ठा करके सौन्दर्य के वस्तुगत दृष्टिकोण की त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया। परन्तु उनके मत में भी विभाव को मुख्य स्थान मिला, क्योकि उनके मतानुसार जो सुखद अनुभूतियाँ सौन्दर्य का कारण बनती हैं वे वस्तुत: और अनिवार्यत: विभाव या वस्तु को लक्ष्य करके ही उपजती एवं संचित होती हैं।[3]

अत: साहचर्यवाद का महत्त्व इतना ही माना जा सकता है कि वह अनुकूल परिस्थिति में भाव का प्रकर्ष कर सकता है एवं प्रतिकूल परिस्थिति में या

---

1. बलदेव उपाध्याय भारतीय साहित्य शास्त्र पृ0 32
2. ब्यूटी आफ यूटिलिटी
3. डॉ0 फतह सिंह भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पृ0 11

तो दुखद भाव को कुछ कम कर सकता है या सुखद भाव में कुछ न्यूनता ला सकता है।[1]

कुछ विचारकों ने विभाव को छोड़कर सौन्दर्य का कारण विभिन्न जातियों में प्रचलित सौन्दर्य आदर्शों के आधार पर सौन्दर्य की विवेचना का प्रयास किया है। इनमें पेरवफी का नाम उल्लेखनीय है। पर ये आदर्श भी तो विभिन्न विभावों से संयुक्त हैं। लार्ड फेने, विलियम शेन्सटन एवं अब्राहम ह्यूकर ने प्रथा और स्वभाव को सौन्दर्य का हेतु माना है। रेनाल्ड्सादि ने सौन्दर्य–मीमांसा में प्रकृति को महत्त्व दिया है। उनके मतानुसार प्रत्येक पौधे एवं प्राणी की प्रकृति उसके पूर्व निर्णीत रूप की ओर लिये जा रही है एवं यदि हम उनके रूपों में सौन्दर्य देखते हैं कि केवल इसलिए कि हम ऐसा करते आए हैं। हमारी यह आदत उसी प्रकार की है जिस प्रकार हाँ से स्वीकृति एवं ना से निषेध का ज्ञान होता है।[2]

ह्यूम का कहना है कि प्रकृति ने विषयों या विभावों में कुछ ऐसे गुण निहित किये हैं जो विशेष भावनाओं को उत्पन्न करते हैं। उपर्युक्त सभी मतों में किसी न किसी प्रकार से वस्तुगत या भौतिक दृष्टिकोण की ही प्रधानता रही है। डॉ० राम विलास शर्मा ने भी इसी पक्ष में अपना निष्कर्ष दिया है।

अध्यात्मवादी या व्यक्तिगत दृष्टिकोण

इस कोटि के विचारकों में सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम क्रोचे का है। अतः हम सर्वप्रथम उन्हीं के दृष्टिकोण पर दृष्टिपात करेंगे। क्रोचे ने चार वृत्तियों के समिश्रण को आत्मा मानी है। यह चार वृत्तियाँ इस प्रकार हैं –

1. वीक्षामूलक वृत्ति
2. अन्वीक्षामूलक वृत्ति
3. विधि मूलक वृत्ति

---

1. डॉ० आनन्द प्रसाद दीक्षित : सौन्दर्य तत्व की भूमिका, 9
2. डॉ० फतह सिहं : भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पृ० 11

4. योगक्षेम मूलक वृत्ति।

क्रोचे का मत है कि समस्त रूपादि का बोध केवल वीक्षावृत्ति के व्यापार द्वारा ही हो सकता है। अत: सौन्दर्य की बाह्य सत्ता नहीं होती है। सौन्दर्य बोध ही सौन्दर्य या सुन्दर होता है। क्रोचे के मतानुसार सौन्दर्य का निर्णय किन्हीं बहिरंग नियमों से निश्चित करना सम्भव नहीं है, क्योंकि सौन्दर्य बाह्य नहीं आन्तरिक वस्तु है। सौन्दर्य केवल कल्पनामूलक अन्तर्व्यापार होता है। क्रोचे का कहना है कि हम ज्ञान मात्र को दो भागों में बाँट सकते हैं – कल्पना प्रसूत विशेषावलम्बी ज्ञान और अन्वीक्षा प्रसूत सामान्यवलम्बी। कला या सौन्दर्य का सृजन 'इन्ट्यूटिव नॉलेज' से ही होता है। इससे ही बिम्ब निर्माण सम्भव है। यह स्वयं प्रकाश ज्ञान जितना ही विशुद्ध एवं मुक्त होता है, उतनी ही कला सुन्दर होती है। निर्विकल्प भाव से किसी मूर्ति की अभिव्यक्ति का नाम ही स्वयं प्रकाशन है। जिस व्यक्ति में यह ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे कवि कहा जाता है। अभिव्यक्ति स्वयं प्रकाश ज्ञान की होगी तो अभिव्यक्ति अवश्य होगी। क्रोचे की दृष्टि में अभिव्यक्ति में ही सौन्दर्य है। स्वयं प्रकाश ज्ञान और अभिव्यक्ति की अभिन्नता का सिद्धान्त क्रोचे की मौलिक देन है।

"क्रोचे की सौन्दर्यशास्त्री मान्यताओं की सविस्तार आलोचना डॉ0 दास गुप्ता ने सौन्दर्य–तत्व[1] में की है। यहाँ स्थानाभाव से हमने सारांश में ही क्रोचे के विचारों को स्पष्ट किया है। उनके विचारों में अनेक मुखी अन्तर्विरोध हैं ओर सौन्दर्य–शास्त्र के सम्बन्ध में वे कोई मान्य सिद्धान्त नहीं रख पाते हैं परन्तु क्रोचे का यह महत्व असंदिग्ध है कि उन्होंने सौन्दर्य शास्त्र को संकीर्ण नियमों से छुटकारा दिलाने का प्रयास किया एवं कला की आध्यात्मिकता पर बल दिया है।

सौन्दर्य की आध्यात्मवादी व्याख्या करने वाले अथवा उसे ईश्वरीय शक्ति से जोड़ने वाले विचारकों में प्लेटो, प्लॉटिनस, रस्किन तथा सेट अगस्टाइन का नाम उल्लेखनीय है। अगस्टाइन की मान्यता है कि असीम शिवत्व एवं सत्य, सौन्दर्य

---

1. डॉ0 आनन्द प्रसाद दीक्षित – "सौन्दर्य–तत्व" की भूमिका – पृ0 18

ईश्वर के गुण हैं एवं वस्तुओं को यह गुण ईश्वर ही प्रदान करता है। प्लेटो ने सृष्टि के दो प्रकार माने हैं – चेतन एवं प्रतीय मान। प्रतीय मान जगत का मूल रूप भी चेतन जगत में हैं, जो अद्वैत तथा आत्यांतिक सौन्दर्य है तथा जो सदा एक ही रूप रहता है। प्रत्येक सुन्दर वस्तु इसी आत्यान्तिक सौन्दर्य से ही सुन्दर होती है। प्लाटीनस ने भी परम शक्ति के शिवरूप पर ही बल दिया है। उसके अनुसार इसी 'शिवत्वमय एक' से बुद्धि का उदय होता है एवं यही आत्यांतिक सौन्दर्य है। प्लेटो एवं प्लाटीनस दोनों ने यही धारणा व्यक्त की है कि सभी प्रकार का सौन्दर्य हममें सत्य और मंगल को बढ़ाता है। इन दोनों का आत्यान्तिक सौन्दर्य शेफट्सबरी के उस प्रथम सौन्दर्य से तुलनीय है जिसे उन्होंने सत्य ईश्वर मान कर यह बतलाया है कि उसी के प्रतिबिम्ब स्वरूप सृष्टि में सारे सौन्दर्य विद्यमान हैं।

कला के नैतिक दृष्टिकोण रखने वाले टाल्सटॉय का विचार है कि नैतिक विवेक जागृत करने वाली कृति ही सुन्दर मानी जाती है।[1]

कला का उद्‌देश्य व्यक्तियों को जोड़ना है। वही कला उत्कृष्ट है जो यह कार्य करे। इसी प्रकार रस्किन ने सौन्दर्य का सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ा है। वस्तु की अनन्तता, एकता, स्थिरता, सम्मात्रा, शुद्धता एवं संयदि आदि विशेषताएं बताते हुए उन्होंने कहा कि ईश्वर सर्वत्र अपनी महिमा व्यक्त कर रहा है। ईश्वर ही सौन्दय स्वरूप है। रस्किन ने अपने ग्रन्थ 'लेक्चरस आन आर्ट तथा मार्डन पेन्टर्स' में सौन्दर्य तत्व पर विचार किया है। और सर्वत्र ही नैतिकता के आलोक में अपनी परिभाषाएं व्यक्त की हैं।

उन्होंने सौन्दर्य के दो भेद – बाह्य और आन्तरिक मानते हुए बाहरी गुण एवं आनन्दमय जीवन के साथ उत्पन्न सुखबोध की चर्चा की है।

ज्वायफे और रीड ने भी सौन्दर्य की आध्यात्मवादी व्याख्या की है। ज्वॉयफे ने सुन्दर, सुखद और उपयोगी को भिन्न–भिन्न मानते हुए सौन्दर्य को

---

1. डॉ0 दास गुप्ता : सौन्दर्य तत्व, पृ0 158

किसी अदृश्य शक्ति की अभिव्यक्ति माना है। वह भौतिक उपकरणों द्वारा व्यक्त होती है। रीड ने ज्ञान (COGNITION) एवं इच्छा (AFFECTION) को ईश्वरीय शक्तियाँ मानकर मूलतः सुन्दर माना है। रीड के अनुसार सौन्दर्य कोई वस्तु का गुण नहीं। वह तो ईश्वरीय शक्ति है।

कुछ सौन्दर्यशास्त्रियों ने मानव-व्यवहार का विश्लेषण करते हुए सौन्दर्य-मीमांसा की है। इनमें शिलर और बाइल्स, विक्टर काजिन का नाम उल्लेखनीय है। शिलर ने मानव-व्यवहार के तीन क्षेत्र माने हैं - जड़ जगत, नीति-जगत और क्रीडा जगत। क्रीड़ा जगत में जड़ एवं नीति जगत् का समन्वय है और यही सौन्दर्य का जगत् है। यही आनन्द का क्षेत्र है। लाउल्स ने भी मानव-व्यवहार के तीन क्षेत्र माने हैं - सत् लोक, नियम-लोक और इष्ट बुद्धि लोक। लाउल्स के अनुसार सौन्दर्य सुख का ही एक विकसित रूप है और उससे भिन्न नहीं है। भेद केवल यही हैं कि सुख इन्द्रिय-गोचर होता है और वह हमारी वैयक्तिक आख्या को आनन्दित करता है। जबकि सौन्दर्य हमारी व्यापक आत्मा को प्रसन्न करता है। विक्टर काजिन ने सौन्दर्य के तीन भेद स्वीकार किये हैं - भौतिक, नैतिक और मानसिक। उसकी दृष्टि में मानसिक सौन्दर्य ही प्रधान है शेष दोनों इसी पर आधारित हैं। मानसिक सौन्दर्य ही शुद्ध आत्यान्तिक है। यही ईश्वर है।

भारतीय दृष्टि में

सौन्दर्य-शास्त्र का विधिवत और पुष्कल अध्ययन जैसा योरोप में किया गया, वैसा भारत में नहीं। यहाँ के एक भी दार्शनिक ने सौन्दर्य को पश्चिम की तरह अपने चिन्तन-मनन का विषय सम्भवतः नहीं बनाया है। दो-एक पुराणों एवं सूत्र-ग्रन्थों में शिल्प सम्बन्धी नियमों और आचारों का थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है। अग्नि पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, शुक्र नीति, मनसार एवं चित्र-सूत्र में शिल्पकला के कुछ नियमों एवं आचारों का वर्णन किया गया है। चित्र एवं मूर्ति की अपेक्षा काव्य और संगीत का हमारे यहाँ विशेष विवेचन हुआ है। भारतीय

विचारको ने सौन्दर्य को रस नाम से अभिहित किया है। काव्य की आत्मा के अनुसंधान में जिस सिद्धांतों का प्रवर्त्तन हुआ उन्हें हम सौन्दर्यानुभूति के सिद्धांत कह सकते हैं। इस प्रकार रस, ध्वनि, व्यंजना, वक्रोक्ति, औचित्यादि वादों का विवेचन सौन्दर्य–शास्त्र के अन्तर्गत ही समझा जाना चाहिए। रस, रसिक, रसवन्त, रसास्वादनादि शब्द सौन्दर्य की विभिन्न रूपों एवं अवस्थाओं को अभिव्यक्त करते हैं। 'रस' वैदिक साहित्य से होता हुआ, उपनिषदों में अवगाहन करता हुआ आगम योग एवं काव्य शास्त्रों में आकर अपना पूरा विस्तार प्राप्त करता है।

वैदिक संहिताओं में सौन्दर्य पर कोई अलग सूक्त या काण्ड भले ही न मिलता हो, लेकिन उनमें सौन्दर्य सम्बन्धी ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है. जिनसे प्रतीत होता है कि वैदिक युग में सौन्दर्य के विविध रूपों और भंगिमाओं का ज्ञान तत्कालीन समाज को अवश्य उपलब्ध था। ऋग् वेद में आये हुए सोन्दर्य के पर्यायवाची शब्दों का जर्मन विद्वान पिशेल तथा ओल्डेन वर्ग ने एक संकलन किया है। सौन्दर्य–विषयक भाव को व्यक्त करने वाले इतने शब्द वेदों में मिलते हैं, यह देखकर हमें गोरव होता है।

उदाहणार्थ यहाँ कुछ शब्द उद्धत हैं –

1.	पेराश	9.	भण्ड	17.	रण्व
2.	अप्सस्	10.	प्रिय	18.	यक्ष
3.	दृश	11.	चारु	19.	अद्‌भुत
4.	श्री	12.	रूप	20.	हिरण्यपंशस्
5.	वयु:	13.	कल्याण	21.	सहस्रपंसस्
6.	वस्नु.	14.	शुभ	22.	रुचि
7.	श्रिय:	15.	चित्र	23.	लावण्य
8.	भद्र	16.	स्वादु	24.	विश्वपंशस्

अभी सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषियों का मानस सौन्दर्य एवं उदात्त तत्व को ग्रहण करने के लिए सदा उत्सुक रहता था। एवं उन्होंने इनका साक्षात्कार भी किया था। आनन्द कुमार स्वामी ने एक स्थल पर कहा है कि वैदिक काल की सौन्दर्य–भावना, एकाँत व्यवहारिक थी और उसकी सौन्दर्यानुभूति कौशल या अलंकरण तक सीमित थी।

कला–सर्जना के साथ योग–साधना का सामंजस्य उपस्थित करना भारतीय–कला–दर्शन की निजी विशेषता हो गयी। जिस प्रकार योग–साधना के द्वारा हम अपनी आत्मा में निहित परशक्ति का साक्षात्कार करते हैं और जीवन के माया जनित बंधनों से मुक्त हो जाते हैं। उसी प्रकार कला–साधना द्वारा चित्त की बाह्य वासनाओं से हटाकर एक बिन्दु पर स्थापित किया जाता है। कलाकार भी योगी की तरह अपने इष्ट देव का साक्षात्कार करता और पुन: उसी झाँकी को किसी माध्यम से मूर्त कर लेता है। आदर्श कलाकार योगी, साधक, दृष्टादि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। फिर भी ध्यान देने की बात यह है कि योग कला वेदों के लिए साधन रहा, साध्य नहीं।

योग का लक्ष्य चित्त की एकाग्रता है, विषमताओं का हटाकर जीवन में सामंजस्य उत्पन्न करना है। योगी सभी प्रकार के छन्दों से ऊपर उठकर भूया में प्रवेश करता है, जहाँ पूर्णानन्द हैं। कलाकार भी चित्त की एकाग्रता द्वारा कला के सत्य का प्रत्यक्षीकरण करता है और वह उस आनन्दलोक में प्रवेश करता है, जहाँ सभी विषयों का साधारणीकरण हो जाता है। अग्निपुराण में शिल्पी को उपदेश देते हुए कहा गया है कि उसे इष्ट देव के मूर्ति निर्माण की पूर्व रात्रि में अपने इष्ट का ध्यान करना चाहिए।

काव्य की आत्मा के अनुसंधान में संस्कृताचार्यों ने जिन सिद्धांतों का निरूपण किया है, सच पूँछिये तो वे काव्य–सौन्दर्य के व्यापक अर्थ में कला शास्त्र के सिद्धांत हैं। काव्य–सौन्दर्य की अनुभूति से उत्पन्न आनन्द का नाम है। भरत मुनि के प्रसिद्ध सूत्र– "विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगद् रस निष्पत्ति:"

को लेकर शंकुक, लोल्लट, नायक, अभिनव गुप्त ने विभिन्न व्याख्याएं प्रस्तुत की , हैं ---------------------------------" विभाव के अन्तर्गत नायक–नायिका, देश और कालगत परिस्थिति एवं बाह्य प्रकृति इन सभी का समावेश हुआ है। पश्चिम के कुछ दार्शनिकों ने तो आत्म–तत्व को ही सब कुछ मान लिया है एवं कुछ ने वस्तुतत्व को। एक तो वस्तु–जगत के संस्कारों को मानस के समक्ष नगण्य ठहराते हैं और दूसरे मानस की कोई स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता नहीं मानते। ये दोनों, आदर्शवादी एवं भौतिकवादी सिद्धांत–अतिवादी प्रतीत होते हैं। कला--दर्शन का अकेले एक से काम नहीं चलेगा। भरत मुनि ने उपर्युक्त सूत्र में विभाव को स्थान देकर कला का सम्बन्ध वस्तु जगत से स्थापित कर दिया है। क्रोचे की शब्दावली में हम इस विभाव को सौन्दर्य–निष्पत्ति को भौतिक समुत्तेजन् कहेंगे।

योरोपीय दृष्टि में :–

प्लेटो ने सृष्टि को दो रूपों में देखा है – चेतन (IDEAL) और प्रतीयमान। चेतन जगत नित्य है, चिन्मय है तथा आदि अन्त से परे है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता यह सदा एक रस रहता है। प्रतीयमान जगत में जो सौन्दर्य दिखाई देता है, उसका मूल उत्स इसी चेतन जगत में है। चेतन के सौन्दर्य की तरंग–चिद्–विलास सर्वत्र व्याप्त है। चेतन का एकत्र प्रतीयमान के अनेकत्व के माध्यम से प्रकाशित हो रहा है। जहाँ अनेकत्व उस एकत्व के प्रकाश को अभिव्यक्त करता है, वही सौन्दर्य है। प्लेटो ने सौन्दर्य को तत्व ज्ञान का साधन माना है। सौन्दर्य में शिव–मंगल विधान का तत्व स्वतः निहित है। सौन्दर्य की आराधना द्वारा व्यक्ति दिव्य सत्य का दर्शन करता है, पवित्र प्रेम का साक्षात्कार करता है और अपनी आत्मा का ईश्वरीय सत्ता में विलय करता है। सौन्दर्यानुभूति द्वारा व्यक्ति नैतिक, चित्त पवित्र एवं चरित्र दिव्य हो सकता है। सौन्दर्य – विवेचन के प्रसंग में प्लेटो शिष्य अरस्तू ने कहा है कि सुन्दर वह है कि जो शिव है इसलिए आनन्द दायक है क्योंकि वह शिव है। सुन्दर के

साथ सत्य शिव एवं सदाचार की चर्चा प्राचीन यूनानी आचार्यो से प्रारम्भ हुई और आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

प्राचीन यूनानी आचार्यो में अनेकता में एकता का सिद्धांत सौन्दर्य के स्वरूप विवेचन में अत्यन्त प्रमुख रहा। कुछ आचार्यो ने सौन्दर्य को वस्तु विशेष की रूपाकृति में अधिष्ठित पाया। कुछ ने व्यक्ति के चेतन मानस में उसका मूल तत्व देखा। प्रथम की दृष्टि में सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ एवं दूसरी की दृष्टि से आत्मनिष्ठ कहा जायेगा। वस्तुनिष्ठ दृष्टि ने रूपाकृति पर बल दिया और तत्सम्बन्धी अनेक प्रतिमानों का उद्घाटन किया। रूपाकृति के प्रसंग में निम्नलिखित तत्वों का प्रायः विवेचन होता है:–

सम्मात्रा	–	सिमेट्री	संयम	–	मॉडरेशन
एकरूपता	–	यूनिफार्मिटी	मसृणता	–	स्मूथनेस
विविधता	–	वैराइटी	व्यंजना	–	सजेशन
औचित्य	–	प्रोप्राइटी	स्पष्टतः	–	सिम्प्लिसिटी
संगति	–	हार्मनी	कोमलता	–	टेन्डरनेस
प्रमाणबद्धता	–	प्रोपोर्शन	वर्ण–प्रदीप्ति	–	कलरिंग

एक ही प्रकार के दो या दो से अधिक अंगों में समानरूपता को सम्मात्रा कहते हैं। एक समान अंगों में एकरूपता का होना आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति का एक हाथ उसकी कमर तक पहुँचता और दूसरा उसकी कमर से नीचे लटकता तो यह हास्यास्पद हो जायेगा। दोनों हाथों का लम्बाई–मुटाई में समान होना आवश्यक है। प्रमाणवद्धता या सानुपातिकता में अनुपात का विचार किया जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों में समविभाजन और संतुलन का होना आवश्यक है। जिस वस्तु में जिस अंश का जिस अनुपात में, जिस अंश में होना चाहिए उसका उसी अनुपात में प्रमाण वद्धता है।

अरस्तू ने सौन्दर्य को सापेक्ष और निरपेक्ष इन दो रूपों में भी देखने का प्रयास किया है। शुद्ध संगीत, स्वतः पूर्ण वर्ण चमत्कार, ये निरपेक्ष सौन्दर्य

की श्रेणी में आयेंगे। लेकिन जहाँ सौन्दर्यानुभूति में प्रसंग सम्बन्ध और साहचर्य की आवश्यकता होती है, वहाँ वह सापेक्ष है। जिस संगीत में चित्त की वासना, उत्तेजन, चंचलता की उत्पत्ति होती है, वह 'सुन्दर' नहीं है। लेकिन रागिनी हमारे मानस को, पवित्र भावों को प्रतिमूर्त करती है वह निश्चय ही सुन्दर है। भाव की शुद्धता, दिव्य या ईश्वरीय शक्ति से उद्भूत होती है। अरस्तू ने सौन्दर्य के विवेचन में प्रतीकवाद की भी चर्चा की है। लेकिन यूनानियों का पूर्व-जन्म, परलोक और आध्यात्मिकता पर प्रगाढ़ विश्वास न होने के कारण प्रतीकवाद या सूक्ष्म विवेचन वहाँ न हो सका। यह सिद्धांत सादृश्वाद (सेम्ब्लेन्स) के समक्ष गौण पड़ गया। रूपाकृति के सौन्दर्य पर जो दृष्टि अधिक रीझती थी वह प्रतीकमूलक का विवेचन करने में असमर्थ सिद्ध हुई। प्लाटिनस ने प्लेटो के 'कला प्रकृति का अनुकरण है' का खंडन किया एवं प्रतीकवाद की महत्ता का पुन: प्रतिपादन किया।

काण्ट ने सौन्दर्यानुभूति से उत्पन्न आनन्द को इन्द्रिय-जनित सुख से भिन्न माना है। विशुद्ध सौन्दर्य बोध के अवसर पर व्यावहारिक जीवन में आने वाली सोद्देश्यता नहीं पायी जाती है। सौन्दर्यानुभूति में तर्क जनित विरोध नहीं रहता है, उसमें तो एक सर्वजनीन सत्ता रहती है। शिव में लक्ष्य का, अन्तिम फल का, श्रेय का विचार निहित रहता है। सुन्दर में ऐसा कोई लक्ष्य नहीं रहता। सुन्दर उस वस्तु की सुखानुभूति है, जो एक ही साथ सार्वभौम एवं आवश्यक है। सौन्दर्यानुभूति के क्षणों में पूर्वापर अन्तर्बाह्य, तारतम्य, सोद्देश्यता, जाति, प्रकार, मात्रा, अनुकमत्व आदि का बोध नहीं होता है। यह एक वास्तविक प्रत्यक्ष एवं आनंद अनुभूति है। काण्ट की सौन्दर्यानुभूति एवं भरत की रसानुभूति का आन्तरिक स्वरूप बहुत कुछ एक सा प्रतीत होता है।

<u>शिलर</u>- इन्होंने ललित-कला को मानव-संस्कृति का एक प्रमुख तत्व माना है। यह बर्बर पशुता से हमें सभ्य मानवता तक ले आयी है। इनकी दृष्टि में सौन्दर्य न तो वस्तुनिष्ठ है न आत्मनिष्ठ, यह आत्म वस्तुनिष्ठ है। अर्थात

सौन्दर्य विषय प्रधान भी है एवं विषयी प्रधान भी। शिलर का कथन है कि,

"सौन्दर्य हमारे लिए सचमुच 'वस्तु' है, क्योंकि इसकी अनुभूति हमें किसी विचार के फस्वरूप प्राप्त होती है। साथ ही, यह हमारी एक भाव दशा है क्योंकि अनुभूति के बिना इसका प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं। इस तरह का यह रूप है, क्योंकि इसका हम ध्यान करते हैं। यह प्राण है, क्योंकि हम इसका भावन करते हैं। संक्षेप में, हमारे भाव और कर्म का संगम बिन्दु सौन्दर्य है।"

काण्ट के सौन्दर्य-सिद्धांत से अभिप्रेरित होकर शिलर ने इस क्षेत्र में अपने दो मतों का युक्तियुक्त प्रतिपादन किया। पहला है कलानिष्ठ और दूसरा क्रीड़ा भावना।

व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण का आकृतिमूलक या रूपगतअर्थ कलानिष्ठ सादृश्य है। वास्तविकता स्वयं वस्तु से उत्पन्न होती है, लेकिन व्यक्ति की कल्पना या प्रत्यक्षीकरण उसमें सादृश्य विधान कर लेता है। अर्थात जब किसी वस्तु के रूपगत अर्थ का बोध हमारी ज्ञानेन्द्रियों को होता है तभी कला के सादृश्य विधान का उद्गम होता है। क्रीड़ा-भावना तो हमारी जन्मजात प्रवृत्ति है। खेल में हमारा कोई लक्ष्य या सांसारिक उद्देश्य निहित नहीं रहता। अपने मन को अनुरंजित करने हेतु हम खेल में तल्लीन होते हैं। जब हम किसी चीज को देखते हैं और देखते ही रहते हैं, देखने में ही जब सुख का अुनभव होने लगता है, तभी क्रीड़ा-भावना का उद्भव होता है। खेल में सांसारिक लाभ-हानि के झमेले से मुक्त होकर हम आनन्द-विभोर हो उठते हैं। सभी बन्धनों से मुक्त होकर स्वच्छन्दता के साथ वहाँ आनन्दानुभूति प्राप्त करते हैं।

कलाकृति के आस्वादन में भी, शिलर का मत है, यही क्रीड़ा-भावना काम करती है। जबकि वास्तविक रूप में कल्पना या प्रत्यक्षीकरण के द्वारा कलानिष्ठ सादृश्य-विधान सम्भव होता है। तब उस सादृश्य वस्तु में, काल्पनिक वस्तु में हम असंदिग्ध होकर, उसे यथार्थ समझकर, रस का आस्वादन करते हैं। कला-मूलक वस्तु लौकिक एवं यथार्थ होते हुए भी, निरूद्देश्यता-मूलक

आनन्द के कारण, अलौकिक एवं काल्पनिक हो जाती है। सहृदय भावक कलागत सौन्दर्यानुभूति द्वारा जीवन के सत्य एवं शिव का किस प्रकार साक्षात्कार कर लेता है – यह एक गंभीर प्रश्न है। शिलर ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा द्वारा इस प्रश्न का सम्यक् समाधान किया है। अनके विवेचन का निस्कर्ष है कि सौन्दर्य हमारे जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति है।

फेकवर ने रूपाकृति के सिद्धांत को हीन बताते हुए मनोवैज्ञानिक आधार पर भाव–साहचर्य के सिद्धांत को प्रचलित किया। इनका कथन है कि सौन्दर्य की कोई निश्चित सरल रेखा अथवा प्रकृत रूप नहीं होता है। आयताकार, वर्गाकार आदि ज्यामितिक चित्रों में सौन्दर्य का कारण उनका बाह्य रूप नहीं, बल्कि दृष्टा की आन्तरिक मनस्तुष्टि है। किसी वस्तु की बाह्य रेखाकृति उसकी आन्तरिक रेखाकृति की अपेक्षा कम सुन्दर होती है। बाह्य रूप में विकर्षण, तिरस्करण एवं विलगाव की भी प्रवृत्ति रहती है। इसके विपरीत अभ्यन्तर रूप में आकर्षण, ग्रहणशीलता और सम्मिलन की भावना रहती है। मुलायम गद्‌दे अपने बाहरी रूप के कारण नहीं बल्कि बैठने वाले को आमन्त्रित करने के कारण सुन्दर प्रतीत होते हैं। इसलिए सुन्दर होते हैं कि बैठने वाले को वहाँ सुरक्षा की अनुभूति होती है। व्यक्ति के अपने भाव–साहचर्य के कारण ही कोई वस्तु सुन्दर या असुन्दर प्रतीत होती है। इस सिद्धांत को विस्तृत करते हुए इन्होंने प्रकृति के विभिन्न रंगों की भी भाव–परक व्याख्या की है। इन्होंने ताल, नाले और हरे रंग को क्रमश. विपत्ति, शान्ति एवं उर्वरा शक्ति का प्रतीक माना है। पीला रंग रक्तहीनता का, इसलिए उदासीनता का द्योतक है।

सौन्दर्य–विवेचन में इनका दूसरा सिद्धांत 'मितव्ययिता' का है। जिस वस्तु में तनिक भी फालतूपन नहीं होगा, वह वास्तव में सुन्दर होगी। कम से

कम सामग्री में अधिक से अधिक भाव या रूप का सृजन ही कला है। सुन्दरता का निवास मितव्ययिता में है। किसी सुन्दर वस्तु को देखकर इसलिए प्रसन्नता होती है कि हमारा मन अल्पतम श्रम द्वारा उसके निहित भाव को शीघ्र ही समझ लेता है। काव्य में प्रयुक्त–उपमा, रूपक आदि अलंकार भाव को तत्काल हृदयंगम कराने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। कम से कम प्रयास में भाव का प्रत्यक्षीकरण हो जाय, इसी काव्यगत बिम्बों की सफलता है। मितव्ययिता द्वारा श्रम–लाघव की प्राप्ति होती है। प्लेटो ने अंश एवं पूर्ण की सामंजस्यता का उल्लेख करते हुए कहा है कि कोई अंश तभी तक पूर्ण- अंग कहा जायेगा, जब तक वह सार्थक एवं अनिवार्य हो। कोई निरर्थक अंश पूर्ण का अंग कभी नहीं कहला सकता।

सौन्दर्य शास्त्र के प्रणेताओं में हार्टमैन का नाम भी एक विशिष्ट स्थान रखता है। इन्होंने अपने 'एस्थटिक' में सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार की है – सौन्दर्य प्रेम का प्राण है। यह अपना आधार और उद्‌देश्य दोनों आत्म में प्राप्त कर लेता है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि सौन्दर्य क्षेत्र में प्रेम का प्रवेश हो जाता है। लेकिन इस प्रेम का लक्ष्य आत्मा है, यानि, घुमाफिरा कर यह परिभाषा भी हीगले के आत्म तक हमें पहुँचा देती है। हीगेल ने सौन्दर्य की पहली परिभाषा बहुत कुछ इसी प्रकार की थी। हार्टमैन ने रूपगत सौन्दर्य का गम्भीर विवेचन करते हुए उसके छः भेदों का निदर्शन किया है –

(क) <u>अचेतन रूपगत सौन्दर्य</u> :- इसमें इन्द्रियजनित आनन्द की प्राप्ति होती है।

(ख) गणितमूलक एवं गतिमूलक रूप।

(ग) सोद्देश्य आनन्द देने वाला निष्क्रियात्मक रूप।

(घ) वह रूप जो जीवन का अविच्छिन्न अंग हो।

(ङ) जाति-विशेष में पाये जाने वाले किसी प्राणी का रूप।

(च) वैयक्तिक विशिष्टिता का अभिव्यंजना का रूप।

रूपगत सौन्दर्य का यह अन्तिम भेद कलागत सौन्दर्य में ही परिलक्षित होता है। हार्टमैन के अतिरिक्त शेस्लर, सोलजर, शसनक्रांज आदि जर्मन विचारकों ने कलागत सौन्दर्य पर अपने विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं।

सोन्दर्य-शास्त्र के क्षेत्र में 19वी शताब्दी में जर्मनी के विचारकों में कैसी दुंदुभी बजती रही, यह उपर्युक्त विवचेन से स्पष्ट हो जाता है। ब्रिटेन एवं फ्रांस के कुछ विचारकों ने आगे चलकर इस शास्त्र की समीक्षा को कुछ और विस्तृत किया। रस्किन, डार्विन, स्पेन्सर, विलियम-मॉरिस, टर्नर, पेन्टर. कॉलरिज, वर्डसवर्थ आदि विचारक ब्रिटेन में हुए और रेसीन, कार्लील, मोलिए आदि फ्रांस में। रूस में टॉलस्टाय ने कला का विस्तृत विवेचन किया।

सौन्दर्य के अधिष्ठान

विषयगत या विषयीगत :-

एक को अपना एकपन अखरने लगा, तो लीला के लिए स्वयं को उसने दो भागों में बाँट लिया। सत्य दो हैं या एक? हम कहेंगे दोनों। क्योंकि, दो में एक समाया रहता है और एक, अनेक सुरों में बजता है। विषय और विषयी दोनों।

दोनों में एक ही पानी बह रहा है। कभी इसका पानी उसमें, कभी उसका पानी इसमें, कभी दोनों का दोनों में। अपनी इन्द्रियों के जरिये हम जो कुछ देखते हैं, वह वस्तु जगत है, और अपने मन के अन्दर हम जो कुछ सोंचते हैं अनुभव करते हैं और इच्छा करते हैं, वह भाव जगत है यानि मेरा मन विषयी है और वस्तु विषय और बाहर ये दो जगत कहने के लिए, हुए। प्रश्न है– सौन्दर्य विषयगत है या विषयीगत ? वह मुझमें, बाहर वस्तु में है या मेरे भीतर भाव में है। शुक्ल जी इस प्रकार की चर्चा को गड़बड़झाले के सिवा कुछ नहीं समझते हैं। योरोपीय वालों के लिए यह एक बड़ी ऊँची उड़ान है या दूरी की कौड़ी समझी गई है। "जैसे वीर कर्म से पृथक, शुक्ल जी कथन है, ''वीरत्व कोई पदार्थ नहीं। ------ भीतर–बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है वही बाहर है।"[1]

कॉलरिज ने 'वाइग्राफिया लिटरारिया' में विषय और विषयी को एक ही प्रक्रिया के दो रूप माने हैं। नाम के लिए भले ही दोनों दो हैं, लेकिन तत्वतः ये एक हैं। जानना एक सक्रियता हे, एक सृजन–व्यापार है। मन जब अपने जानने की क्रिया में हो, तो विषय–विषयी का भेद मिट जाता है। मन विषय को जानता है, और विषय फिर मन का अंग बनकर उसमें समा जाता है। तो मन, अपने आपको ही, मन को जानता है। जानना–कॉलरिज का मत है अपने आप में एक गतिशील क्रिया है।

विषय या विषयी, चेतन या जड़ यह कोई सत्य नहीं। सत्य है, विषयी का, विषयी में अन्तर्व्यापन जड़ और चेतन का परस्पर समागम। एक अनवरत सक्रिय व्यापार ही सत्य है। कॉलरिज के उक्त मत का वैज्ञानिक प्रतिपादन ह्वाइटेड के ग्रन्थों में देखा जा सकता है। ह्वाइटेड की मान्यता है कि प्रकृति हमारे मन के भीतर और बाहर दोनों ओर प्रवाहित होती है। मन से बाहर बहते समय प्रकृति विषयी या दृष्टा द्वारा परिवर्तित एवं परिष्कृत भी होती चलती है। जैसे प्रकृति का यह विभाजन आसमान एवं पदार्थ भ्रान्त धारणा पर आधारित है,

---

1. कविता क्या है? आचार्य शुक्ल

उसी प्रकार विषयगत एवं विषयीगत विभाजन भी भ्रान्तिमूलक है। ज्ञान एवं कर्म ये दोनों दो नहीं, बल्कि पहला दूसरे का दूसरा पहलू मात्र है।

सैद्धांतिक दृष्टि से विषय और विषयी का, ज्ञेय और ज्ञाता का अभेद सिद्ध किया जा सकता है। लेकिन व्यवहार दृष्टि में दोनों के भेद का अनुभव होता है। समदर्शी पण्डित ब्राह्मण एवं चाण्डाल में, गो एवं श्वान में भले ही भेद न माने, परन्तु यथार्थ जगत में बिना भेद माने काम नहीं चलता। उच्च–नीच, छोटा–बड़ा पापी–धर्मात्मा, स्त्री–पुरुष आदि का भेद मानना ही पड़ता है।

शंकराचार्य कहेंगे कि द्वैत का यह आभास अविद्या के कारण हैं, माया जनित है। ऐसा कहकर भी उन्होंने पारमार्थिक सत्ता के अतिरिक्त व्यवहारिक सत्ता भी स्वीकार की है।

दर्शक के मन में पड़ी हुई छापों के बीच जहाँ समानता पायी जाये, वहाँ उसे हम विषयगत कहेंगे और जहाँ रूचि या वैयक्तिकता के कारण भिन्नता पायी जाये, वहाँ उसे विषयीगत कहेंगे। अर्थात् वस्तु का बाहरी समानता को वस्तुपरक गुण एवं आन्तरिक विभिन्नता को आत्मपरक कहेंगे।

मार्क्सवादी विचारक कॉडवेल के मतानुसार सौन्दर्य सार्वभौमिक तत्व नहीं, बल्कि एक विशिष्ट सामाजिक उत्पादन है। जिस प्रकार मौसम में पैदा होने वाली गर्मी का अनुभव होना एक घटना है, यह वस्तुपरक है इसमें नवीनता है, यह हमारे खास उपयोग के लिए है। सौन्दर्य भी गर्मी की तरह, सामाजिक तत्वों द्वारा निर्धारित विषय और विषयीगत तत्वों से संघटित, उनसे उत्पन्न एक नवीन, विशिष्ट यथार्थ शक्ति है।

हम प्रायः इस तरह बोलते हैं कि वह चीज सुन्दर है, मैं सुखी हूँ ---- दुःखी हूँ ---। इसका मतलब यह हुआ कि सुन्दरता किसी चीज के अन्दर है और सुख–दुःख मेरे अन्दर है। विचार करके देखा जाये तो

सुख–दुःख की अनुभूति का कारण उस व्यक्ति के अहं और उसके चतुर्दिक की अनुभूति का पारस्परिक संघर्षण है। बाहर का वातावरण व्यक्ति के अहं के साथ अन्तर्भेदन करता है। मान लीजिए, एक सप्ताह के बीच किसी व्यक्ति को कई बार सुख–दुःख का झोंका सहना पड़ता है। वह व्यक्ति देखता है कि एक सप्ताह के बीच प्रकृति में काफी परिवर्तन हुआ – कभी दिन कभी रात, कभी आँधी, कभी पानी, कभी धूप इत्यादि ----- लेकिन उसके मन का दर्द ज्यों का त्यों बना रहा। तब वह व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सुख–दुःख व्यक्ति के अन्दर की चीज है और जाड़ा गर्मी बाहर की, वस्तु अन्दर की चीज है। गर्मी को किसी वस्तु से निकलते हुए भी हम देखते हैं। गरम चीज से दूर हटते जाइये तो गर्मी घटती जायेगी। उस चीज से बिल्कुल अलग हो जाइये तो गर्मी का पता नहीं चलेगा। गर्मी बाहर की वस्तु है, उसी प्रकार सुन्दर चीज के निकट रहने से सुन्दरता का। सुन्दर वस्तु, आँखों से ओझल हो जाती है, तो सुन्दरता भी गायब हो जाती है। तो यह सिद्ध हुआ कि गर्मी वस्तु में एवं सुन्दरता समाज में रहती है। सामाजिक वातावरण में अदल–बदल होने से सुन्दरता के मान–दण्ड में परिवर्तन होता रहता है। कॉडवेल का निष्कर्ष यह है कि सौन्दर्य एक सामाजिक उत्पादन है। सौन्दर्य भावना सामाजिक परिवेश से व्यक्ति को उपलब्ध होती है। समाज सौन्दर्य का निर्माता है, नियंता है। सौन्दर्य सामाजिक तत्व है, क्योकि यह अलग समाज में रहता है।

उपर्युक्त कथन को और अच्छी तरह से समझने के लिए उसे अग्रलिखित चार अंशों में रखा जा सकता है –

(क) गर्मी बाहर पदार्थ से और सुन्दरता सामाजिक प्रक्रिया से द्रवीभूत होने वाली चीज है, इसलिए यह विषयगत है।

(ख) गर्म पदार्थ या सुन्दर वस्तु से दूर हटने पर गर्मी या सुन्दरता का बोध घटता जाता है, निकट आने पर वह बढ़ता जाता है। इसलिए सुन्दरता गर्मी की तरह विषयगत है।

(ग) सुख मुझमें है, लेकिन सुन्दरता मुझसे अलग समाज में है। इसलिए सुखानुभूति विषयीगत एवं सुन्दरता विषयगत है।

(घ) सुन्दरता सामाजिक उत्पादन है। इसका मूल्य, अन्य सामाजिक मूल्यों की तरह परिर्वतनशील है अतः सौन्दर्य विषयगत है।

कॉडवेल के इस विचार से मैं कुछ अंशो में असहमत हूँ। उन्होंने सुन्दरता की उपमा गर्मी देकर फिर उसके गुण एवं लक्षण को गर्मी पर घटा दिया। दो वस्तुओं में थोड़ा सा सादृश्य दिखाकर तुरन्त मनचाहा निष्कर्ष खींच लेना ठीक नहीं। ऐसे तो कोई सुन्दरता की उपमा इन्द्रधनुष से देकर उसे अवास्तविक कह दे और दूसरा चुंबक से देकर उसे खींचने वाला बतावे। सुन्दरता कोई बिजली का चूल्हा नहीं है जो नजदीक से सेंकने पर गर्म, दूर से ठंडा मालुम हो। सुन्दर वस्तु तो आँखों से दूर हटने पर मन में और गहरी धंसती जाती है। किसी वस्तु के ध्यान की गहरी तन्मयता उसके प्रतिरूप को सामने खड़ा कर देता है। सुन्दरता प्रत्यक्षीकरण और कल्पना दोनों में निवास करती है। कल्पना के रूप गढ़ने की बिम्ब–विधान की अद्‌भुत शक्ति है। आहार, निद्रा, भय, मेथुन की तरह सौन्दर्यनुभूति जन्मजात प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति में भले ही सोती रहे, मरती कभी नहीं। सौन्दर्यानुभूति वस्तु एवं भाव का, विषय और विषयी का अन्तर्मिलन है। कॉडवेल ने सौन्दर्य को व्यक्ति एवं वातावरण के संघर्ष से उत्पन्न तत्व कहा है। पता नहीं फिर उसे व्यक्ति से अलग क्यों बताया? बात है कि पार्टी–स्पिरिट में आ जाने पर व्यक्ति पार्टी को पकड़ता है, स्पिरिट को छोड़ता है।

सौन्दर्य व्यक्ति और समाज दोनों का उत्पादन है। समाज उपकरण प्रदान करता है, व्यक्ति अपनी कल्पना से उसमें रूप रंग भरकर नवीन सृष्टि करता है।

काडवेल के विपरीत क्रोचे का मत है कि सुन्दर कोई पदार्थगत तत्व नहीं, यह वस्तुओं में नहीं रहता, बल्कि व्यक्ति के क्रिया–व्यापार में,

आत्म शक्ति में वर्तमान रहता है। जीव–वैज्ञानिकों की दृष्टि में सौन्दर्य का कोई महत्व नहीं। वे किसी पक्षी या पुष्प का सारा हुलिया बता सकता है लेकिन यह नहीं कह सकते कि सुन्दर क्या है? बिना कल्पना की क्रियाशीलता के प्रकृति का कोई भाग सुन्दर नहीं दीख सकता। क्रोचे सौन्दर्य को व्यक्ति के मन में उत्पन्न मानता है, क्योंकि वस्तु स्वयं में सुन्दर नहीं, वह व्यक्ति की कल्पना या भावना के कारण सुन्दर होती है। क्रोचे सौन्दर्य को शत–प्रतिशत विषयीगत मानते हैं, विषयगत बिल्कुल नहीं।

सांतायना का कथन है– वह सौन्दर्य है, और जो मुझमें है, वह मेरा प्रक्षिप्त मूर्त आनन्द है। विषय सौन्दर्य का बाह्य रूप है और विषयी का मन उसका अन्त. स्वरूप। विषय और विषयी के संयोग से सौन्दर्य का जन्म होता है।

सापेक्ष्यवाद के आधार पर विषय और विषय का विचार करने से इन दोनों की पृथक् सत्ता नहीं रह पाती, क्योकि विषय की कल्पना बिना विषयी के हो ही नहीं सकती, और विषयी सदैव विषय के साथ ही रहेगा। दोनों की सत्ता एक दूसरे की अपेक्षा करती है। आइन्स्टीन ने देश ओर काल को 'देशकाल' या 'दिक्काल कहा है। क्योकि इनकी सत्ता का पृथक् निरपेक्ष ज्ञान असम्भव है। इस प्रकार हम विषय एवं विषयी के द्वित्व को हटाकर उन्हे 'विषयी–विषय' ही कहेंगे। यदि सुन्दरता को वस्तु के अन्दर का कोई गुण विशेष मान लिया जाये तो उस गुण का असर हर दृष्टा पर होना चाहिए। बात यह है कि सुन्दरता विषयी की सहृदयता, कल्पनाशक्ति, भावसाहचार्य, मनःस्थिति एवं प्रतिभा पर बहुत अंशों पर निर्भर करती है। एक से एक रूपवान राजा स्वयंवर में पधारे थे, फिर इन्दुमती ने अज को ही माला क्यों पहनायी? इन्दुमती की मन.कल्पित भावना राजा अज पर प्रक्षिप्त हुई।

जिस सौन्दर्य ने दृष्टा के मानस पर आनंदभूति उत्पन्न नहीं की, वह उसके लिए सुन्दर नहीं है। सौन्दर्यानुभूति के लिए आलम्बन और आश्रय, वस्तु एवं भाव दोनों की सत्ता अपेक्षित है। विषय और विषयी के अन्तर्मिलन से सौन्दर्य का

भाव उद्‌भूत होता है। निष्कर्ष यह निकला कि सौन्दर्य न केवल विषयगत और न केवल विषयीगत, वह विषय–विषयीगत है। विषयी अपने अहं को अपनी सांसारिक उलझनों को भूलकर दृश्य (सुन्दर वस्तु) के साथ जितना ही तदाकार होता है, उतना ही वह सुन्दरता का अनुभव करता है। शुक्ल जी का मत है कि जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणित जितनी अधिक होगी, उतनी वस्तु हमारे लिए सुन्दर होगी, प्रो0 दुकासे ने कहा है कि सौन्दर्य वस्तु का गुण है और इसकी सार्थकता विषयी के हृदय में आनन्द उत्पन्न करने में है। दुकासे ने यह भी कहा है कि जैसे कोई आर्सेनिक खाए या नहीं, उसकी गरलता उससे दूर नहीं होती। उसी प्रकार सुन्दर वस्तु को देखे या नहीं, उसकी सुन्दरता उसमें बनी रहती है। लेकिन उनका यह तर्क भी सर्वांशत सत्य नहीं है, क्योकि कोई भी वस्तु अपने आप में सुन्दर न है न कुरूप, वह केवल वस्तु है। सुन्दर या कुरूप तो वह विषयी के सम्पर्क में आने से होती है। सुन्दरता की व्याख्या विषय ओर विषयी के समवेत सम्पर्क न विषयीगत, यह विषय–विषयीगत है।

सौन्दर्य–प्रतीति का आधार प्रियता अथवा प्यार

प्रेमी इस बात में कोई भी सन्देह नहीं रखता कि प्रेमास्पद चाहे वह फूल हो या बालिका हो अथवा ईश्वर, उसके प्यार के योग्य है। उसका ध्यान अपनी जड़ीभूत मनोदशा की ओर केन्द्रित नहीं होता, अपितु प्रेमास्पद के उन गुणों में केन्द्रित होता है, जिनसें उनमें वह मानसिक अवस्था उत्पन्न हुई।

अन्तः करणीय भूख अथवा आकांक्षा की तृप्ति

सेंट टामस अविवनाज ने कहा है कि " सौन्दर्य वह है जो दृष्टिगोचर होने पर दृष्टा को प्रसन्न करे। किन्तु यह कथन तात्विक दृष्टि से संगत नहीं है। विचारणीय यह है कि किस प्रक्रिया ने यह आनन्द उत्पन्न किया; आँख की रेटिना पर पड़ने वाली एक क्यों कर मानस में आनन्द की भावना में बदल गई? निश्चय ही आँख तो प्रसन्न होती नहीं, प्रसन्न तो मनुष्य का अन्तःकरण

ही हो सकता है। केवल एक ही वस्तु आनन्द उत्पन्न कर सकती है या बढ़ा सकती है– वह है किसी आकांक्षा की पूर्ति। उस वस्तु को देखकर प्रसन्न होने वाला व्यक्ति कोई चीज चाहता था अर्थात् उसको एक 'भूख' थी और वह भूख तृप्त हुई है।

अतएव आनन्द किसी आकांक्षा की तृप्ति का परिणाम है। मनुष्य के मन के भीतर कुछ आकांक्षाएँ अतृप्त रूप में लिपटी हुई है जिससे वहाँ शून्यरिक्ता उत्पन्न हो गयी। अतएव जो वस्तु उसके भीतर की खाली जगह को सही–सही भर देगी, जो वहाँ सटीक बैठ जायगी, वही उस व्यक्ति के लिए सच्चा सौन्दर्य है"[1]

आकांक्षाओं का वास

आकांक्षाएं आकस्मिक नहीं होती। वे अभ्यास से प्रसूत अथवा प्रभावित होती हैं। प्रकाश से विहीन व्यक्ति प्रकाश के लिए किसी भूख का अनुभव नहीं कर सकता, तथा इसी कारण से उसे प्रकाश से किसी आनन्द की उपलब्धि नहीं होगी। जिस मनुष्य ने कभी पादपों को नहीं देखा, वर्षा के बाद पृथ्वी की गंध को कभी नहीं सूँघा, कोयल की काकली अथवा सरिताओं का मर्मर संगीत कभी नहीं सुना। वह उन वस्तुओं की आकांक्षा कभी नहीं कर सकता। उसकी आकांक्षा उसके अनुभव की प्रसूति है। अर्थात् उसकी सौन्दर्य भावना उन वस्तुओं की स्मृति पर आधारित है जिन्हें उसने देखा, सुना, सूँघा, स्पर्श किया या आस्वादित किया था। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति का आधार अभ्यास है, जिसे भारतीय आचार्यो की शब्दावली में 'वासनात्मक' कहा जा सकता है।

'रम्याणि वीक्ष्यनिशक्य मधुराश्च शब्दान्' वाले प्रसिद्ध श्लोक में कालिदास ने रमणीयता की रसानुभूति के वासनात्मक आधार ही की विज्ञप्ति की है। किन्तु, यह सम्यास किसी किसी निश्चित परिवेश में सम्पन्न होता है, किसी निश्चित जलवायु में अर्जित होता है। इसी कारण, मनुष्य की प्रियताएँ प्रायः भिन्न–

---

1. इरिन–न्यूटन : दी मीनिंग ऑफ ब्यूटी [1950], पृ0 22

भिन्न होती हैं, जिससे सौन्दर्य के प्रतिमान भी देशकाल सापेक्ष बनजाता है। अनुभव के सामान्य, सर्वनिष्ठ संचित कोष के अभाव में सौन्दर्य का वैसा परिनिष्ठित मानदण्ड नहीं निरूपित किया जा सकता जिसे सभी जातियाँ सभी कालों में समान भाव से स्वीकार कर सकें।

साहित्य में सौन्दर्य का महत्व

काव्य में सौन्दर्य – सृष्टि में सर्वत्र सौन्दर्य की सत्ता है। इसका कर्त्ता है– ईश्वर। काव्य का सौन्दर्य मानवीय दृष्टि है। काव्य में सौन्दर्य की सत्ता एकान्त भिन्न कोई वस्तु नहीं है। प्रकृति और मानव के बाह्यान्तर सौन्दर्य से प्रेरित काव्य--सृजन होता है। कॉडवेल का विचार है कि कविता तो मनुष्य के मन का एक प्राथमिक सौन्दर्य–व्यापार है।

यह प्रश्न विचारणीय है कि काव्य में सौन्दर्य से क्या अभिप्राय है? आचार्य शुक्ल ने इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है कि– काव्य में सुन्दर और कुरूप ये दो ही पक्ष हैं। अन्य शब्द जैसे– पाप–पुण्य, शुभ–अशुभ, मंगल–अमगंल और उपयोगी–अनुपयोगी इत्यादि काव्य क्षेत्र के बाहर हैं।"[1]

उनके अनुसार कवि की दृष्टि तो "सौन्दर्य की ओर जाती है, चाहे वह जहाँ हो– वस्तुओं के रूप–रंग में अथवा मनुष्यों के मन, वचन, कर्म में।[2] और "कविता केवल वस्तुओं के रूप–रंग के सौन्दर्य की छटा नहीं दिखाती प्रत्युत: कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक दृश्य सामने रखती है।" कवि सौन्दर्य की सृष्टि एवं खोज करता है। एडगर एलन पो ने कविता को सौन्दर्य की तथात्मक सृष्टि कहा है।

---

1. चिन्तामणि, भाग – 1 पृ0 167
2. चिन्तामणि, भाग – 1 पृ0 67

भारतीय विचारकों में श्री अरविन्द ने अपने ग्रन्थ 'दि फ्यूचर पोयट्री' कला, सौन्दर्य और आनन्द के विषय में उदारतापूर्वक विचार किया है। उनकी दृष्टि में कला सौन्दर्य की खोज और अभिव्यक्ति है। कला का उद्देश्य सौन्दर्य को साकार करना एवं आनन्द प्रदान करना है। कलाकार के लिए सौन्दर्य ओर आनन्द का चन्द्रमा सत्य के सूर्य से भी महान है। सौन्दर्य और आनन्द की अराधना का दिन हमारी मुक्ति का दिवस होगा। क्योंकि इसके बिना काव्य और कला में माधुर्य और सौन्दर्य नहीं आ सकता है। उनके विचार से कवि सुन्दर भाषा का निर्माता नहीं, कल्पना पुत्र ही नहीं, वह सर्वाधिक सौन्दर्य एवं आनन्द का सृष्टा और वक्ता भी है।

काव्य में सौन्दर्य का अध्ययन दो भागों में विभक्त करके किया जा सकता है – आनुभूतिक एवं अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य। प्रकृति एवं जीवन के दर्शन से कवि के हृदय में सौन्दर्य की अनुभूति को जगाता है। काव्य और अन्य कलाओं में आनुभूतिक सौन्दर्य महत्वहीन है और न अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य उपेक्षनीय हे। अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य की सापेक्षिकता के अनुसार ही पाठक के मन में सौन्दर्य अनुभूति जगाती है। भावों की कुशल अभिव्यक्ति ही तो कला है। काव्य कला में भाव–पक्ष एवं कला–पक्ष के समुचित सामंजस्य की बात सभी विचारकों ने स्वीकार की है। प्रकारान्तर से पाश्चात्य समालोचना में भी अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष विवेचन में इसी सामंजस्य की चर्चा की है।

कालीदास और तुलसी ने वाणी और अर्थ की अभिन्नता की स्वीकृति में इसी सामंजस्य की ओर संकेत किया है। कला–सृष्टि का विवेचन करते हुए रामनाथ सुमन ने लिखा है कि कला–सृष्टि में अन्तर का आदृश्य आवेग या भाव मूल है, यथार्थ के साथ उस भाव का सम्बन्ध और रूप–ग्रहण शरीर है, आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य प्राण हैं, रस आत्मा है और लक्ष्य या फल है, आनन्द।[1]

---

1. कला और साहित्य में यथार्थ और कल्पना निबंध – पृ0 55

कला में सौन्दर्य की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए उचित ही कहा गया है कि "सुन्दरता कला के लिए अनिवार्य है। रस में स्थायी भाव की तरह वल कला में आदि से अन्त तक विद्यमान है।"[1]

काव्य में सौन्दर्य का सम्बन्ध एक ओर उस व्यक्त मूर्ति से है, जिसे हम सुन्दर कहते हैं और जिसमें भोग, रूप, अभिव्यक्ति आदि गुण रहते हैं, दूसरी इसका सम्बन्ध 'रस' अथवा आनन्द से है जो मानवात्मा अथवा हृदय की एक प्रकृष्ट अनुभूति है।[2]

सौन्दर्य में मन को रमाने की शक्ति होती है। जीवन के सत्य को काव्य में सरस बनाने का दायित्व सौन्दर्य का ही है। सौन्दर्य से समन्वित सत्य के शिव होने में कोई सन्देह नहीं है।

कवि का सौन्दर्य बोध अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सजग एवं तीव्र होता है। सृष्टि के प्रत्यक्ष सौन्दर्य में जिसका मन नहीं रमता, उसे काव्य सृजन और काव्यानुशीलन में भी आनन्द नहीं आ सकता। काव्य को सर्वश्रेष्ठ कला माना गया है।

काव्य इसी अर्थ में कला है कि उसकी सिद्धि हेतु साधना की अपेक्षा है और उसका आधार सौन्दर्य है, इस अर्थ में नहीं कि वह तमाशे की वस्तु है और उद्देश्य कोरा मनोरंजन है। कहा जा सकता है कि काव्य सौन्दर्य से अभिभूत हुए उस व्यक्ति की शाब्दिक वा योजनाबद्ध कुशल अभिव्यक्ति है जो अपने आन्तरिक सौन्दर्य से उसका यथोचित सामंजस्य करने में समर्थ होता है। श्री अरविन्द ने कवि के अन्दर दो व्यक्तित्व माने हैं – सामान्य मनुष्य का और असामान्य दृष्टा का। दूसरे रूप में वह आनन्द और सौन्दर्य के स्रोतो के निरन्तर सम्पर्क में रहता है और अनुभूतियों का आनन्द रूप में अभिव्यक्ति देता है

---

1. राम कुमार वर्मा : कला और साहित्य में सुन्दर और असुन्दर पृ0 14
2. साहित्य का विश्लेषण : डॉ0 वासुदेव नन्दन प्रसाद विश्वनाथ प्रसाद, पृ0 67

अभिव्यक्तिक सौन्दर्य पर निर्भरता भी उसके लिए आवश्यक है। काव्य में व्यक्त सौन्दर्य मार्मिक अधिक होता है। काव्य में अर्थ और अभिव्यक्ति के सामंजस्य की ओर संकेत करते हुए हरद्वारी लाल शर्मा ने सुन्दर काव्य के विषय में ठीक ही लिखा है – "किसी भी प्रकार के काव्य को जहाँ शब्दों के चयन में ओज, माधुर्य आदि अनुभूतियों को जगाने वाली ध्वनि हो, वाक्यों की गति में संगीत जैसा लय का उत्थान–पतन हो, विभिन्न अवयवों में परस्पर समन्वय और मेल हो तथा आत्मा को आलोक और अह्लाद से आप्लावित कर देने वाले किसी अर्थ का उद्घाटन हो हम 'सुन्दर' कह सकते हैं।"[1]

काव्य–सौन्दर्य दर्शन में अनुभूतिक और अभिव्यक्तिक सौन्दर्य की बात ऊपर कही जा चुकी है। डॉ0 नगेन्द्र ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि काव्य में न तो अनुभूति उपेक्षनीय है और न अभिव्यक्ति अवहेलनीय। उनके शब्दों में "अनुभूति और अभिव्यक्ति के अभिन्न सम्बन्ध की स्वीकृति ही अभिव्यक्ति की अनिवार्यता को सिद्ध कर देती है और अभिव्यंजना के सौन्दर्य को मैं कविता को अनिवार्य तत्व मानता हूँ और भाव के सौन्दर्य से दीप्त शब्द–अर्थ का सौन्दर्य ही कविता है।"[2]

आनुभूतिक सौन्दर्य में भाव एवं कल्पना का विवेचन आता है और अभिव्यक्तिक में अलंकार, बिम्ब–प्रतीक, छन्द एवं भाषागत सौन्दर्य का। काव्य–सृजन और काव्य–कृति की विवेचना तभी पूर्ण है जब कवि के प्रेरणा स्रोत मानव और प्रकृति का भी विवेचन किया जाये। मानवीय सौन्दर्य के भी दो रूप हैं – पुरुष एवं नारी सौन्दर्य बाह्य–सौन्दर्य के विवेचन में जहाँ शारीरिक गठन वर्ण एवं मुद्राओं का सौन्दर्य आयेगा, वहाँ आन्तरिक सौन्दर्य में उन आन्तरिक गुणों की विवेचना होगी जो जीवन को उदात्त एवं उच्च बनाते हैं। पुरुष और नारी में इन गुणों की स्थित भिन्न–भिन्न है। हडसन ने लिखा है कि

---

1. आलोचना (अक्टूबर 1953) में प्रकाशित लेख सौन्दर्य–तत्व एवं आलोचना के मानदण्डों का विकास – पृ0 16

2. आस्था के चरण – पृ0 88

कविता और अनुभूतियों के माध्यम से जीवन की व्याख्या है। छायावादी काव्य में सौन्दर्य का समग्र विश्लेषण एवं दर्शन इसी के द्वारा सम्भव है और सौन्दर्य शास्त्र के आलोक में यही पद्धति सर्वाधिक उपयुक्त है।

श्रृंगार एवं सौन्दर्य

श्रृंगार में सौन्दर्य का स्वरूप – परवर्ती युगों में हमारे सौन्दर्य की आध्यात्मिक धारणा में परिवर्तन हुआ और भौतिक धरातल पर उसके वर्णन एवं आस्वादन में आनन्द की उपलब्धि होने लगी। क्लासिकल युग में गीर्वाणगिरा के रचयिताओं ने सौन्दर्य के इन्द्रिय-ग्राह्य पटल का नितान्त मृदुल एवं सूक्ष्म व्याख्यान किया। "ओपनिशद ऋषियों तथा क्लासिकल कवियों दोनों की सौन्दर्य सृष्टियां निश्चय ही मधुर हैं, लेकिन इनके माधुर्य में वही विभेद किया जाना चाहिए जो मधु एवं सर्करा के माधुर्य में होता है।"[1] तथापि यह स्मरण रखना आवश्यक है, भारतीय सौन्दर्य-दृष्टि कभी भी दिव्यता एवं अलोकिकता के संस्पर्श से विहीन नहीं हुयी।

श्रृंगार सुलभ सौन्दर्य :– श्रृंगार में जिस सौन्दर्य का चित्रण सामान्यतः हुआ है वह मानव रूप का सौन्दर्य है। उसमें भी वह अधिकतया स्त्री-रूप का सौन्दर्य है। भारतीय चिन्तकों की मूलगत सौन्दर्य-भावना ने कवियों के रूप-वर्णन को अत्यधिक प्रभावित किया है। दो बातें इस सम्बन्ध में परिलक्ष्णीय हैं – पहली यह कि मानव-रूप के सौन्दर्य में दिव्यता एवं अलौकिकता का समावेश रहा है तथा दूसरी यह कि प्रकृतिगत सौन्दर्य ही इसका आदर्श रहा है। रूप सौन्दर्य के घटत तत्वों का नीचे निरूपण किया जा रहा है --

वीर्य-क्षोभ की क्षमता :–

भारतीय कवियों ने नारी रूप को जो स्वस्थ, मांसल आयाम दिये हैं, उसमें सूक्ष्म अग्राह्यता के साथ कामोद्दीपन की शक्ति का अद्भुत पाणिग्रहण

---

1. स्टडीज इन संस्कृत एस्थेटिक्स : पृ0 16

हुआ है। कुमार संभव में प्रसंग आया है कि भगवान शंकर की समाधि भंग होने पर पार्वती ने उनके कंठ में माला पहना दी और उसी समय कामदेव ने भी सम्मोहन नामक अचूक बाण धनुष पर चढ़ा लिया। जैसे चन्द्रमा के निकलने पर समुद्र में ज्वार आ जाता है, वैसे ही पार्वती को देखकर शील वृत्ति भी चंचल हो उठी, किन्तु उन्होंने तत्काल अपने इन्द्रिय क्षोभ को नियन्त्रित कर लिया और उस चित्त–विकार के कारणों की खोज हेतु सचेष्ट हो गये।

भरत के रस सिद्धांत के सबसे उद्‌भट् व्याख्याता अभिनव गुप्त ने कालिदास से प्रेरणा ग्रहण कर, शृंगार रस से चित्रित स्त्री–सौन्दर्य का परिपूर्णता के सम्यक उन्मूलन को अनिवार्य ठहराया – 'विषयसम्भारपूर्णताभिमान जैन रतिः उचिता।' संभार की पूर्णता हेतु अभिनव गुप्त 'वीर्य–क्षोभ' की क्षमता को ही चमत्कार धायक.. मानते हैं। साथ ही वे सहृदयता की कसौटी भी उसे मानते हैं कि रूप–दृष्टा में सौन्दर्य के संनिकर्ष से वीर्य–क्षोभ उत्पन्न हो जाये, अन्यथा वह जड़ तथा वीर्य विहीन ही होगा।

<u>यथोचित संश्लिष्ट संधि बन्ध</u> :– आचार्य क्षेमन्द्र ने काव्यगत सौन्दर्य के लिए 'औचित्य' को अपरिहार्य ठहराया है जिसके भीतर पाश्चात्यों के सामंजस्य, सममात्रत्व एवं समान तत्त्व सन्निविष्ट हो जाते हैं।

रूप वर्णन में भी कवियों ने इस औचित्य को सौन्दर्य की सृष्टि हेतु आवश्यक बतलाया है। रूप–गोस्वामी ने सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार की है –

अंग–प्रत्यंग संश्लिष्ट संधिबन्ध युक्त यथोचित सन्निवेश ही सौन्दर्य कहलाता है। इसी आदर्श की रक्षा के लिए नख–शिख प्रणाली का उद्‌भव एवं विकास हुआ। प्लाटिनस का कथन है कि यदि समग्र सुन्दर है, तो यह जान पड़ता है कि अवयवों को भी सुन्दर होना चाहिए। कुरूप वस्तुओं के समन्वय

से सौन्दर्य नहीं उत्पन्न हो सकता। नख–शिख प्रणाली सौन्दर्य की इस समग्रता हेतु आवश्यक है। वास्तव में प्राचीन कवियों का उद्देश्य सौन्दर्य को लोक–ग्राह्य एवं लोग–संवेद्य बनाना रहा है और यह कार्य केवल कल्पना के वायवीय ताने–बाने से सम्पन्न नहीं हो सकता था। स्थूलाधारों को छोड़ देने से 'सौन्दर्य की प्रेतात्मा निर्मित हो जाती जो मानवीय प्रकृति के नित्य–प्रति आस्वादन के लिए अत्यन्त दुर्लभ वस्तु हो गयी थी।

<u>लावण्य</u> :– मोतियों में छाया की अभ्यांतर तरलता के समान अंगों में चमकने वाली वस्तु 'लावण्य' कही गयी है। इसका संस्कृत हिन्दी कवियों ने बड़ी सूक्ष्मता एवं सजगता से वर्णन किया है।

<u>प्रतिक्षण भासमान नवलता</u> :– सौन्दर्य की एक प्रमुख विशेषता रही है उसकी प्रतिक्षण भासित होने वाली नवलता। इस तत्व की विज्ञप्ति पहले–पहल कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में की थी।

क्षणे–क्षणे नवता से तात्पर्य है –

रमणीयता वही है जो प्रतिक्षण नवता को ग्रहण करे, अनुक्षण किसी नवीन छटा–छवि का उन्मीलन तथा बार–बार दर्शक अथवा भावक को नये–नये ढंग से आकर्षित आवर्जित करे। रमणीयता की इस परिभाषा में सौन्दर्य का वही धर्म सूचित किया गया है जो वर्ण एवं आकार की सीमाओं का अतिक्रमण कर अपनी सूक्ष्मता एवं अग्राह्यता से प्रेक्षक को चमत्कृत करता रहता है।

<u>स्वयं पूर्णत्व एवं स्वनिर्भरत्व</u> :– सौन्दर्य की एक अन्य विशेषता होती है उसका स्वयं में स्वतः पूर्ण होना, अन्य किसी बाह्य उपकरण की पूर्ण अनापेक्षा। वल्कल वस्त्र धारण करने पर भी शकुन्तला दुष्यन्त को अधिक मनोज्ञ दिखाई पड़ रही है। जैसे सेवार से आवृत्त होने पर भी कमल सुन्दर दिखाई पड़ता है और चन्द्रमा में पड़ा कलंक भी उसकी शोभा बढ़ाता है।

प्रेम – विवेचन

सामान्य निरूपण:

अर्थ की व्यापकता :– प्रेम अत्यन्त अर्थगर्भित शब्द है। इसमें नाना प्रकार के अर्थ समाहित हैं। साधारण प्रियता व पसन्द लेकर किसी वस्तु की बारम्बार भोग तक अनके अर्थों का इससे ध्वनन हो सकता है। इसी प्रकार, मनुष्य के आचरण पर पड़ने वाले, कृपालुता से लेकर अदमनीय, आत्मोत्सर्ग तक, सैकड़ों प्रकार के प्रभाव भी इसमें ग्रहीत हैं। प्रेम धाराओं का एक बड़ा बण्डल है जो मानव आचरण के प्रत्येक पक्ष में उलझे हुए हैं।

आलम्बन का द्विधात्व :

प्रकृत प्रेम :– प्रेम में दो पक्ष अनिवार्यतः वर्तमान रहते हैं – एक प्रेम करने वाला दूसरा प्रेम किये जाने वाला। शास्त्रीय शब्दावली में कहें तो प्रथम पक्ष 'आश्रय' है द्वितीय 'आलम्बन'। आलम्बन की दो कोटियाँ हो सकती हैं – पहली प्रकृति के पदार्थ तथा पशु–पक्षी इत्यादि जो आश्रय की भाव–प्रवणता को या तो समझ नहीं सकते या यदि समझते हैं तो उसका उचित प्रत्युत्तर नहीं दे सकते, दूसरी मनुष्य जो आश्रय के समान बुद्धि एवं कल्पना से समन्वित प्राणी है तथा जो उसकी भावुकता का समुचित अभिशंसन कर सकते हैं एवं उसका समुचित प्रतिदान भी दे सकते हैं।

प्रेम की परिभाषा :– 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' में रूपगोस्वामी ने प्रेम की परिभाषा इस प्रकार की है –

"सम्यऽ·मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशषांकितः।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगधते।"

(पूर्व–विभाग, चतुर्थ लहरी)

जिससे हृदय अतिशय कोमल हो जाता है, जिससे अत्यन्त ममत्व

उत्पन्न होता है वही प्रगाढ़ भाव पण्डितों द्वारा 'प्रेम' कहलाता है। भरत मुनि के अनुसार – चित्त की द्रवावस्था ही प्रेम है। सत्त्वोद्रेक की अवस्था में जब मानव-मन प्रयोजन-निरपेक्ष होकर द्रवीभूत हो जायं और आलम्बन को अपनी ममता का दान देने लगे तब प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ, समझना चाहिए।

द्रवीभवन और तदाकार :– नैयायिकों की आपत्ति हैं कि चित्त तो निरअवयव है, अत उसमें अवयव-शैथिल्य क्यों आएगा क्योंकि यही द्रव (पिघलना) है। इस आपत्ति के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सावयव है, क्योंकि एक एक सत्व के अंश से एक एक इन्द्रियाँ उदय लेती हैं और इन ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से ही अन्त करण की उत्पत्ति कही जाती है। पुनश्च मृत बछड़े के नि:सार चर्म के अवलोकन के विक्रय या प्रभाव से मूर्खों द्वारा भी अल्प दूध वाली गायें दुह ली जाती हैं। इसका अर्थ यह हुआ है कि गाय उस चर्म के अवलोकन से द्रवित हो गयी तभी तो दूध देती है। अतएव चित्त या अन्त करण द्रवशील है।

प्रेम का प्रस्तुत विविक्षितार्थ :– मानव-सापेक्ष प्रेम की भी कई कोटियाँ होती हैं, यथा भाई-भाई का प्रेम, माता-पुत्र का प्रेम आदि। किन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेचनीय वह प्रेम है जो शृंगार का उपजीव्य है, जो उत्तम प्रकृति वाले युवक-युवती के युग्म को परस्पर द्रवीभूत कर रति-भाव के पीयूष-प्रवाह में सर्वात्मना निमज्जित कर देता है। जिस धर्म का आश्रय लेकर आध रस अर्थात शृंगार बनता है, उसे श्रेष्ठ विद्वान प्रेम कहते हैं।

प्रेम-विषयक कतिपय मत :– वैज्ञानिकों ने प्रेम के विषय में विभिन्न मत उपस्थित किये हैं। साइकालजी ऑफ दी इमोशंस' में यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य का प्रेम प्रजनन का साधारण शारीरिक मनोवेग नहीं है। अपितु वह अनेक मनोवृत्तियों का सम्मिश्रण है, जिसमें कोमलता, सहानुभूति तथा पितृत्व-मातृत्व की भावनायें अपेक्षाकृत अपरिष्कृत काम-संवेगो के साथ मिली होती

हैं। हेनरी डूमण्ड ने दी असेंट ऑफ मैन में प्रेम की जटिल प्रकृति का उल्लेख करते हुए काम वेग की अपेक्षा मातृत्व मनोवृत्ति को इसका आधार बताया है।

फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक राउक्स ने साइक्लाजी आफ दी इंस्टिंक्ट सेक्सुअल में एक नितान्त भिन्न मत व्यक्त किया है। उनका कथन है कि अपनी सहचारिणी के लिए मनुष्य का प्रेम पूर्णतया, ऐन्द्रिय विषय है जो जीव पिण्ड की शारीरिक आवश्यकताओं पर आधारित है और वासनात्मक आनन्द की एषणा से उसमें नई शक्ति का संचार होता है। इस मत के अनुसार प्रजनात्मक अवयवों में उत्पन्न संवेदन काम आवेग की जननी है किन्तु रूप, गंध, स्रोत तथा स्पर्श के संवेदनों में प्रेम का वास्तविक स्वरूप केन्द्रित होता है। इस प्रकार, केशों की सुगन्ध, रूप–सौन्दर्य, वाणी तथा चुम्बन विधि प्रेमी के चुनाव में निर्णायक कारक होते हैं।

ब्लाक ने अपने विशद् ग्रन्थ <u>दि सेक्सुअल लाइफ ऑफ अवर टाइम</u> में मानव के प्रेम जीवन के सम्बन्ध में ऐसा ही मत व्यक्त किया है, किन्तु यह भी कहा गया है कि ये विभिन्न वासनात्मक संवेदन अपेक्षाकृत आध्यात्मिक विचारों एवं भावनाओं से संयुक्त हो जाते हैं। जिससे प्रेमास्पद का व्यक्तित्व उसके शरीर के माध्यम से अर्चना का पात्र बन जाता है।

हेनरी फिंक ने 'रोमांटिक लव एवं पर्सनल ब्यूटी' में कहा है कि सम्पूर्ण शारीरिक व्यक्तित्व का आकर्षण न कि लैंगिग आवेग, वह कसौटी है जिससे प्रेम को काम से पृथक किया जा सकता है। प्रेम को संगीत के उस स्वर प्रवाह से तुलित किया जा सकता है जिसमें लिंग मूल–ध्वनि है तथा धीमी सुनाई पड़ने वाली उच्चतर ध्वनियाँ वे अन्य वस्तुएं हैं जो वैयक्तिक पसंद को निश्चित करती हैं। आदिम प्रेम पाशविक आवेग मात्र था जबकि रोमांटिक प्रेम के युग में ही विरीधी–लिंग के सदस्यों के प्रति एक निःस्वार्थ एवं उदात्त – भावना का उदय हो सका। इस कोटि का प्रेम सहानुभूति एवं मातृ–पितृत्व–मूलक भावनाओं के सन्निवेश पर ही नहीं, अपितु मानवी रूप एवं मुखाकृति के सौन्दर्यों के रसात्मक आस्वादन पर भी, आधारित होता है। नारी के लजीलेपन तथा उसके प्रति एक

सौन्दर्य से उत्पन्न आनन्द ने मनुष्य में उसके प्रति एक प्रकार का निष्ठा-भाव विकसित कर दिया है। जिसमें कामुकता का पाशविक तत्व मन्द पड़ गया है और उसके प्रशंसा एवं आदर उसकी प्रेमल भावनाओं के प्रमुख तत्व बन गए हैं।

एडवर्ड कारपेंटर के मतानुसार, प्रेम का केन्द्रिय तत्व समागम की एषणा है और यह समागम आत्माओं के उस गहरे संमिलन का प्रतीक है जो प्रत्येक सच्चे प्रेमी-युग्म में वर्तमान होता है, नारी पुरुष की तुलना में इस प्रकार के प्रेम का अधिक अनुभव करती है। मैटेंगेजा ने 'बुक ऑफ लव' में ऐसा ही मत स्थापित किया है: तथा इस बात पर बल दिया है कि - प्रेमी संम्मिलन इन्द्रिय एवं आत्मा दोनों का संयोग है और नारी प्रेम की प्रधान-पुरोहित है। जबकि पुरुष लिंग के शारीरिक आवेगों से सन्तुष्ट होता है।

प्रेम के विषय में वैज्ञानिकों ने जो विचार ऊपर व्यक्त किए हैं, उनके अवलोकन से निम्न तथ्य प्रकाश मे आते हैं -

1. प्रेम का घनिष्ठ सम्बन्ध काम या लैगिक आकर्षण से है।
2. प्रेम कामावेग को अतिक्रान्त कर प्रेमियों को परस्पर सूक्ष्म भावात्मक भावात्मक या आध्यात्मिक सूत्रों में बाँध देता है।
3. प्रेम इन्द्रियों का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एकान्त मिलन है।
4. प्रेम मातृत्व-पितृत्व मूलक कामना से अनुप्राणित है।
5. प्रेम का कोमल प्रकाश संकीर्णता का अतिक्रमण कर लोक-व्यापी बन जाता है।

<u>प्रेम की विविध कोटियाँ एवं अवस्थाएं</u> :-

श्रृंगार के सन्दर्भ में रति, काम और प्रेम प्रायः समानार्थी हैं। सामान्य

व्यवहार में प्रेम की तुलना में काम संकीर्ण और रति उससे भी संकीर्ण अर्थ का द्योतन करता है। काम–सूत्र में प्रीति, भाव, राग, वेग तथा समाप्ति को रति का पर्याय माना गया है, स्नेह की उत्पत्ति के कारण 'प्रीति' 'मैं कामुक हूँ और वह कान्ता है।' इस प्रीति के कारण 'भाव' तथा चित्त का मनोरंजन होने के कारण 'राग' रति के पर्याय होते हैं।"[1]

'वेग' और 'समाप्ति' इनका सम्बन्ध प्रकृत प्रसंग व संप्रयोग से है। अतः इन्हें हम रति के समानार्थक नहीं समझते हैं। रति को संकीर्ण अर्थ में ग्रहण करने से तीन ही शब्द हमारे प्रकृत प्रयोजन के बच जाते हैं – प्रीति, भाव तथा राग। तीनों प्रेम के पर्याय रूप में प्रयुक्त होते हैं।

राग के साथ 'अनुराग', 'स्नेह' तथा 'प्रणय' का भी प्रयोग प्रचलित है। अतएव साधारणतः इन सभी शब्दों प्रीति, भाव, अनुराग, राग, स्नेह तथा प्रणय का व्यवहार केवल प्रणय को छोड़कर जो प्रायः स्त्री–पुरुष के रत्यात्मक सम्बन्ध का द्योतन करता है, प्रेम के सामान्य व्यापक अर्थ में भी होता है। तथापि श्रृंगार के संदर्भ में ये सभी रत्यात्मक सम्वन्ध के सूचनार्थ व्यवद्धत होते हैं। किन्तु आचार्यो ने इन शब्दों के अर्थो में कभी–कभी सूक्ष्म अन्तर किया है।

प्रेम–रसायन का वर्गीकरण – हादर्द, सौहार्द्र, प्रेम

'प्रेम रसायन' नामक पुस्तक में प्रण्डिव प्रवर विश्वनाथ ने प्रेम विवेचन किया है। जिसमें अनेक प्रेम–सम्बंधी ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है। विश्वनाथ श्रृंगार को रस मानते हैं।"[2]

सत्वगुण रूपी जल जिसमें शोभा देता है, ऐसे चित्त रूपी समुद्र में दृष्टि, परिचय, हादर्द एवं प्रेम इनकी उर्म्मि–परंपरा उत्पन्न होती है। दृष्टि का परिणाम, परिचय, का परिणाम हादर्द और हादर्द का परिणाम प्रेम होता है।

चलायमान चित्त की उदासीन, वस्तुओं में जो अनिवारणीय वृत्ति होती है, उसे 'दृष्टि' कहते हैं। चल–चित्त की संस्कार धायिका वृत्ति परिचय कहलाती है। दोष को न देखने वाली चित्त–वृत्ति हादर्द है। निजी वस्तुओं में हादर्द की बहुलता सौहादर्द है। यही हादर्द या सौहादर्द जब भोग में पर्यवसित होता है, तब वह प्रेम कहलाता है।

---

1. कामसूत्र, सांप्रयोगिकालय द्वितीयधिकरण, अध्याय – 1
2. कामसूत्र, लक्षण – खण्ड – 6–9

अभिनवगुप्त ने 'इच्छा – विशेष' को प्रेम कहा है। किसी काम्य वस्तु के लाभ (प्राप्ति) से भी जो इच्छा निवृत्त न हो, वह 'इच्छा विशेष' है। वह इच्छा – विशेष यदि दोष – दर्शन से नष्ट हो जाय, तो वह हार्द्द कहलाती है। यदि वह अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति से नष्ट हो जाये, तो सौहार्द्द है। हार्द्द एवं सौहार्द्द दोनों से विलक्षण जो इच्छा – विशेष है तथा जो दोष – दर्शन अथवा विषय लाभ किसी से नाश्य नहीं है, वैसा दुर्लभ एवं अकथ्य राग 'प्रेम' कहा जायेगा।[1]

उपर्युक्त मतों में हार्द्द एवं सौहार्द्द की परिभाषाओं में कोई मौलिक अन्तर नहीं प्रतीत होता। दृष्टि तथा परिचय के फलस्वरूप जो वृत्ति चित्त में उदित होगी, वह इच्छा – विशेष ही होगी। प्रथम मत में जो दोष को देखे ही नहीं, यह हार्द्द है, किन्तु यदि दोष दिखाई ही पड़ जाय, तब इच्छा – विशेष नष्ट हो जायेगी। इसी प्रकार हार्द्द की बहुलता सौहार्द्द है। अतएव, वह दोष दर्शन मात्र से नष्ट नहीं होगी और अभीष्ट की प्राप्ति तक टिकी रहेगी। प्राप्ति के बाद वह इच्छा – विशेष नष्ट हो सकती है। अतएव, यह सौहार्द्द कही जा सकती है। इसी प्रकार, प्रथम मत में प्रेम को भोग – पर्यवसायी बताया गया है, जिससे ऐसा भास होता है कि भोग के बाद वह नष्ट हो सकता है, लेकिन यह कथन संगत नहीं प्रतीत होता है क्योंकि प्रेम में भोग प्रासंगिक है, भोग प्रेम का लक्षण नहीं हो सकता। अतएव ये ही कथन अधिक समीचीन है कि हार्द्द एवं सौहार्द्द दोनों को अतिक्रान्त करने वाली इच्छा विशेष 'प्रेम' है।

<u>प्रेम के द्वादश भेद</u> :– प्रेम रसायनकार ने प्रेम की बारह अवस्थाएं बतायी हैं – उप्त, यत्त, ललित, दलित, मिलित, कलित, छलित, चलित, क्रान्त विहृत, गलित और संतृप्त।

---

1. काम सूत्र – लक्षण खण्ड – 39–49

1. उप्त :- श्रवण इत्यादि से चित्त में जो दर्शनोत्सुकता उत्पन्न होती है, 'उप्त' है।

2. यत्त :- कृष्णकल्पद्रुम के अनुसार, कपट-पूर्ण प्रश्न से व्यक्त हो जाने पर उप्त 'यत्त' कहलाता है। किन्तु कपट - प्रश्न उपलक्षण - मात्र है। दर्शनोत्सुकता यदि किसी तरह व्यक्त हो जाये, तो यत्त होता है। इस प्रेम के चरित्र अर्थात आचरण रूपी फलक पर छल का पाण्डुलेख अर्थात प्रथमारम्भ होता है। पहले नायिका के आचरण में छल नहीं था, पर अब उसमें छल का आरम्भ पहले-पहल होता है। अतएव वह कपट पूर्ण प्रश्न सखी आदि से करती है।

3. ललित :- निपुण-छल से उत्पन्न हुए अवलोकन रूपी जल से सिक्त होकर यह ललित कहलाता है। इसमें बारम्बार देखने रूप में धृष्टता का आरम्भ होता है तथा आगे चलकर प्रिय के निरंतर देखते रहने की इच्छा से नेत्रों में खुजली उत्पन्न हो जाती है। धार्ष्ट्य तथा कण्डति (खुजली) इन दो के उत्पन्न होने पर 'अव्यक्त ललित' होता है और स्वेद, स्तम्भ, रोमांच, स्पलंग तथा कम्प इन पाँच के उत्पन्न हो जाने पर 'व्यक्त ललित' हो जाता है।

4. दलित :- किसी प्रकार के दृष्टि विच्छेद होने पर ललित 'दलित' हो जाता है। निमेष के कारण भी दृष्टि - विच्छेद दलित होगा। यद्यपि तंत्रामृतकार के अनुसार, निमेष मूलक दृष्टि - विच्छेद ललित - दलित उभयात्मक होता है और गुणाकर के अनुसार यह केवल दलित का आभास है। वैवर्ण्य, प्रलय इत्यादि अनुभव इसमें भी हो सकते हैं। इसकी विशिष्ट अवस्था यह है; लोचनों में तीक्ष्णता, प्रेम विषयक (प्रेमास्पद) से अतिरिक्त वस्तुओं के विषय में कान में कुछ नहीं सुनने की प्रवृत्ति, अन्य पदार्थो में प्रिय की भ्रन्ति, विनिद्रता इत्यादि दशायें दलित में होती हैं। इस प्रेम में चित्त प्रायः द्रवित होता है।

5. मिलित :- वियुक्त प्रेम - पात्र के स्वच्छन्द भाव से अवलोकन रूपी लाभ से द्रवित चित्त में जो आकार पुनः आ जाये, वह 'मिलित' कहलाता है।

यह ललित के समान होता है। ललित प्रेम में व्याजावलोकन से प्रिय – प्रेक्षण होता है। मिलित में स्वच्छन्द भाव से बीक्षण होता है। स्तम्भ, रोमांच, स्वर – भंग, वैवर्ण्य इत्यादि 'मिलित' प्रेम में व्यक्त होते हैं। ऐसा दलित प्रेम के परिणाम रूप में घटित होता है। कतिपय आचार्यो के मतानुसार मिलित में नायक को उपालम्भ देने की अभिलाषा का पाण्डुलेख, अर्थात् आरम्भ होता है।

6. <u>कलित</u> :– उपभोग से चित्त का द्रवित हो जाना 'कलित' प्रेम है। प्रेम विषय यानि प्रेमास्पद में कर्मेन्द्रियों का अभिमुख हो जाना 'उपभोग' कहलाता है। कर्मेन्द्रियों के व्यापार कमिनियों से सम्बन्धित होने के कारण 'हाव' कहलाते हैं। भक्ति रत्नाकर में कहा गया है कि पहले तो प्रेम उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न होता है तो नष्ट नहीं होता यदि वह नष्ट हो जाये तो वह प्रेम नहीं, राग है।

7. <u>छलित</u> :– प्रेम – रोष से संयुक्त प्रेम को 'छलित' कहते हैं। इसमें गर्व एवं याचना का आरम्भ हो जाता है। तंत्रामृतकार प्रेम – रोष को उभयनिष्ठ (नायक–नायिका दोनों में) मानते हैं। हरिदास नायक में प्रेम – कलह का वर्णन उचित नहीं मानते, किन्तु नायिका के मान करने के बाद नायक में प्रेम रोष दिखाने का वे अनुमोदन करेंगे।

8. <u>चलित</u> :– मरण – समय में उत्थित चिंता से जो द्रवित होता है, दूसरे जन्म में उसका 'चलित' नामक प्रेम होता है। इसमें लज्जा विनाश का आरम्भ होता है।

9. <u>क्रान्त</u> :– चलित दशा में पूर्वोक्त प्रफुल्लित चित्त वाले यत्त सदृश प्रतिक्षण नयनों के मूंदने से जो प्रेम व्यक्त होता है, वह 'क्रान्त' है। एक छोटी से मान सूचक चेष्टा से चित्त जो पिघल जाता है, उसे 'विक्रान्त' कहते हैं। यही क्रान्त विलक्षणावस्था को प्राप्त कर 'संक्रान्त' कहलाता है। अनुक्षण परिताप से जब चित्त द्रुत हो जाता है, तो उसका नाम संक्रान्त है। यह प्रेम जन्म साफल्य का हेतु है।

10. <u>विह्वत</u> :- संक्रान्त नामक प्रेम बढ़कर विह्वत कहलाता है। चिन्ता से चित्त का द्रवित होना संक्रान्त का रूप होता है। वही दूसरे जन्म में बढ़कर विह्वत नामक प्रेम हो जाता है। इसमें चित्त की सदा द्रवावस्था होती है, काठिन्य स्वल्पकालिक होता है।

11. <u>गलित</u> :- विह्वत दूसरे जन्म में बढ़कर 'गलित' हो जाता है। गलित में फूल सदृश सुकुमारता आ जाती है। इसे पूर्ण जड़ावस्था माना जाता है।

12. <u>संतृप्त</u> :- गलित बढ़कर संतृप्त हो जाता है। तंत्रामृतकार की टिप्पणी है कि अनेक जन्मों से सिद्ध संतृप्त हृदयवाला सुधी जीवन - मुक्त दशा को प्राप्त होता है। इसके लिए कोई कर्त्तव्य इष्ट नहीं है।

<u>काम का विवेचन</u>

प्रेम के मूल में 'काम' मानने वाले सिद्धांत को मानने वालों में फ्रायड ने योनि - भावना को विश्व के समस्त क्रिया - कलापों का मूल माना है। उनके मतानुसार योनि - भावना बालक में क्षुधा वृत्ति के समान जन्मजात होती है एवं वही समस्त क्रियाओं का मूल है। डॉ0 हैवलॉक एलिस ने भी योनि भावना की समस्या को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और मननशील समस्या बताया है। मैक्डूगल के मतानुसार यह भाव बालक में लगभग 8, 9 वर्ष की अवस्था में उत्पन्न होता है।

काम - सिद्धांत के प्रवर्त्तक फ्रायड के मतानुसार जीव की सबसे अधिक मूल - प्रवृत्ति काम है। अर्थात मैथुन का मनोवेग हमारे हृदय में जन्मजात होता है। काम - वृत्ति अथवा मैथुन के मनोवेग को फ्रायड ने अत्याधिक व्यापक बना दिया है। उसने मानव - जीवन की अनेक कुत्साओं का वर्णन करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि माता - पुत्र, पिता - पुत्री, भाई - बहिन सब के प्रेम और स्नेह के मूल में योनि - भावना ही काम करती है। माता द्वारा अपने लाल के ममत्वपूर्ण थपथपाने में भी फ्रायड ने लैंगिकता का उभार देखा है। फ्रायड ने बोध - वृत्ति, ज्ञान तथा भावना को भी काम - वृत्ति के साथ सम्बन्धित माना है।

प्रजनन प्रवृत्ति के सिद्धांत का विचारकों के ऊपर बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा। यथा – सृजन सम्वन्धिनीय प्रेरणाओं से जागृत होकर ही मैदान अपनी सब्जी दिखाती है, फूल अपने सौन्दर्य और सुगनध को प्रकट करते हैं। पक्षीगण अपने चमकीले से चमकीले पंख धारण करते हैं तथा मधुर से मधुर गीत गाते हैं। झिल्ली की झंकार, कोयल की कूक अपने जोड़े के आह्वान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैदान एवं वनों की निस्तब्धता को भंग करने वाले जो ये नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव सुनाई पड़ते हैं, ये सभी प्रेम के ही असंख्य गीत हैं। मनुष्य की वर्ण – प्रियता, उसका कला और संगीत के सौन्दर्य और माधुर्य पर प्रेम – कविता पर अनुराग यह सब ईश्वरदत्त उस प्रेम के कारण है, जिसके कारण केवल सुन्दरता के प्रति प्रीति ही नहीं उत्पन्न होती वरन् समग्र सुन्दर और आनन्ददायिनी वस्तुओं का ज्ञान और स्वीकार भी होता है।

संसार प्रकृति पुरुष की रंग – स्थली है। नारी पुरुष की प्रकृति पुरुष की बड़ी प्रीति का प्रतिबिम्ब मात्र है। क्षितिज पर आकाश और पृथ्वी का सतत् एवं निरन्तर मिलन भी चिरंतन प्रेम का द्योतक है।"[1]

सृष्टि का सूत्रपात होते ही जब एकता बिखरने अथवा निखरने लगी, तब सर्वप्रथम बुद्धि का प्रार्दुभाव हुआ। इन दो प्रभूतियों में पारस्परिक प्रत्याकर्षण होने एवं एकत्व को पुनः स्थापित करने की अभिलाषा के कारण प्रकृति का ही नहीं अपितु संसार का सारा व्यापार एवं व्यवहार चल रहा है। इनके नाम विद्वानों ने अपनी – अपनी धारणा, कल्पना और ध्येय के अनुसार भिन्न भिन्न रख लिये। प्रधानता उन्हें जीव एवं प्रकृति या स्प्रिट और मेटर नाम से अभिहित किया गया, जब उक्त कल्पना का मानुषी रूप दिया गया तब वे पुरुष एवं स्त्री कहे जाने लगे, जीव और प्रकृति अपने प्रणेता के मोह में खेलते – कूदते रहे, वे सृष्टि काल से लेकर लगातार आकर्षण – विकर्षण अथवा संयोग और वियोग की धूप – छाँव में सुख – दुःख की लहरों में उठते और गिरते हुए ज्ञात अथवा अज्ञात प्रेरणा द्वारा एकत्व की ओर

---

1. रस – कलश – भूमिका – तृतीय संस्करण – अयोध्या सिंह उपाध्याय पृ0 सं0 83

बहते अथवा बढ़ते चले आये हैं।"[1]

हमारा विचार है कि उक्त पक्तियाँ केवल भावावेश के कारण ही लिख दी गयी हैं। इनमें काम और प्रेम, लौकिक तथा ईश्वर – विषयक, दोनों को एक ही धरातल पर रखकर देखा गया है, काम और प्रेम सर्वथा भिन्न हैं। यहाँ तो विचारणीय बात यह है कि आकाश और पृथ्वी क्या वास्तव में कहीं मिलते हुए प्रतीत होते हैं। आप सहमत होंगे, वे कहीं नही मिलते।

यह निर्विवाद है कि विश्व में नर – नारी के संयोग का महत्वपूर्ण स्थान है, सृष्टि रचना के लिए दो की आवश्यकता होती है, वह भी एक स्वयं सिद्ध तथ्य है। इसी कारण प्रारम्भ से ही स्त्री और पुरुष दोनों में एक की अनुपस्थिति में संसार को अपूर्ण माना गया है। आर्य साहित्य में देवताओं के साथ उनकी पत्नियों का वर्णन किया गया है। इतना अवश्य है कि आर्य – साहित्य में स्त्री – पुरुष का सम्बन्ध केवल शारीरिक आवश्यकता न रहकर नैतिक एवं धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में भी स्वीकार किया गया था।

आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्रियों ने काम को केवल अत्यधिक महत्व ही नहीं दिया है, वरन् उसे योनि – भावन के समकक्ष रखकर कलुषित भी बना दिया है। उनके मत में मनुष्य, पशु – पक्षी सभी में काम के बीज जन्मजात होते हैं तथा इसके उपभोग में समस्त इन्द्रियाँ अपना – अपना सर्वांग व्यापार करती हैं।

इन वैज्ञानिकों के मत में –

1. काम–जीवन का सर्वाधिक प्रबल मनोवेग है।
2. यह सबसे अधिक व्यापक है।
3. जीव के समस्त कार्य–कलापों के मूल में काम ही है।

भारतीय विद्वानों द्वारा काम का विवेचन :

काम का विवेचन भारतीय विद्वानों एवं दार्शनिकों के चिन्तन का विषय रहा है। इस विषय का विवेचन करते समय भारतवर्ष के आर्य – ऋषियों ने अपने सम्मुख सदैव यह दृष्टिकोण रखा था कि –

1. काम कहीं कामुकता का पर्याय न बन जाये।
2. प्रेम और विलासिता पृथक – पृथक ही बने रहे।

उनके मत में काम एक मूल प्रेरक – भाव है। उनकी सिद्धयासिद्धि, राग – द्वेष अथवा सुख – दुःख का कारण बनती है। कामदेव को अनंग कहकर उन्होंने सर्वसाधारण को सावधान किया है कि काम अपने अंश रूप में ही उत्पन्न होने पर अथवा तनिक सा काम उद्‌भूत होकर चित्त को विचलित कर देता है, मन को मथ डालने की शक्ति से समन्वित होने के कारण ही वह मन्मथ है। इस विचार में यथासमय विकृति आती रही और कई बार ऐसे समय आये जब नारी केवल काम–तृप्ति का साधन – मात्र रह गयी। हिन्दी के रीतिकालीन ग्रन्थ और आधुनिक युग की रचनाएं इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

इस विषय को सर्वप्रथम महादेव के अनुचर नन्दिकेश्वर ने लिखा, ऐसी जनश्रुति है। किसी भी ग्रन्थ में उनका नाम उपलब्ध नहीं है। इस विषय के सर्वप्रथम लेखक हैं – उद्‌दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु। श्वेतकेतु के पश्चात् विद्वानों ने इस विषय के एक–एक अंग पर विचार किया। इनमें वार्भ्रत्य, चारायण, सुवर्णनाम, धोटकमुख, गानदीप, गोणिका–पुत्र, दत्तक और सुकुमार के नाम उल्लेखनीय हैं।

विषय को ग्रन्थ–रूप में व्यवस्थित करने का श्रेय वात्स्यायन को है। वात्स्यायन विरचित कामसूत्र ही आजकल इस विषय का सबसे अधिक प्रचलित एवं सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसकी रचना चन्द्रगुप्त के काल में हुयी थी।[1]

जीवन का मौलिक भाव ठहराते हुए वात्स्यायन ने काम की इस प्रकार

---

1. डॉ0 पी0सी0 वागची कामसूत्र – सं0 डॉ0 वी0एस0 वसु, नवम संस्करण।

व्याख्या की है – काम ही प्रेम है, काम ही सुख है, काम ही आनन्द की प्राप्ति एवं सन्तुष्टि है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के योग का नाम 'काम' है। इस भोग में मस्तिष्क एवं हृदय, अन्तरात्मा सहायक होते हैं। इस भोग में इन्द्रियां एवं भोग्य पदार्थ के बीच एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। इसी आनन्दानुभूति का नाम काम है।"[1]

इस प्रकार उनके द्वारा की गयी काम की परिभाषा बहुत ही व्यापक हो जाती है वह केवल लैंगिक सुख में सीमित नहीं हैं। काम में जीवन का सम्पर्ण कला पक्ष अन्तर्भूत हो जाने से काम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक बन जाता है तथा काम जन्य आनन्द रसानुभूति के समकक्ष आ जाने से सत्वगुण समन्वित भी हो जाता है।

वात्स्यायन ने भी काम की स्थित जन्मजात स्वीकार की है। इतना ही नहीं उन्होने काम की सिद्धि को जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व भी बताया है। पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त–सुख, रूप, रस, गन्ध शब्द एवं स्पर्श वस्तुतः काम–सिद्धि के सहायक अथवा उद्दीपन मात्र हैं। इनकी सहायता से जिस आनन्द की अधिकता प्राप्त होती है वह है स्त्री पुरुष का संयोग। अतः स्त्री–पुरुष संयोग–जन्य अधिकतम आनंद का नाम काम है। यह समस्तजीवधारियों के मन पर राज्य करता है, काम की सिद्धि जीवन के लिए उतनी ही अनिवार्य एवं उपयोगी है जितनी भोजन–प्राप्ति द्वारा क्षुधा–निवृत्ति।[2]

वात्स्यायन ने 'काम' के 'साधारण–काम' और 'विशेष–काम' दो भेद किये हैं और उनके लक्षण निर्धारित किये हैं।[3]

वात्स्यायन ने काम को जन्मजात मानते हुए यौवन में उसके सेवन की अनिवार्यता स्वीकार की है।[4]

---

1. पाठ संख्या – 2, कामसूत्र, वात्स्यायन
2. पाठ सं0– 2, कामसूत्र, वात्स्यायन
3. सूत्रसंख्या – 11–12, अध्याय–2, वात्स्यायन के कामसूत्र
4. सूत्रसंख्या – 31–32, अध्याय–2, वात्स्यायन के कामसूत्र

परन्तु विशेषता यह है कि उन्होंने काम का सेवन करते समय संयम और सतर्कता की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है। उन्होंने ब्रह्मचर्य को काम सेवन का सर्वोत्तम साधन बताया है।[1]

वात्स्यायन के अतिरिक्त पतंजलि, भर्तृहरि, प्रभृति चिंतकों ने इसे जीवनेच्छा के समकक्ष स्वीकार किया है। संस्कृत ग्रन्थों काम का जो विवेचन हुआ है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि –

1. साधारण रूप में इच्छा मात्र काम है। जीवनेच्छा का ही दूसरा नाम काम है। विशिष्टि अर्थ में स्त्री–पुरुष के स्वाभाविक बंधन को ही काम कहा गया है।

2. क्षुधा के समान काम एक मूल–वृत्ति एवं व्यापक भाव है। वह जन्मजात एवं आत्मा से सम्बद्ध है। अपने गोत्र का विस्तार ही काम है। बिना काम के संसार को कोई कार्य सम्भव नहीं है।

3. काम–सेवन में संयम की शिक्षा देकर उसे मोक्ष प्राप्ति का एक साधन बताया गया है एवं अर्थ तथा धर्म से समन्वित करके उसके उज्ज्वल स्वरूप को ही सामने रखा गया है। इस प्रकार यौन – भावना जैसे – कलुषित रूप का सर्वथा परिहार ही हो गया है।

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ और काम तीनों को ही महत्त्व दिया गया है। तीनों का सन्तुलन तथा अविरोध वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का आदर्श है।

4. काम को सत्वगुण समन्वित करके उसे समस्त सद्गुणों को उत्पन्न करने वाला बताया है। काम ही साहित्य – क्षेत्र का स्वामी एवं देवता है। देवत्रयी – ब्रह्मा विष्णु, महेश–कामदेव के ही स्वरूप विशेष हैं। संसार का प्रत्येक पदार्थ – जड़ चेतन काम से ही उत्पन्न होता है और काम में ही लय हो जाता है।

---

1. सूत्र सं0 – 20, अध्याय–3,

5. काम के आध्यात्मिक स्वरूप की आख्या इस प्रकार की जा सकती है – व्रह्मा अथवा पुरुष विश्व की एकमात्र सत्ता है, जो अपनेआप को जीव एवं प्रकृति में विभक्त कर लेता है।

इन्हें इस प्रकार आत्मा और अनात्मा कहते हैं। आत्मा का स्वभाव है अपना विस्तार करना अथवा आत्मा का अनात्म को अधिकृत करना ही जीवन है। आत्म सक्रिय है और अनात्म निष्क्रिय। इसी कारण पुरुष को आत्म एवं नारी को अनात्म रूपा कहा गया है। पुरुष रूप आत्म जिन क्रियाओं द्वारा एवं विस्तार करता है, उनमें प्रमुख हैं – प्रजनन। अतः प्रजनन हेतु वह अनात्म रूपा नारी के साहचार्य की कामना करता है। दाम्पत्य–भाव इसी आध्यात्मिक क्रिया का प्रतिविम्व मात्र है।

काम, प्रेम और सौन्दर्य

सृष्टि की द्वित्व प्रसूतियों में पारस्परिक प्रत्याकर्षण एवं एकत्व स्थापित करने की अभिलाषा के कारण ही संसार के सभी व्यापार और व्यवहार चल रहे हैं। एकत्व – प्राप्ति की सर्वाधिक प्रबल–इच्छा का नाम ही प्रेम है।

पति–पत्नी अथवा नर–नारी के आकर्षण, प्रत्याकर्षण में हमें एकत्व–स्थापन को स्वरूप देखने को मिलता है। एक दूसरे की ओर आकर्षित होकर जब वे नहीं मिल पाते है, अथवा मिलकर किसी कारणवश बिछड़ जाते हैं, तब वे दुःखी होते हैं और विरह की विसम ज्वाला में दग्ध होने लगते हैं। इसी विसम ज्वाला में तप्त होकर प्रेम और प्रेमी की वास्तविक निकाई निखरती है। इसी दशा का नाम वियोगावस्था है। ज्यों–ज्यों प्रेम का प्रकर्ष बहता जाता है, त्यों–त्यों प्रेमी प्रेममय होता जाता है। आत्यान्तिक अवस्था में प्रेमी को विश्व में सर्वत्र अपना प्रेमपात्र ही दिखायी देने लगता है। संसार के कण–कण में उसे जब प्रेम–पात्र प्रतिभाषित होने लगता है तब प्रेमी को समस्त विश्व ही प्रेममय प्रतीत होने लगता है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति

सर्व भूतेषु चात्यमानं ततो नु विजुगुप्से।

ईशोपनिषद

प्रेमी–प्रेमिका का साधारण प्रेम ही विश्व में व्याप्त होकर आसाधारण प्रेम बन जाता है। आध्यात्मिक भाषा में हम कह सकते हैं कि लौकिक प्रेम पारलौकिक प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है, अथवा जीवनोन्मुखी प्रेम ईश्वरोन्मुखी प्रेम हो जाता है। बात एक ही है, केवल स्तर मात्र का भेद है। एकत्व–स्थापन के अभाव में जीवन अथवा आत्मा विकल हो उठती है उसे अपने अन्य अंग अथवा परमात्मा से पृथक रहना सह्य नहीं है। मन में एक प्रेरणा है एकत्व स्थानपना की। प्रेम–प्रकर्ष में अपने–पराये का भेद जाता रहता है।

स्त्री–पुरुष के लौकिक–प्रेम के मार्ग में अनेक बाधाएं एवं कष्ट हैं। प्रथम तो संयोग होना ही कठिन होता है और यदि संयोग हो भी जाता है तो वह प्रायः अल्पकालीन ही ठहरता है। पारस्परिक मत–वैषम्य के कारण प्रेमी अलग हो जाये, उत्कट् अनुराग होने पर किसी कारणवश उन्हें पृथक् रहना पड़े अथवा कालान्तर में दो में से एक की मृत्यु तो होती ही है इस प्रकार लौकिक प्रेम अस्थायी एवं अन्त में दुःखदायी ठहरता है। लोक का अस्थायित्व प्राणी के हृदय में कभी–कभी निर्वेद अथवा विरक्ति के भाव उत्पन्न कर ऐसे प्रेम की ओर चलने की प्रेरणा प्रदान करता है, जो स्थायी हो, कभी न्यून न हो, जहाँ सुख ही सुख हो, मिलन के पश्चात् विछोह न हो। प्रेम की यही भावना मनुष्य को ईश्वर–प्रेम की ओर अग्रसर कर देती है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि प्रेम–पात्र में किसी कारणवश विरूपता अथवा कुरूपता आ जाने के कारण प्रेम का प्रवाह कुछ अवरुद्ध हो जाता है अर्थात प्रेमी के हृदय में प्रेम–पात्र के प्रति प्रेम कम हो जाता है ओर वह अन्य रूपवान प्रेम–पात्र की खोज में चल पड़ता है। लोक की इस विषम गति को देखकर सच्चा प्रेमी एक सच्चा साधक या सच्चा योगी बन जाता है। और वह आदर्श प्रेम – पात्र की खोज में चल पड़ता है। मानव द्वारा आदर्श की कल्पना एवं खोज सर्वथा मनोवैज्ञानिक है।

प्रेम एक प्रबल मनोदशा है। प्रियतम से मिलन की इच्छा एक अत्यन्त प्रबल प्रवृत्ति है। प्रियतम से वियोग होने पर उसकी पुरानी बातों की याद आती है और भविष्य में मिलन होने पर भाँति-भाँति के सुखद, शीतल संलाप एक कार्यों की कल्पना की जाती है। हम अमुक इस प्रकार यहाँ घूमते थे अमुक प्रकार हम यहाँ बातें किया करते थे, अब मिलने पर हम अमुक प्रकार रहा करेंगे, अमुक प्रकार विभिन्न प्रकार कार्य करेंगे इत्यादि। यह बातें नित्य व्यवहार में घटित होने वाली हैं। भक्ति के क्षेत्र में इसे 'मनोराज्य' कहा जाता है।

स्वयं में लघुत्व का अनुभव तथा आदान-प्रदान प्रेम के दो प्रधान तत्व हैं। प्रत्येक प्रेमी अपने हृदय में समझता है कि उसका प्रेम-पात्र अत्यन्त महान है और मैं उसके योग्य प्रेमी नहीं हूँ। मालुम नहीं वह मुझे स्वीकार करेगा या नहीं। जीव और परमात्मा के सम्बंध में तो यह बात प्रत्यक्ष है ही। साधारण-लोक-व्यवहार में भी प्रेमियों में अपने प्रेम-पात्र को परमात्मा से कुछ कम नहीं माना है। परमात्मा के डर से प्रेमियों ने चाहे प्रेम-पात्र को परमात्मा न कहा हो परन्तु उसमें परमात्मा के समस्त गुणों का आरोप निसंकोच किया है। स्वयं में लघुत्व और प्रेम-पात्र में महत्त्व के आरोप के अभाव में प्रेमलता फूलती-फलती ही नहीं है। पति-पत्नी जब तक एक दूसरे की परमात्मा का स्वरूप सर्वगुणों की खान समझते रहते हैं, तब तक वह प्रेम प्रवाह अबाध रूप में बहता रहता है। जैसे ही वे एक-दूसरे में अवगुणों एवं त्रुटियों के दर्शन करने लगते हैं वैसे ही प्रवाह की गति बाधित हो जाती है। पूज्य-बुद्धि समन्वित प्रेम भक्ति है। जब तक अपने लघुत्व पोषित महत्त्व की प्राप्ति की प्रेरणा न हो तब तक भक्ति का आविर्भाव असंभव है। लघुत्व का महत्त्व में लय हो जाना अथवा भक्त का भगवान में लीन हो जाना भक्ति का चरम फल है।

प्रेम-पात्र के साथ नमक-पानी की तरह एक हो जाना ही प्रेम का सर्वोपरि आनंद फल है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का एक सम्प्रदाय अभुक्त काम को ही समस्त कार्य-कलापों के मूल में मानता है। उनके विचार से अभुक्त काम-वासना ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमें कार्य करने के लिए प्रेरित किया करती है। इस मत के प्रवर्त्तक के सिगमण्ड फ्रायड। इस विचार परम्परा के और भी कई अनुयायी हैं। डॉ0 हैवलोक एलिस के मतानुसार भक्ति-भावना के मूल में यही अभुक्त काम-वासना अथवा दाम्पत्य-जीवन की असफलता ही समझनी चाहिये। यथा-जो धार्मिक क्षेत्र में आ गये हैं उन्हें प्रेम एवं धर्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भलीभाँति विदित है। प्रेम एवं धर्म मानव-जीवन के सर्वाधिक विस्फोटक मौलिक मनोवेग हैं। एक क्षेत्र में उत्पन्न स्पंदनों द्वारा अन्य क्षेत्र का प्रभावित होना अनिवार्य है। इन दोनों क्षेत्रों में यदि आपस में सहयोग एवं सम्बन्ध हो तो इसमें आश्चार्य ही क्या? जन्म जात काम अधिक व्यापक एव स्पष्ट है। अवकाश पाकर यदि वह धर्म--भाव में परिणत हो जाये तो यह स्वाभाविक है। मानुषी प्रेम का दैवीय प्रेम में वदल जाने का यही रहस्य है। धर्म भाव का सवसे बड़ा स्रोत योनि--भाव है।

ससार की नश्वरता और चंचलता शाश्वत और अचल वस्तु के चिंतन का कारण बनती है। तथा जरा एवं मृत्यु की जिज्ञासा जाग्रत करती है। इस जीवन के बाद भी कुछ है. यह विचार साधक को कल्याण-मार्ग की ओर अग्रसर करता है। मनोविश्लेषक कहते हैं कि अपना नाम बनाये रखने की दृष्टि से भगवद् प्रेम की ओर दौड़ता है, वह सोंचता है कि यदि मेरी गिनती भक्तों में होने लगी तो संसार मुझे याद करेगा और मेरा सम्मान करेगा। उस समय उसके अन्दर आत्म प्रतिष्ठा द्वारा आत्मरक्षा की मौलिक-वृत्तियाँ कार्य करती हैं। परन्तु हमारे विचार से वस्तुस्थित सर्वथा भिन्न ही है। लौकिक प्रेम जब पारलौकिक प्रेम की ओर ढल जाता है तो सारा संसार ही दु.खमय प्रतीत होने लगता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु मार्ग का रोड़ा दिखाई देने लगती है। साधक उससे दूर भागना चाहता है। भगवत्प्रेमियों अथवा साधकों के विरागी हो जाने का यही रहस्य है।

प्रेम परलोक की वस्तु नहीं, वह उसी लोक की वस्तु है, वह हमारे हृदय में जन्म से ही विद्यमान है। पारलौकिक प्रेम का मार्ग भी इसी लोक में होकर जाता है। अपने प्रिय में परमात्मा की झलक पाकर ही हम परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर सकते हैं। संसार के सुख और शांति से जीवन व्यतीत करने का एक मात्र आधार प्रेम है। हम या तो किसी को अपना बना लें अथवा किसी के हो जावें। प्रत्येक दशा में अनन्यता अपेक्षित है। प्रेम का वास्तविक आनन्द स्वरूप हमारे सम्मुख तभी प्रकट हो सकेगा। जब हम अपने प्रेम को विश्व-व्यापी बना लें।"[1]

---

1. कु0 रीता पाण्डेय के शोध से आधार सहित

तृतीय – अध्याय

घनानंद और बोधा के काव्य में रूप सौन्दर्य

घनानंद के काव्य में रूप सौन्दर्य

रीति स्वच्छन्द धारा के कवि घनानंद, रूप माधुर्य की साक्षात् मूर्ति सुजान के सौन्दर्य में आजीवन डूबते–उमड़ते रहे हैं, उनका सौन्दर्य वर्णन सुजान के प्रति इस कदर आसक्त है कि यह भाव उन्हें अन्य कवियों से भिन्नता प्रदान करता है। उनकी अनुभूति–प्रवणता, आत्मपरकता एवं अति वैयक्तिकता उनके रूप सौन्दर्य का प्राणतत्त्व है। कवि, सुजान के अंग–प्रत्यंग एवं यौवन सम्पदा पर मुग्ध है साथ प्रत्येक अंग पर रीझता है। लौकिक रूप सौन्दर्य का इस तरह चित्रण करने वाला हिन्दी में घनानंद से पहले कोई कवि नहीं हुआ है। "घनानंद ने सुजान के रूप का क्रमबद्ध रीति से नखशिख वर्णन नहीं किया है। सुजान की समस्त छवि के जिस अंश का आकर्षण या प्रभाव मन पर पड़ा है, उसी के चित्रण में वे प्रवृत्त हो गये हैं। सुजान के रूप और अंग सौन्दर्य ने जब उन्हें आकृष्ट किया है तब वे उसके चित्रण में तन्मय हुए हैं। इसी से समस्त रूप सौन्दर्य वर्णन हम एक साथ नहीं पाते। रूप के या जिस अंग का आकर्षण जब जितना तीव्र हुआ है, तब वे उतने उन्मेष के साथ छन्द लिख गये हैं। क्रमबद्ध रूप से एक साथ शिख से नख तक का वर्णन कर कवि परिपाटी का अनुसरण उन्होंने नहीं किया है। सुजान के रूप वर्णन में कवि का ध्यान प्रायः छवियों के चित्रण पर रहा है।"[1]

रीतिकालिक तमाम कवियों ने रूप सौन्दर्य का चित्रण किया है, लेकिन उस वर्णन में जीवन्तता नहीं है और वह वर्णन प्राणवत्ता को प्राप्त नहीं कर सका है। उसका कारण यह है कि कवि ने स्वयं सुजान से प्रेम किया था साथ ही उसने सुजान के नेत्रों के वारों को सहन किया, तिरछी चितवन से मर्माहत हुआ, उसकी अदाओं पर रीझा था – कवि ने सुजान के रूप सौन्दर्य का चित्रण क्रमबद्धता से तो नहीं किया, पर अवयवों के सौन्दर्य का जो सूक्ष्म चित्रण है उस पर किंचित विस्तार से चर्चा अपेक्षित है–

---

1. घनआनंद– पृ0 सं0 79

[क] **केश और भाल** :– सुजान के काले चमकीले केश, मुख पर इधर–उधर बिखर कर उड़ते हैं तो वे उन्नत भाल को द्विगुणित शोभा प्रदान करते हैं–

"सहज–उज्यारी रूप–जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम–रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
काह कहौं सोभा भाग–भरे भाल सीस की।
बीच बीच मंजुल मरीचि–रूचि फैलि फबी,
केलि–समै उपमा लसति बिसे–बीस की।
मानौ घनआनंद सिंगार–रस सों सँवारी,
चिक मैं बिलोति बहनि रजनीस की।"[1]

सुजान के खुले केशों को देखकर 'पपीहा' उन्हें बादल समझ लेता है और वह उनकी ओर दौड़ पड़ता है–

"मुख देखें गौहन लगे फिरैं चकोर भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा–पुंज छावहीं।
गति रीझि चायनि सों पायन–परस कीजै,
रस लोभी बिबस मराल–जाल धावहीं।
यातें मन होय प्रान–संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसे हूँ निगोड़े नैन कैसें चैन पावहीं।
सींचयै अनंदघन जान प्यारे जैसें जानौ,
दुसह दसा की बातें बरनी न आवहीं।"[2]

सुजान–सौन्दर्य से मदमस्त कवि ने सुजान के उन्नत भाल और उस पर लगे सौभाग्य बिन्दु की सराहना की है–

"हुलास–भरी मुसकानि लसै, अधरानि तें आनि कपोलनि जागै।
छुटीं अलकैं मृदु मंजु मिहीं स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै।।

1- सुजान हित – 166

2- सुजान हित – 210

घनानंद के काव्य में रूप सौन्दर्य

रीति स्वच्छन्द धारा के कवि घनानंद, रूप माधुर्य की साक्षात् मूर्ति सुजान के सौन्दर्य में आजीवन डूबते-उमड़ते रहे हैं, उनका सौन्दर्य वर्णन सुजान के प्रति इस कदर आसक्त है कि यह भाव उन्हें अन्य कवियों से भिन्नता प्रदान करता है। उनकी अनुभूति-प्रवणता, आत्मपरकता एवं अति वैयक्तिकता उनके रूप सौन्दर्य का प्राणतत्त्व है। कवि, सुजान के अंग-प्रत्यंग एवं यौवन सम्पदा पर मुग्ध है साथ प्रत्येक अंग पर रीझता है। लौकिक रूप सौन्दर्य का इस तरह चित्रण करने वाला हिन्दी में घनानंद से पहले कोई कवि नहीं हुआ है। "घनानंद ने सुजान के रूप का क्रमबद्ध रीति से नखशिख वर्णन नहीं किया है। सुजान की समस्त छवि के जिस अंश का आकर्षण या प्रभाव मन पर पड़ा है, उसी के चित्रण में वे प्रवृत्त हो गये हैं। सुजान के रूप और अंग सौन्दर्य ने जब उन्हें आकृष्ट किया है तब वे उसके चित्रण में तन्मय हुए हैं। इसी से समस्त रूप सौन्दर्य वर्णन हम एक साथ नहीं पाते। रूप के या जिस अंग का आकर्षण जब जितना तीव्र हुआ है, तब वे उतने उन्मेष के साथ छन्द लिख गये हैं। क्रमबद्ध रूप से एक साथ शिख से नख तक का वर्णन कर कवि परिपाटी का अनुसरण उन्होंने नहीं किया है। सुजान के रूप वर्णन में कवि का ध्यान प्रायः छवियों के चित्रण पर रहा है।"[1]

रीतिकालिक तमाम कवियों ने रूप सौन्दर्य का चित्रण किया है, लेकिन उस वर्णन में जीवन्तता नहीं है और वह वर्णन प्राणवत्ता को प्राप्त नहीं कर सका है। उसका कारण यह है कि कवि ने स्वयं सुजान से प्रेम किया था साथ ही उसने सुजान के नेत्रों के वारों को सहन किया, तिरछी चितवन से मर्माहत हुआ, उसकी अदाओं पर रीझा था - कवि ने सुजान के रूप सौन्दर्य का चित्रण क्रमबद्धता से तो नहीं किया, पर अवयवों के सौन्दर्य का जो सूक्ष्म चित्रण है उस पर किंचित विस्तार से चर्चा अपेक्षित है-

---

1. घनआनंद- पृ0 सं0 79

[क] **केश और भाल** :- सुजान के काले चमकीले केश, मुख पर इधर-उधर बिखर कर उड़ते हैं तो वे उन्नत भाल को द्विगुणित शोभा प्रदान करते हैं-

"सहज-उज्यारी रूप-जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
काह कहौं सोभा भाग-भरे भाल सीस की।
बीच बीच मंजुल मरीचि-रूचि फैलि फबी,
केलि-समै उपमा लसति बिसे-बीस की।
मानौ घनआनंद सिंगार-रस सों सँवारी,
चिक मैं बिलोति बहनि रजनीस की।"[1]

सुजान के खुले केशों को देखकर 'पपीहा' उन्हें बादल समझ लेता है और वह उनकी ओर दौड़ पड़ता है-

"मुख देखें गौहन लगे फिरैं चकोर भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।
गति रीझि चायनि सों पायन-परस कीजै,
रस लोभी बिबस मराल-जाल धावहीं।
यातें मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसे हूँ निगोड़े नैन कैसें चैन पावहीं।
सींचयै अनंदघन जान प्यारे जैसें जानौ,
दुसह दसा की बातें बरनी न आवहीं।"[2]

सुजान-सौन्दर्य से मदमस्त कवि ने सुजान के उन्नत भाल और उस पर लगे सौभाग्य बिन्दु की सराहना की है-

"हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तें आनि कपोलनि जागै।
छुटीं अलकैं मृदु मंजु मिहीं स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै।।

1- सुजान हित - 166

2- सुजान हित - 210

बड़ी अँखियानि मैं अंजन-रेख लजीली चितौनि हियौं रस पागै।

सुहाग सो आपित भाल दिपै घनआनंद जान पिया अनुरागै।।"[1]

[ख] <u>नेत्र</u> :- घनानंद ने नेत्रों का वर्णन बड़ी तन्मयता के साथ किया है। प्रेमिका के नेत्रों में जो रंगीलापन, चपलता एवं रसिकता है, वह बड़ी मोहक है।

"पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नींवँहि रोपैं।
लाज लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं।
अंजन अंजित-श्री घनआनंद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न आवति मोपै।"[2]

सुजान के नेत्र असाधारण हैं, नेत्रों के जितने भी उपमान है, सुजान नेत्रों से पराजित हो गये हैं। खंजन में वह शक्ति नहीं है जो प्रेयसी के नेत्रों में है। मीन, रस वर्षण के अभाव में सुजान की बराबरी नहीं कर पाती है। कमल में लेशमात्र लज्जा नहीं। सुजान के नेत्रों की कोई तुलना नहीं, नेत्र वाणों में मारकर जिलाने की सामर्थ्य है-

"खंजन ऐसे कहा मनरंजन, मीननि लेखौ कहा रस-ढार सो।
कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रूखे सने ये सनेह के सार सो।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, बान-जिवाई न जानत मार सो।
मीति सुजान सिखवत तो दृग है घनआनंद रंग अपार सो।"[3]

[ग] <u>कटाक्ष</u> :- जिह्वा जिस बात को कहने में असर्मथ होती, नेत्र उसे बड़ी आसानी से कह देने की क्षमता रखते हैं। कटाक्षपात के संबंध में घनानंद ने बड़ी सर्तकता और सूक्ष्मता से काम लिया है। सुजान के विशाल नेत्र कटाक्ष कला में दक्ष हैं -

"बंक बिसाल रंगीले रसाल कटाक्ष-कलानि मैं पण्डित।
सॉवल सेत निकाई-निकेत हियौ हरि लेत हैं आरस-मंडित।
बेधि कै प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित।
आनंद आसौ-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित।।"[4]

---

1. सुजान हित - 362
2. सुजान हित - 185

सुजान के कटाक्ष-शर विलक्षण हैं, पहले हृदय को बेध देते हैं फिर प्राण दान भी कर देते हैं इसी विलक्षणता का यह उदाहरण –

"नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीब धीर होत लोट पोट है।
रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा,
घूमै मति गति-आसै, प्यास की न टोट है।
चलत सजीवन-सुजान-दृग-हाथन तें,
प्यारी अनियारी रूचि रखवारी ओट है।
जब-जब आवै तब तब अति भावै ज्यावै,
अहा कहा विषम कटाच्छ-सर-चोट है।"[1]

नेत्रों के कटाक्ष प्रेमी को सुखदायक प्रतीत होते हैं, कटाक्ष लगते ही विरह दूर हो जाता है-

"रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखै,
लाज सों लपेटी लसै उघरि हितौन की।
निपट नवेली नेह-झेली लाड़ अलबेली,
मोह -ढरहरी विरह रितौन की।
लोने-लोने कोने छ्वै छबीली अँखियानि के सु,
रंचकौ न चूकै घात औसर-बितौन की।
एरी घनआनंद बरसि मेरी जान तेरी,
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौनि की।"[2]

(घ) <u>नाक</u> :- नासिका का वणर्न कवि ने बिल्कुल ही नये ढंग से किया है, परम्परा की जिसमें कोई भी झलक नहीं है।

"सुजान की नाक जरा चढ़ी रहती है। नाक चढ़ी रहना मुहावरा है जिसका आशय है सदा ईषत् रोष में रहना जो प्रायः रूपवती स्त्रियों के स्वभाव का एक अंग होता है। इस स्वभाव के मूल में रूप का अभिमान तथा सब तरफ से लोक में उसी रूप के कारण प्राप्त प्रशंसा या

---

1. सुजान हित – 204
2. सुजान हित – 155

प्रतिष्ठा कारण स्वरूप हुआ करते हैं। रूप के कारण ही जिसे सब तरफ आदर मिलता है औरों की अवहेलना करने का उसका स्वभाव हो जाता है।"[1]

निष्ठुर सुजान की प्रकृति ऐसी ही थी जिसकी बड़ी सुन्दर झलक नासिका वर्णनरत इस छन्द में देखी जा सकती है–

"अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न,
मन–मग मूँदै जाको बेह सब ओरतें।
काँवरी सुठौन कौन रंग भीनी हों न जानों,
लड़नि सु लसि हुलसति मति चोरतें।
बड़े मैन–मतवारे नैनन के बीच परी,
खरियै निडर ऊँची रहै रूप–जोर तें।
सहज बनी है घनआनंद नवेली नाक,
अनबनी नथ सों सुहाग की मरोर तें।।"[2]

नाक का छेद, नाक चढ़ने की मुद्रा, निडर और ऊंची नाक और नथ–इन सारी बातों का वर्णन ऊँची, लम्बी, इतराती हुई सुजान की सुन्दर नाक का सौन्दर्य प्रत्यक्ष करा देते हैं।

सुजान नाक सिकोड़ने की मुद्रा अनिर्वचनीय है। उसकी यह मुद्रा मन को विमुग्ध कर देती है। भावपूर्ण इस भंगिमा ने हृदय को उद्वेलित कर दिया है–

"लाड़–लसी लहकै महकै अंग रूपलता लगि दीठि–झकोरै।
हास–बिलास भरे रसकन्द सु आनन त्यों चख होत चकोरै।
मौन भली कहि कौन सकै घनआनंद जान सु नाक सकोरै।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै।"[3]

[ङ] दाँत :– दाँतों के वर्णन शुभ्रता और चमक ही विशेष रूप से वर्णित हुयी है, उनकी चमक मोती के समान है–

---

1. घनआनंद – पृ0 सं0 – 83
2. सुजान हित – 30
3. सुजान हित – 175

"सहज हसौहीं छबि फबति रंगीले मुख,

दसननि जातिजाल मोतीमाल सी रूरै।

सरस सुजान घनआनंद भिजावै प्रान,

गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै ढुरै।।"[1]

दाँत वर्णन का एक उदाहरण और द्रष्टव्य है –

"दसन–बसन ओली भरियै रहै गुलाल,

हँसनि–लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै।

साँसनि सुगंध सोंधे कोरिक समोय धरे,

अंग–अंग रूप रंग–रस बरस्यौ करै।।"[2]

अधर दाँतो के वस्त्र हैं क्योंकि वे उन्हे आच्छादित किये रहते हैं। जिस प्रकार फाग खेलने के लिए आतुर गोपी के आँचल में गुलाल भरा रहता है वैसी ही लाली सुजान के अधरों में भी भरी हुयी है। लाल अधरों की भावना कितनी भव्य है।

(च) <u>मुख मण्डल</u> :– सुजान का मुख मण्डल अत्यन्त सुघर है उसके शरीर की 'गुराई' में ललाई ऐसी प्रतीत होती है, मानों उदित हो रहे दिवाकर की द्युति पूर्णचन्द्र से भेंट रही हो –

"देखि धौं आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैं कैसी ललाई।

मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भेंटन आई।

फूलत कंज कुमोद लखें घनआनंद रूप अनूप निकाई।

तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई।"[3]

मुखमण्डल की शुभ्रता के सम्मुख चन्द्रमा का प्रकाश भी मन्दिम पड़ गया है, कमल भी आभारहित हो गये हैं –

"आनन की सुघराई कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर।

चंद तौ मन्द मलीन सरोरूह एक हू रंग न दीजियै जौ सर।"[4]

---

1. सुजान हित – 98
2. सुजान हित – 216
3. सुजान हित – 19
4. सुजान हित – 173

'चीकने चिहुर' के मध्य उसका आनन ऐसा प्रतीत होता है, जैसे रजनीश की सहोदरा का प्रतिरूप हो–

"सहज–उज्यारी रूप–जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न, रोम–रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बियुरि रहे,
कहा कहौं सोभा भाग–भरे भाल सीस की।।"[1]

(छ) उरोज :– रीतिकालिक कवियों ने नायिकाओं के उन्नत उरोजों का वर्णन बहुत विस्तार से किया है, लेकिन कवि को सुजान से सच्चा प्रेम था, इसी कारण उरोज वर्णन में बहुत शालीनता से काम लिया गया है, प्रेम में अश्लीलता का कोई स्थान नहीं है। उरोज वर्णन में कवि ने उपमानों की झड़ी नहीं लगायी है, उनका वर्णन संक्षिप्त साफ–सुथरा है –

"अंगनि पानिप–ओप खरी, निखरी नवजोवन की सुथराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे–भरी छतिया–उथराई।।"[2]

एक वर्णन और दृष्टव्य है –

"घनआनंद ओपित ऊँचे उराजनि चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ–बेलि फली।।"[3]

(ज) उदर :– रीतिकालीन कवियों ने उदर का वर्णन बहुत कम किया है लेकिन घनानंद ने अंग प्रत्यंग का वर्णन सहजता के साथ प्रस्तुत किया है–

"चलदल–पात की प्रभा को है निपात जाते,
याते बाये बावरो डराये काँपिबो करै।
थोरे थिर गुन मैं बिराजै बीचि आभा ऐन,
नैन हेरें हेरनि हिये मैं भूख लै भरे।
नीकौ सन्मुख भएँ दीजै सब तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै।

---

1. सुजान हित – 166
2. सुजान हित – 347
3. सुजान हित – 360

ताकें तो उदर घनआनंद सुजान प्यारी,

ओछी उपमानि को गरूर ओरे लौं गरै।"[1]

(झ) <u>पीठ</u> :– इसी प्रकार उन्होंने पीठ की सुन्दरता की प्रशंसा की है। "घनानंद पर सुजान के रूप सौन्दर्य का प्रभाव इतना तीव्र था कि वे अंग जिन्हे रीतिबद्ध कवियों ने कोई विशेषता नहीं दी, अथवा यों कहा जाय कि उनकी स्थूल सौन्दर्य दृष्टि में वे अंग आ ही नहीं पाये, उनका हृदय–आह्लादक वर्णन कवि ने किया है। पेट और पीठ के चित्र इसी से नितान्त स्वच्छन्द हैं और परम्परागत पद्धति से एक कदम हट के हैं।"[2]

पीठ की सुन्दरता का भाव–भीना वर्णन अत्यन्त मनोहर है –

"सोभा–सुमेरू की संधि तटी किधौं मान–मवास गढ़ास की घाटी,
कै रसराज–प्रबाह को मारग बेनी बिहार सों यौं दृग दाटी।
काम–कलाधर आपि दई मनौ प्रीतम–प्यार–पढ़ावन पाटी।
जान की पीठि लखें घनआनंद आनन आन तें होति उचाटी।"[3]

(ञ) <u>कटि</u> :– साहित्य प्रेमियों के लिए नायिका की कटि वर्णन बड़ा विशेष प्रिय विषय रहा, रीतिकालिक साभी कवियों ने कटि का वर्णन सजीव और चाव से किया है। घनानंद ने इस कटि वणर्न में परम्परागत शैली का ही अनुसरण किया है –

"अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध–बाँक है।
कोटिक निकाई मृदु ताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रची है जामैं बिधि–बुधि राँक है।
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यों बतावै, जहाँ,
बात हूँ के बोझ हिय होत नमि साँक है।

---

1. सुजान हित – 107
2. घनानंद का रचना संसार – पृ0 सं0 78
3. सुजान हित– 103

चलि चित चोरै मुरि मनहि मरोरै सुठि,

सुभग सुदेस अलवेली तेरी लाँक है।"[1]

सुजान की कटि ध्वनि के समान अत्यन्त सूक्ष्म है। वह केवल बुद्धि की दृष्टि से या मानस नेत्रों से देखी जा सकती है। उसका रहस्य केवल किंकिनि ही जानती है। सहृदयों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेने की अदम्य क्षमता सुजान-कटि में विद्यमान है –

"रूप धरे धुनि लौं घनआनंद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।
लोयन लेत लगाये कह संग अनंग अचम्भे की मूरति मानौ।
है किधौ नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कवि क्यों हूँ प्रमानौ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ।"[2]

(ट) <u>पिंडली और चरण</u> :- चरणों की सुन्दरता का वर्णन प्रत्येक काल के कवि ने किया है। घनानंद ने साक्षात् रति-सी सुजान की सुन्दर पिण्डली की गोराई को देखकर अपने मन की रीझ के रस को अभिव्यक्त किया है। उसकी गोरी पिण्डली और चरण इतने अधिक सौन्दर्य मय हैं कि उनको देखकर कवि-मन आह्लादित हो उठता है –

"रति-साँचे ढरी अछवाई भरी पिंडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुखान सो लोभी खरो रस झूमि खगै।
घनआनंद ऐंड़िन आनि मिड़ै तरवानि तरे तें भरै न डगै।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै।"[3]

सुजान के पैरों में लगी हुई मेंहदी बड़ी भव्य, आकर्षक एवं मोहक है। उसके पैर मेंहदी की आभा से सदैव लालिमामय रहते हैं –

"मिहँदी लगि पायनि रंग लहै सुठि सोंधो सुअंगनि संग बसै।
तरूनाइयै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै।
घनआनंद रूप-अनूप-भरी हित-फंदनि मैं गुन-ग्राम गसै।
सब भाँति सुजान समान न आन कहा कहौ आपु ते आपु लसै।"[4]

---

1. प्रकीर्णक – 21
2. सुजान हित – 20
3. सुजान हित – 39
4. सुजान हित – 88

सुजान के पैरों का सौन्दर्य अनुपमेय है, वह स्वयं ही अपना उपमान है–

सुजान के पैरों में जैसे ही हाथ पड़ता है, हाथ वहीं रम जाते है–

अँगुरीन लै जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा।
चपि चायन चूर ह्वै एड़िनि छ्वै धपि धाय छकै छबि छाय छवा।
घनआनंद यौ रस–रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा।
अलबेली सुजान के पायन–पानि परयौ न टरयौ मन मेरो झवा।"[1]

"सुजान का सहज सौन्दर्य कई गुना विवर्द्धित हो जाता है जब वह आभूषण धारण कर लेती है। सोने के कंगन, मणि जटित पहुँची, नीलम की पछेली तथा सुन्दर चूड़ियाँ आदि विभिन्न आभूषण सुजान की परिष्कृत रूचि तथा उसके अनिन्द्य सौन्दर्य के जहाँ अनुकूल है, वहीं उसके रूप की भावना को उत्कर्ष भी प्रदान करते हैं। इन सब का मिला–जुला प्रभाव चित्त पर ऐसा पड़ता है कि आभा–तरंगों में लीन होकर रीझ के रंग में ही बिल्कुल सराबोर हो जाता है। व्यक्ति निष्ठता अथवा आत्मपरकता के कारण इस कोटि के छन्द, जिनमें सुजान के भूषण–तन की चर्चा है, बड़े मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं।"[2]

"गोरे डंडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यो लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखें पुनि आभा–तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीनि हियैलैं बनी रूचि–रूप–सनी सुघनीन छयौ है।
चारू चुरीनि चितै घनआनंद चित्त सुजान के पानि भयौ है।"[3]

"इस प्रकार घनानंद ने अपनी प्रेयसी सुजान के रूप का, अंग सौन्दर्य का चित्रण किया है। सम्पूर्ण वर्णन में कवि का प्रेमी हृदय दोनों हाथों में रीझ लिए हुए दृष्टिगोचर होता है। रूप सौन्दर्य से प्रभावित सुजान का कोई भी चित्र ऐसा नहीं जिसमें सजीवता न हो ताजगी न हो। रीतिबद्ध कवि नायिका के शिख–नख अथवा नख–शिख वर्णन में जो कमाल दिखाते थे, उनमें अनुभूति की वह तीव्रता नही होती थी, जो घनानंद में मिलती है। कोई कारण विशेष नहीं बात एकदम सीधी है, उनका वर्णन

---

1. सुजान हित–16
2. घनानंद– पृ0 सं0 129
3. सुजान हित – 115

शब्दों की दृष्टि से अलग–अलग था, पर मजेदार बात यह है कि एक नायिका को देख कर दस प्रेमियों में एक सी अनुभूति होती थी। प्रेम करने की जैसे कोई तकनीक हो और परिणाम कम्प्यूटर से निकाले गए हों, जिनमें अन्तर आने का प्रश्न ही नहीं उठता। घनानंद ने स्वयं प्रेम किया और प्रेमी अपनी प्रेमिका को हर दिन नयी दृष्टि से देखता था– उसे दिन बदलने के साथ–साथ रूप भी नए पन को लिए हुए दृष्टिगत होता है।" श्रेष्ठ प्रेमी के अतिरिक्त अन्य कोई भी यह नहीं कहता है।"[1]

"रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहि आन तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनंद बावरी रीझ के हाथनि हारियै।"[2]

जो रूप इतना अनूप है कि उसे देखते हुए प्रेमी का मन कभी नही भरता, उस रूप का प्रभाव कितना अधिक रहा होगा – यह एक विचारणीय प्रश्न है। व्यक्ति घर से बाहर जाता है, विभिन्न प्रकार की परिचित अपरिचित वस्तुओं, व्यक्तियों से मिलता है, लेकिन सबके प्रति उसका ध्यान एक–सा आकृष्ट नहीं होता। किसी विशेष व्यक्ति की विशेष छबि से ही वह प्रभावित होता है। घनानंद जैसे रसिक कवि विद्वान 'खास–कलम' जिस सुजान से प्रभावित हुए वह कोई असाधारण रूप वाली, गुण सम्पन्न नारी रही होगी, जिसे वे नित्य देखते होंगे और जिस पर नित्य निसार होते होंगे। इसी कारण सुजान का सौन्दर्य वर्णन परम्परागत नहीं है, कल्पित नहीं है। उसमें एक प्रकार की स्वच्छन्दता है, जो कृत्रिमता से कोसों दूर है। प्रत्येक अंग के विवेचन के पश्चात् रूप के सामूहिक प्रभाव को कवि ने कई प्रकार से व्यंजित किया है– ।

---

1. घनानंद का रचना संसार– पृ0 सं0 –80
2. सुजान हित – 41

सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन

प्रभावोत्पादकता :- "घनानंद के पास विधि प्रदत्त सूक्ष्म दृष्टि थी, जिससे उनका काव्य परम्परागत स्थूल चित्रण से भिन्न प्रकार का है। स्थूल अवयवों के सौन्दर्य का उद्‌घाटन करते हुए वे अंगो के सूक्ष्म विशेषताओं और रमणीयता का वर्णन कर गये हैं।"[1]

सुजान के रूप का प्रभाव उन्हें सम्मोहित किये दे रहा है। उसके रूप सौन्दर्य का सूक्ष्म प्रभाव प्रस्तुत करने के लिए कितने सुन्दर रूप से शब्द योजना की है-

"चारू चामीकर चंद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेख लेखियत है।
उपमा बिचारी न बिचारी जाहिं जान प्यारी,
रूप की निकाई औरैं अवरेखियति है।
सरस सनेह सानी राजति खौंनी दसा,
तरूनाई-तेज-अरूनाई पेखियत है।
मंडित अखण्ड घनआनंद उजास लिये,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियत है।"[2]

इस प्रकार के वर्णन यद्यपि अधिक नहीं है, फिर उदाहरणों से ही कवि की सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि की तीव्र पकड़ का परिचय सहज ही मिल जाता है।

सुजान के तन स्थूल चित्रण में कवि ने अंगो की कान्ति, उज्ज्वलता, अरूणाई, सौन्दर्य, तरूनाई, सरसता, सुकुमारता, मधुरता, ताजगी और नवीनता तथा दीवाली सा उत्साह होना आदि बातों का कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ

---

1. घनानंद का रचना संसार- पृ0 सं0 81
2. सुजान हित -180

चित्रण चित्रित किया है। नर्तन के समय अंगो की थिरकन, मर्मस्पर्शी अभिनय प्रेमी का मन मोहित होकर उस पर न्यौछावर हो जाता है। सुजान के तीक्ष्ण कटाक्ष से प्रेमी–हृदय बेकल हो उठता है–

रूप–मतवारी घनआनंद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि धूम करे कौन पे घिर।
नाच की चटक लसै अंगनि मटक–रंग,
लाडिली लटक–संग लोयन लगे फिरै।
अभिनै–निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सोधौ न लहौं हिरैं।
राते तरवानि तरें चूरे चोप–चाड़–पूरे,
पाँवड़े लौ प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं।"[1]

रूप और सौन्दर्य अपनी सार्थकता ही खो देता है, यदि वह किसी को प्रभावित ही न करे, किसी के संसर्ग में न आये, किसी को उसका रस और लाभ ही न मिले। वह गाँव में फूले उस गुलाब की तरह ही समझा जायेगा जिसके आब वहाँ आदर करने वाला ही कोई नहीं। उसका फूलना न फूलने के बराबर है। सुजान के रूप के उत्कर्ष की व्यंजना में उसके प्रभाव का निर्देशन करने वाले अनेकानेक छन्द लिख डाले हैं। अनेक बार में प्रभाव दिखाने वाले छन्द रूप सौन्दर्य की ऐसी गहरी व्यंजना कर जाते है जैसी साक्षात् रूप चित्रण वाले छन्द नहीं कर पाते। ब्रज भाषा के कवियों ने रूप–चित्रण की इस पद्धति को, जिसे प्रभावाभिव्यंजक रूप चित्रण की शैली कह सकते है, बहुत अपनाया था। रूप वर्णन का यह ढ़ंग नितांत स्वाभाविक भी है। रूप कैसा है इसका पता तो वही दे सकता है जिस पर उसका प्रभाव पड़ा, यदि प्रभाव का कथन कर दिया गया तो रूप स्वतः अभिव्यंजित हो उठता है।"[2]

---

1. सुजान हित –127
2. घन आनंद – पृ0 सं0 106

सुजान के रूप सौन्दर्य का प्रभाव कवि के नैन, मन, बुद्धि, प्रान एवं चित्त, मति आदि पर इस कदर पड़ा कि अन्तः सत्ता प्रभावित हो गयी सुजान–सौन्दर्य में अन्तस् को झकझोर देने की क्षमता विद्यमान थी घनानंद की बाह्य सत्ता का सर्वश्रेष्ठ और चेतन उपकरण नेत्र हैं तथा अन्तः सत्ता का जीवंततम रूप उनका मन है।

नेत्रों अथवा बाह्य सत्ता पर सुजान सौन्दर्य का प्रभाव असीम था, परिणाम स्वरूप इस पर छन्दों की संख्या बहुतायत है–

"रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनंद बावरी रीझ के हाथनि हारियै।"[1]

सुजान हित छन्द संख्या – 112, 127, 132, 133, 142, 153, 171, 175, 185, 197, 199, 200, 201, 204, 253, 434, 489, 487, में इस प्रभावोत्पादकता को देखा जा सकता है।

घनानंद ने सुजान के रूप सौन्दर्य का प्रभाव नेत्रों पर दिखाकर, उसे सौन्दर्य की अतिशयता शत–शत रूपों में ध्वनित की है–

"चाहत ही रीझी लालसानि भीजि सुख सीझी,
अंग–अंग–रंग–संग भाव भरि भ्वै गई।
रैनिद्यौस जागें ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागै पागै चंचलता च्वै गई।
हित की कनौड़ी लौंड़ी भई ये अनंदघन,
फिरैं क्यों पिछौड़ी नेह–मग डग द्वै गई।
माधुरी– निधान प्रान–ज्यारी प्रान प्यारी तेरो,
रूप–रस चाखैं आँखै मधुमाखी ह्वै गई।"[2]

---

1. सुजान हित – 41
2. सुजान हित – 199

सुजान का सौन्दर्य भावुक कवि घनानंद की अन्तः सत्ता पर इस कदर छाया है कि मन, प्राण, हृदय, जीव सभी सुजान पर मुग्ध हैं। घनानंद सुजान के हाथों बिक गये, धैर्य, सयंम, लज्जा सभी कुछ छोड़ सुजान के अधीन हो गये–

"रूप–चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर–मवासी।
नैन मिलें उर के पुर पैठत लाज लुटी न छुटी तिनका सी।
प्रेम दुहाई फिरी घनआनंद बाँधि लिये कुल–नेम गढ़ासी।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।"[1]

यह रूप का प्रभाव है कि कवि स्वयं को सुजान के चरणों पर डाल देता है और वह अशेष भाव से आत्म समर्पित है –

"सीस लाय, दृग छवाय, हिये पै बसाय राखौं,
इते मान मान आवै प्राननि मैं लै धरौं।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपोलनि सों मंजन कियौ करौं।
केलि–कला–कंदिर बिलास–निधि–मंदिर ये,
इन ही के बल हौं मनोज–सिंधु कों तरौं।
यातें घनआनंद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं।"[2]

'सुजान हित' छन्द संख्या– 34, 39, 41, 48, 52, 63, 97, 98, 101, 106, 112, 114, 115, 127, 132, 150, 153, 155, 168, 175, 181, 186, 204, 216, 230, 236, 353, 375, 405, 423 में कवि के मनोगत भावों का उद्घोष है। "घनआनंद ने नाना–विधि रूपों में अपनी रीझ और रूपासक्त मनोदशा का चित्रण किया है। आलंबन अपने सार्वनिक रूप सौन्दर्य की अधिकता के कारण आश्रय के मनोदशा में उतर आया है। आश्रय की रूप–लिप्सा परम रूपासक्ति मोह और मधुर प्रणय भाव में परिणित हो जाती है। रूप के मनेगत प्रभाव को शत–शत रूपों में व्यक्त कर घनआनंद ने अपनी निजी सौन्दर्य चेतना और रूप लिप्सा का ही परिचय दिया है। मन को उस

---

1. सुजान हित – 48
2. सुजान हित – 205

सौन्दर्य की राशि पर तरह–तरह से लुटा–लुटा कर, रिझा–रिझाकर, वेच, वेचकर अपने अनोखे रिझवार होने का पूरा परिचय दिया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि रूप का प्रभाव कवि ने शत–शत रूपों में शत–शत विधियों से व्यक्त किया है। अपनी वात को कहने के जाने कितने सीधे–टेढ़े ढंग घनआनंद को मालूम थे। हर ढंग उनका अपना था और हर अभिव्यक्ति परम्परायुक्त उनकी अपनी आन्तरिकता की सहृदयता से ओत–प्रोत।"[1]

कॉंति :– सुजान के प्रति प्रेम का मूल कारण था, प्रेयसी का अनिंद्य सौन्दर्य। घनानंद, सुजान की सुकुमारता, सहज सौन्दर्य पर मुग्ध थे, इसी कारण भावुक कवि ने उसके सौन्दर्य वर्णन में कोई कसर न छोड़ी। सुजान के रूप वर्णन में जहॉं एक ओर उसके सुकोमल अंगो का अलग–अलग वर्णन किया है, जैसे नेत्र, मुख, कपोल, अधर, भौंह, दसन, चिबुक, ग्रीवा, उदर, कटि वहीं अपेक्षाकृत अधिक संख्या में उसके रूप के प्रभाव का, मुख पर छाई, आकर्षित करने वाली कॉंति का भी वर्णन किया है।

सुजान की छवि, उसके मुख की कॉंति और भी सुरम्य हो उठती है, प्रेमी–नेत्र उस सौन्दर्य पान से कभी थकते नहीं। प्रेयसी जब मधुपान करती है तो मुख की कान्ति दीप्ति हो उठती है, कवि उस पर मुग्ध है –

"दृग छाकत हैं छबि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनंद भीजि हँसै सुलसै झुकि झुमति घूमति चौंकि चकै।
पल खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै बलकै डरू बकै।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै।"[2]

तरल रूप सौन्दर्य :– "घनानंद के रूप सौन्दर्य की आलोचना करते समय जो विशेष बात उभर कर आती है वह है– सौन्दर्य के प्रति उनकी व्यापक दृष्टि। सौन्दर्य का चित्रण तो विद्यापति, जायसी, सूर, तुलसी, देव, पद्माकर, बिहारी सभी कवियों ने सभी कालों में किया। विद्यापति के सौन्दर्य में तरलता मिलती है पर वह विशुद्ध मांसल तरलता है, जिसमें कवि राधा के उरोजों में अटक कर रह गया है। प्रकृति का सहारा लेकर ही वह अपने काव्य को आगे बढ़ा पाया। तदुपरान्त जायसी आदि ने सुन्दरता का वर्णन

---

1. घन आनंद – पृ0 सं0 114–115
2. सुजान हित – 100

किया और खूब किया परन्तु जायसी की अनुभूति विशुद्ध भारतीय अनुभूति नहीं थी। वे भी फारसी काव्य शैली से प्रभावित थे, नागमती की सुन्दरता का वर्णन नख–शिख परम्परा का है, जिसमें तरलता का नितान्त अभाव है। यदि कहीं थोड़ा–सा आभास मिलता है तो वह भी ब्रह्मत्व के कारण बोझिल हो गया है। सूर ने राधा–कृष्ण के सौन्दर्य का चित्रण बहुत ही सुन्दर शैली में किया, जिसे पढ़कर भक्तिभाव से आह्लादित हुआ जा सकता है, परन्तु यौवन के सौन्दर्य श्रृंगार पर आध्यात्म का आवरण चढ़ा हुआ है जिससे तरलता बाधित होती है। रीतिबद्ध कवियों ने सौन्दर्य के अनूठे चित्र प्रस्तुत किये हैं जिनमें बिहारी और मतिराम मुख्य हैं। इन कवियों के सौन्दर्य की यह विशेषता है कि नायिका के एक अंग को देखा, रूके सराहा, दूसरे अंग को भी देखा कुछ ठहरे और लिखा। इस प्रकार हर एक अंग को अलग–अलग फ्रेमों में फिट करके सराहा है। इससे रूप–सौन्दर्य की सामूहिकता को पकड़ पाने की असमर्थता इन कवियों में पायी जाती है। घनानंद रीतिकाल के ही कवि हैं, पर रीति स्वच्छन्द होने के कारण उन्होंने समस्त परम्परागत परम्पराओं को नकारा है और सौन्दर्य की तरलता की दीप्ति को उजागर करके हृदय–पक्ष की प्रधानता दिखाई है।"[1]

घनानंद के अनेक पदों में सुजान की मुस्कान, मधुर बातों और उसकी मनोहर छवि का चित्र चित्रित किया है। इससे उसके प्रेम की तीव्रता और सुजान के रूप तरलता का बोध होता है, जिसकी सुध मात्र ही प्रेमी को बेसुध कर देती है –

"वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनंद निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है।"[2]

---

1. घनानंद का रचना संसार – पृ0 सं0 85–86
2. प्रकीर्णक – 4

सुजान के तरल सौन्दर्य की विशेषता यह है कि वह कभी मिटता नहीं। साधारण चित्र पर जरा सा भी पानी पड़ जाये तो वह धुंधला हो जाता है, किन्तु भावुक कवि–नेत्रों अहर्निशि जल प्रवाहित होता रहता है, इस चित्र में कोई परिवर्तन नहीं होता –

"अंग–अंग–आभा–संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम–रोम छबि–हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाह रूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौं विचित्रताई मो चित–चितेरे की।"[1]

अंग दीप्ति :– सुजान के रूप सौन्दर्य वर्णन से अंग दीप्ति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, जिस सुजान–सौन्दर्य ने कवि को मदहोश बना रखा था, वह साधारण स्त्री न रही होगी। उसके प्रत्येक अंग से आभा फूट पड़ रही थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अंग दीप्ति तरलायित होने को है –

"झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि–फूलन की बरषा उर–ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।"[2]

सुजान का सम्पूर्ण अंग दीप्ति से प्रदीप्त है –

"छवि को सदन गोरो बदन, रूचिर भाल
रस निचुरत मीठी मृदु मुस्क्यानि मैं।
दसन–दमक, फैली हिये मोती माल, होति,
प्रिय सों लड़कि प्रेम–पगी बतरानि मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग–रंग ढुरि मुरि जानि मैं।"[3]

---

1. सुजान हित – 211

लज्जा :- लज्जा नारी का आभूषण है, अभिनय करना में निपुण, काम कला में दक्ष, अप्रतिम सौन्दर्य, श्रेष्ठ नर्तकी कभी भूल से घूंघट निकाल कर बैठ जाती है तो लगता है, साक्षात् लज्जा की वर्षा हो रही है–

"घूँघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहिं लाजति है बिन काजनि।
नैननि–बैननि मैं तिहि ऐन सुहोत कहाऽब सजे पट–साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे–भरी छबि–छाजनि।
देखत–देखत दीसि परै नहिं यौं बरसै घनआनंद लाजनि।"[1]

घनानंद ने लज्जा को मादक चितवन के साथ जोड़ा है–

(क) "लाजनि लपेटी चितवन भेद भाय–भरी,
लसति ललित लोल–चख–तिरछानि मैं।"[2]

(ख) चंचल बिसाल नैन,
लाज भीजियै चितौन।"[3]

(ग) बड़ी–बड़ी अँखियानि मैं अंजन–रेख,
लजीली चितौनी हियो रस पागै।"[4]

यौवनोन्माद :- कवि घनानंद ने अंगदीप्ति और लज्जा के समान ही यौवन और उसकी मदमस्त सुजान के सौन्दर्य को कवि–नेत्रों ने जब से देखा उस सौन्दर्य उन्माद को बार–बार देखना चाहते हैं –

"मृदु मूरति लाड़–दुलार–भरी अंग अंग बिराजति रंगमई।
घनआनंद जोबन–माती दसा छबि ताकत ही मति छाक छई।
बसि प्रान सलोनी सुजान रही चित पै हित–हेरनि छाप दई।
वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कैं हटतार भई।"[5]

---

1. सुजान हित – 174
2. प्रकीर्णक – 1
3. सुजान हित – 31
4. सुजान हित – 362
5. सुजान हित – 153

ईश्वर जिसे रूप देता है, रूप यौवन के कारण गुमान हो जाना स्वभाविक है। सुजान रूप गर्विता नारी थी, रूप का अभिमान मनोवैज्ञानिक तथ्य है, इस यौवनोन्माद का कवि ने कई रूपों मे चित्रित किया है, कहीं पर रूप यौवन को दीवाली के अवसर में जोशीला जुआरी कहा है –

"रूप–खिलार दिवारी कियें,
नित जोबन छाकि न सूध निहारै।
नैननि सैन छलैं चित सों,
वित–चाव भरयो निज दाव विचारै।"[1]

घनानंद ने सुजान से प्रेम किया था, उसने यौवन और सौन्दर्य पर मुग्ध थे। सौन्दर्य के प्रति आसक्त होना पुरूषोचित मनोविज्ञान है, पर कवि ने जिस तरह से सुजान के सौन्दर्य का वर्णन किया है, ऐसा प्रतीत होता है कि दरबार के सभी लोग सुजान के रूप आसक्त थे। रूप गर्विता सुजान के यौवनोन्माद के कुछ दृश्य इस प्रकार हैं –

(क) "रूप लाड़–जोबन–गरूर चोप करक सों,
अनखि अनौखी तान गावै लै मिहीं सुरै।"[2]

(ख) जोवन गहेली अलवेली अति ही नवेली,
हेली ह्वै सुरति बेली आँचर टरै–टरी।"[3]

कवि घनानंद ने सुजान के अंग प्रत्यंग तथा यौवन की उन्मत्ता का खुला चित्रण प्रस्तुत किया है। रूप गर्विता के स्तनों का अत्यन्त सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है–

"अंगनि पानिप–ओप खरी, निखरी नवजोबन की सुथराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे–भरी छतिया–उथराई।
जान–महा–गरूवे–गुन मैं घनआनंद हेरि रत्यौ थुथराई।
पैने कटाछनि ओज मनोज़ के बानन बीच बिंधी मुथराई।"[4]

---

1. सुजान हित – 181
2. सुजान हित – 98
3. सुजान हित – 176
4. सुजान हित – 347

<u>अन्तः सौन्दर्य</u> :– घनानन्द का काव्य अर्न्तमुखी काव्य है, उन्होंने सुजान के रूप सौन्दर्य, यौवनोन्माद का सहज, सूक्ष्म झलक को मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है। डॉ0 सावित्री सिन्हा के अनुसार–

"घनानन्द के प्रतिपाद में अन्तर्वृत्ति का निरूपण अधिक है। इसलिए सहजता पूर्ण चलते–फिरते चित्र वे अधिक नहीं खींच पाये हैं। उनमें सौन्दर्य का चित्रण भंगिमापूर्ण, रंगमय और रससिक्त हैं, परन्तु उनमें आलम्वन के अंग–प्रत्यंगों का चित्रण न होकर उसके तरल सौन्दर्य का अंकन है। अंग–प्रत्यंग में झलकते हुए लावण्य की अभिव्यक्ति है जो लक्षित चित्र–योजना के क्षेत्र में बड़ी समर्थ बन पड़ी है।"

कुछ छन्दों में सुजान के स्वभाव का भी चित्रण किया है, एक ओर सुजान को कठोर, निर्मोही, निष्ठुर कहा गया है, इस तरह के वर्णन केवल व्यथा वर्णन में ही हैं। प्रेमी की दृष्टि कभी भी प्रेयसी के दोषों को नहीं देखती है। भावुक प्रेमी कवि ने सुजान को अन्तः दृष्टि से देखा था–

"रूप–गुन–मद–उन्मद नेह–तेह–भरे,
छल–बल–आतुरी चटक–चातुरी पढ़े।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत नेकौ,
प्रानन सो खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन–कंज–खंजन–कुरंग मान–भंग करैं,
सींचे घनआनंद खुले सकोच सों मढ़े।
पैनें नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लिये छाती पै रहै चढ़े।"[1]

घनानंद ने सुजान के स्वभाव के विषय में छन्द बहुत कम लिखे हैं। एक ओर अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन है तो दूसरी ओर स्वभावगत निष्ठुरता का वर्णन है। कुछ चित्र और जिससे स्वभाव का परिचय प्राप्त होता है –

---

1. सुजान हित – 52

"कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत और।
मिलौ सब रंग कहुँ नहिं संग, तिहारी तरंग तकें मति बौरै।
गढ़ौ बतियानि, मढ़ौ घतियानि, डढ़ौ छतियानि, निदान की ठौरें।
महा छल छाय, खुलै हौ बनाय, कितै घनआनंद। चातक दौरै।"[1]

सुजान सौन्दर्य का विवेचन करने पर एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि घनानंद ने रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किया। प्रेयसी सुजान के अंग प्रत्यंग का चित्रण खुल कर किया, उन्होंने प्रचलित परम्पराओं से अलग हटकर सारे चित्र चित्रित किये। सौन्दर्य चित्रण में नई सोंच थी, वर्णन के रंग अलग और नये थे, सौन्दर्य के प्रति अन्तर्दृष्टि के साथ ही साथ व्यापक दृष्टिकोण था।

"उनकी सौन्दर्यपरक दृष्टि भाव-भक्ति है, बुद्धि बोधित नहीं। इसी कारण आन्तरिकता से युक्त उनका सौन्दर्य चित्रण एक ऐसा तारल्य प्रस्तुत करता है, जो अपनी अनूठी चमक से देदीप्यमान हो उठा है, मांसलता उसे छू भी नहीं पाई।"[2]

बोधा के काव्य में रूप सौन्दर्य

बोधा ने सुभान से प्रेम किया, उसी के लिए राज्य से निष्कासित भी किए गये "विरहवारीश" सुभान के लिए ही लिखी और राजा ने अतिशय प्रसन्न होकर 'सुभान' के साथ रहने का आदेश दे दिया। इन तमाम बातों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि का हृदय जिस पर मर मिटा वह कोई साधारण स्त्री न रही होगी, निश्चय ही वह रूपसि-सौन्दर्य की ऐसी स्वामिनी रही होगी कि जो देखता रहा, बस उसी का हो गया होगा। 'सुभान' के कारण बोधा रीतिमुक्त धारा के कवि बने, वह कवित्त प्रेरणा थी, कवि का कवितात्व थी, ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के सौन्दर्य का विवेचन होना ही चाहिए। बोधा ने "इश्कनामा" में 'सुभान' के सौन्दर्य का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है तो "विरहवारीश" में लीलावती और कामकन्दला के सौन्दर्य को कथात्मक रूप दिया है, लीलावती-कामकन्दला

---

1. सुजान हित – 406.
2. घनानंद का रचना संसार – पृ0 सं0 95

के सौन्दर्य में सुभान का सौन्दर्य प्रच्छन्न है क्योंकि ये दोनों तो आलम्बन थीं माधव (बोधा) तो आश्रय हैं। प्रेयसी के रूप का पान करके ही कवि ने नायिका भेद लिखा है– कुन्दन सा दमकता रूप, गोल मुखाकृति, विशाल नेत्र, ऊंची नासिका, बिज्जु सरीखे दाँत, लम्बे घने केश–यही बनता है सुभान का सौन्दर्य। बोधा ने सुभान के अंग–प्रत्यंग का मोहक चित्रण प्रस्तुत किया है –

भाल :– सुभान का माथा रोली से इस तरह प्रतिभासित हो रहा था कि लघु सूर्य ही उपस्थित हो गया हो, माँग में रखी हुई बेंदी, वीर वहूटियों का भ्रम उत्पन्न कर रही है –

"देव दुआरे निहारि खड़ी मृगनयनी करै रवि की छबि छोटी।
हाथ में मालतीमाल लियें चली भीतरैं ताहि गुसाईं अंगोही।
पाइन ते सिख लौं लखि कै कवि बोधा मजा बरनी यक छोटी।
भाल में रोरी की बेंदी लसी है ससी में लसी मनो बीर बहोटी।"[1]

कवि ने 'सुभान' में प्रारम्भ से सपत्नीक भाव देखा है इसी कारण भरी माँग की चर्चा भाल के साथ चित्रित की है।

केश :– केश राशि ऐसी कि सर्प का भ्रम –

"फन सम अयन पूंछ सम जुलफैं मनि मुक्तन बिच राजै।
चूमत ब्याल सरह ससि कों जनु उभै अमीरस काजै।
बिहँसत परत हरत मन सबके कुर्वां कपोलन माहीं।
मनौ कलिंदी तीर नीर में भ्रमरी जुग परि जाहीं।"[2]

नेत्र :– बोधा ने नख शिख वर्णन करते समय उपमानों का विशद सहारा लिया, कजरारे नेत्र ऐसे रक्ताभ हैं, जो बरबर आकृष्ट कर लेते हैं –

---

1. इश्कनामा – 9/49
2. विरहवारीश – 29/10

"कारे अनियारे बड़वारे रतनारे दृगधारे।

अनिखंजन मृगमीन कमल दल पानिप जलसुत बारे।

मुकुर कपोल नासिका सुकते हैं कछु अधिक सुहाई।

अधर सधर विवाफल वारे विहँसनि ताहि लजाई।"[1]

बोधा ने नेत्रों का सौन्दर्य वर्णन करने के साथ ही साथ नेत्रों द्वारा सम्पादित दूत्य कर्म भी प्रस्तुत किया है, प्रेमी लोग, प्रेम को तो छिपा ले जायं, लेकिन नेत्र, गुप्त भावनाओं को बिल्कुल स्पष्ट कर देते हैं –

"कीजै इकंत हा तंतमतो मद प्रेम छिपाइबे को सब नेत हैं।

आँसि मढ़ौ उरअंतर है तऊ ना बचिहैं चलिकै सुधि लेत हैं।

बोधा बिरंचि बिचरि रहे सबके जिय की जे न जी के सचेत हैं।

देह में नेहनसा न करैं दृग दूत दसा सब सों कहि देत हैं।"[2]

प्रिया के नेत्रों में इतनी मादकता, रम्यता एवं आकर्षण है कि सारी वेदना कष्ट को समाप्त करने क्षमता और सामर्थ्य हमेशा ही इनमें वनी रहती है –

"विटपन अपनो दरद सुनावै। जब चलि छाँह किसी की आवै।

नाम आपने प्रिय को लेही। यों पुनि ताहि उरहनो देही।

हो हिरनाक्षी प्रिया हमारी। ससिवत बदन तज्यो सुकुमारी।

मृगसावक लों तुव ये लोचन। कहाँ रही दुरि हे दुखमोचन।"[3]

श्याम, श्वेत, रतनार नेत्र, शृंगार का मुख्य अंग हैं, नायक को आकृष्ट करने की कला में ये पारंगत तो है ही, इनकी मारक शक्ति भी अचूक है। एक बार नायिका के नेत्रों से नेत्र मिल जाने पर नायक व्यथित हो जाता है। हिरणी की तुलना नेत्रों से सर्वथा उचित ही है क्योंकि हिरण, जंगल में निच्छल भाव से विचरण करते हैं तो नेत्र भी कान को छूने का प्रयास करते हैं –

---

1. विरहवारीश – 29/8
2. विरहवारीश – 75/77
3. विरहवारीश – 92/9–10

"कारे सेत बर्न अनियारे भाल ही सृँगार,

मारत जुरे तें ऐसे समराधिकारी हैं।

रहत सुरंग चाहैं सुर बहु नायकन,

नित नौ केलि करिबे कों हितकारी हैं।

बोधा कवि चलत न मारग निबाह नाहि,

नखर पाइ मारे चाह व्यभिचारी हैं।

दृग मृग एक रीति सों बखाने माने वे तौ,

कानन बिहारी पेऊ कानन बिहारी हैं।"[1]

<u>कटाक्ष</u> :- वाणी का व्यापार जहाँ समाप्त हो जाता है वहाँ कटाक्ष का क्रिया व्यापार प्रारम्भ होता है ; यह ऐसा कायिक अनुभाव है कि प्रभावोत्पादकता के साथ गम्भीर से गम्भीर बात कही जा सकती है -

बोधा के हृदय में सुभान के कटाक्ष पैठ बना गये हैं, उसे इस बात की आकाँक्षा रहती है कि वह कटाक्षों से बेधित होता रहे, -

"प्रीति की पाती प्रतीत कुँड़ी दृढ़ताई के घोटन घोटि बनावै।

मैन मजेमन सों रगरै चितचाह को पानी घनो सरसावै।

बोधा कटाछन की मिरचैं दिल साफी सनेह कटोरे हलावै।

मोदित होइ सुखी तबहि जब रंग में भावती भंग पिआवै।।"[2]

जिसके हृदय में मृगनयनी के कटाक्ष शर प्रविष्ट हो जाते हैं वह ऐसी मर्मान्तक पीड़ा से व्यथित हो जाता है, अपनी बात न किसी से कह सकता है और न ही किसी की बात सुनने की स्थिति में रहता है। वास्तव में ये गूँगे की गुड़ की तरह है जो स्वाद तो समझ सकता है, पर व्यक्त करने मैं असमर्थ रहता है।

"बातनहिं समुझावैं सबै वह पीर हमारी न पावत कोई।

का करै मान सिखापन सो जिय जाही को आपने हाथ न होई।

---

1. विरहवारीश - 101/28
2. इश्कनामा - 18/107

बोधा कदाचित जानै वहै यह मो हिय में जिन वेदन बोई।

चाव कचोट कटाक्षन की तन जाके लगी मन जानत सोई।

बोधा सुभान हितू सों कही या दिलंदर की को सही करि मानत।

ता मृगनैनी की चारू चितौनि चुभी चित में चित सो पहचानत।

तासों बिछोह दई ने करयो तो कहौ अब कैसे मैं धीरज आनत।

जानत हैं सबहीं समझाय पै भावती के गुनकों नहि जानत।"[1]

<u>भौंह</u> :– इन्द्रधनुषी कमान लिए हुए भौंहो को कवि बोधा ने इस प्रकार उपमानित किया है– त्रेता युग में एक धनुष की प्रत्यंचा को श्री राम ने चढ़ाया था, भले ही परशुराम का कोपभाजन बनना पड़ा, द्वापर में धनन्जय ने प्रत्यंचा कसी, कलयुग में भौंह रूप प्रत्यंचा भावुक हृदयों में खिंचती दिखायी दे रही है–

"त्रेता मांहि साजो एक धनु भृगुनंद सोई,

लीन्हयो रघुनाथ ने असुर बरियाने में।

साजे द्वै धनुष नीके सीताजू के बालकन,

कीन्हे जुद्ध भारी अस्वमेघ जज्ञ ठाने में।

बोधा कवि द्वापर में धनुष धनंजै साजो,

करन के कारन कठोर सर ताने में।

कलऊ में कीन्हीं महाबीरन के मारबे कों,

कठिन कमानैं तेरी भौंह ये जमाने में।"[2]

इन्द्र पीनाक की सदृश भौंह अरसिकों के लिए तुच्छ है, लेकिन रसिक तो इनका शिकार हो ही जाता है –

"परै मोतिया जो गिरै बूद भारी।

मची स्वेद की कीच यों देह सारी।

तहाँ इन्द्रपीनाक सी बांक भौंहे।

तिन्हों के परे खौर भैरेख सौहें।"[3]

---

1. विरहवारीश – 157/60–61
2. विरहवारीश – 100/26
3. विरहवारीश – 118/36

नाक :– साहित्य में नाक के अनेक उपमान प्रस्तुत किये गये हैं, बोधा के साहित्य में पूर्ववर्त्ती कवियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, क्योंकि सौन्दर्य चित्रण में उन्होंने चली आ रही परिपाटी का ही अनुधावन किया है। नाक को देख तोता, नायिका की तरफ आकृष्ट हो गया तभी वनचारी न होकर कपोलचारी बन गया –

"मुकुर कपोल गोल गदरारे गाढ़े परीं नवीनी।
जनु ससि ग्रसत राहु रस कारन गरूड़ अंगीठी दीनी।
लखिनासा को अजब तमासा सुवा सघन बन सेवै।
बिद्रम गलित भए अधरा लखि छबि प्रबाल नहिं देवै।"[1]

दाँत :– नायिका के दाँत अनार की भाँति परिलक्षित होते हैं, उनकी चमक विद्युत की सृदश चमकती प्रतिभासित होती है। जैसे वह हँसती है, उसकी मादक मुस्कान सहृदयों का आकृष्ट कर लेती है –

"अये हिरनाक्षी तू तौहिस करे हैं स्याह
विद्रम गलित होत दर्पन तरकि गो।
पन्नम पतालसिह सेवत कदलिकुंज
चकवाबियोगी भयो बेल तौ भरकि गो।
बोधा कवि कोकिला फिरत तो बसंत की कों
दंत काढ़े मंत सुवा बन कों सरकि गो।"[2]

दन्त पंक्ति नायक की हों या नायिका की, सौन्दर्य शास्त्र में विशेष महत्त्व रखती हैं। अनार की पंक्ति बीज इस बात के लिए धन्य हो गयी कि नायिका के दाँत उसके सदृश हैं –

"दाड़िम बीज लजत लखि रदछवि पंचानन रव भारी।
डाढ़ी लसत सुठार लाल की जैसी गोल सुपारी।
सालिकरामसिला पुनि कहियेहूरिनगर्भ अति नीकी।
चिबुकबिंदु उपमा तौ लखियत जयों बेंदी रोरी की।"[3]

---

1. विरहवारीश – 101/30
2. विरहवारीश – 102/31
3. विरहवारीश – 29/9

चिबुक :- नायिका के चिबुक में गढ्ढा, रोचक, रम्य एवं चित्ताकर्षक है, मुख मण्डल को देखने वाले निर्निमेष देखते ही रह जाते हैं –

"तैं तो हरी हिर्न ओर हिर्न हेरयो हरि ओर
हरि हेरयो बिधि ओर गुसा यों विचारयो है।
तीक्षन कटाक्ष याके विष सों सँवारे जाने,
रंचक चितौन में सुरंग कियो कारयो है।
बोधा कवि जानिकै सरोस हरिजू को विधि,
ठौर–ठौर सुधा को निवास यौ निहारयो है।
चिबुक न तेरो बीर अमृत की चाँड विधै,
चन्द्रमा के धोखे मुख चन्द्र छेदि डारयो है।"[1]

कामकन्दला की ठोड़ी पके आम की तरह है, काला तिल सुषमा को द्विगुणित कर रहा है, ग्रीवा को सुराही की उपमा देने से ग्रीवा का अपमान है, हाँ कबूतर की उपमा दी जाये तो कुछ उचित है –

"ठोढ़ी पके आम की बानिक तिल अलिछौन बिराजै।
अल्प भार लचि जात ग्रीव तब मस्त कबूतर लाजै।[2]

कान :- कामकन्दला के कान अति सुन्दर हैं, आभूषणों से सुसज्जित कान इस तरह दिखाई दे रहे हैं, मानो शरीर रूपी रथ के दो पहिये हों। आभूषण इस बात के लिए धन्य हो गये कि उनको कामकन्दला के कानों में स्थान मिला –

"अति सुबेस सुखमासदन स्रवन तिहारे जोइ।
जनौं एक रथ के लसत चक्र आयँ ये दोइ।"[3]

रोमावलि :- स्त्री सौन्दर्य में त्रिवलय का बहुत अधिक महत्त्व है, रोमावलि नायक और नायिका दोनों के सौन्दर्य में चारचाँद लगा देती है। बोधा, सौन्दर्य शास्त्र के मर्मज्ञ थे,

---

1. विरहवारीश – 102/33
2. विरहवारीश – 102/34
3. विरहवारीश – 100/27

इसी कारण से तो रीतिबद्ध धारा का अनुसरण न करके रीतिमुक्त धारा में उपमानों की पंक्ति लगा दी –

"उर सम सिला उर कटि केहरि नाभि बिउर सम गाई।
दृग खंजन रोमावलि ब्याली निकसि सुधित ह्वै आई।
डोलत लखि मुक्ता नासा में गरूड़ पक्ष के धोखे।
उर कपाट की संधि रही जनु फुफु मारत डर ओखे।"[1]

उरोज :– स्त्री का स्त्रीत्व कुचों में है तो पुरूषों के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु। बोधा, उरोज में नारंगी फल देखते हैं, इसके मूल में भावना यह है कि रीतिबद्ध कवियों की अश्लीलता से अपने को बचाये रखा –

"जथा नरंगी रसमी तिहि समान कुच दोइ।
पूरब पुन्यन ते पुरूष ग्रहन करत हैं कोइ।"[2]

तन्वगी नायिका के कुच श्रीफल की तरह कठोर हैं, कठोरता यदि कहीं है तो सुडौल उन्नत द्वय श्रीफलों में। नायिका के सौन्दर्य को द्विगुणति करने वाले इनमें अजीब आकर्षण है –

"कनकलता की बनिक बाहु बिय अँगुरी चंपकली सी।
कीन्हीं नखन लखत बहु लज्जित नखतन की अवली सी।
हाटकबरन कठिन उन्नत कुच गोल गोल गदकारे।
कमल बेल गेंदा नारंगी चक्रवाक जुग वारे
बिबि कुच बीच सकीन संधि में मन मतंग उरझानो।
सकैं न निकसि मृनालतार तहँ निकसि पार क्यों जानो।"[3]

उन्नत शैल श्रृंग के समान कम्पित उरोज काम का आधार हैं, माधव का मन कामकन्दला के इसी सौन्दर्य पर न्यौछावर है, वज्रादपि ये सँन्यासियों के व्रत को तोड़ने की सामार्थ्य रखते हैं –

"परै पायँते ओर से वज्र भारी।
धरा सी तहाँ जोर धड़कै हि नारी।

---

1. विरहवारीश – 29/12
2. विरहवारीश 61/8
3. विरहवारीश 102/35

कँपे सैल से पीन दोऊ उरोज।

बली सों चली है दुरयो तो मनोजं।"[1]

रीतिबद्ध कवियों से अलग बोधा ने उरोज को पुष्प से उपमानित किया है, तभी तो भ्रमर रसपान में तल्लीन था, पवन बमुश्किल भ्रमर को उड़ा सका –

"चंचरीक चातुर्य चित कुच पर बैठो आय।

काटै उर पीड़ा बढ़ै सकै न ताहि उड़ाय।

अदा जात कर के छुए मुख बोले सुर जाय।

खैंच पवन कुचसोत सों दीन्हों भृंग उड़ाय।"[2]

नायिका भ्रमर के बैठते ही भयभीत हुई सहायता के लिए सखियों को पुकार रही थी, लेकिन किसी ने नहीं सुना। पवन देवता ने भ्रमर को रसपान से विलग किया –

"चंचरीक चित चोर बैठो तिय के कुचन पर।

काढ़त कीन्हों जोर ताहि उड़ायो जुक्ति करि।

उर की मेटी पीर सुर औ गति राखी दुवौ।

अस्तन सोत समीर खेंचि उड़ायो भृंग कों।"[3]

<u>कटि</u> :– कवियों ने कटि की अनेक उपमाएं दी हैं, लेकिन कोई भी उपमा सटीक नहीं बैठ रही, अतः बोधा ने नायिक से प्रश्न ज्ञान किया कि कटि की क्या उपमा दी जाये –

"कमल मृनालहू तें दृगन महीन छीन,

जोगी कैसी आसा पाइ रूप मानियतु है।

सुमन सुगंध कवि अंकल अरथ जैसे,

गनित को भेद साँचियो बखानियतु है।

बोधा कवि सूत के प्रवान ब्रह्मज्ञान जैसे,

चलत हलत तैसे यों प्रमानियतु है।

---

1. विरहवारीश – 118/37
2. विरहवारीश – 107/15,16
3. विरहवारीश – 110/40–41

"दृष्टि में परै ना यों अदृष्टि कटि तेरी प्यारी,

हैहैं तो विसेष उनमान जानियतु है।"[1]

नितम्ब :– कामकन्दला के नितम्ब केले के तरू को भी सौन्दर्य में लज्जित कर रहे हैं –

"गुरू नितंब डर है गदकारी लखि कदली तरू लाजै।"[2]

पिंडली, चरण नाखून :– कामकन्दला के सुरम्य पिंडली पर ही सुन्दर, कोमल चरण स्थापित हैं। चरण में सफेद नख हीरा की चमक को पराजित कर रहे हैं तो एड़ी में लगा हुआ आलता सुषमा में वृद्धि करता है –

"पिंडरी गुल्फ सुढार सुल्क अति चरन अंगुली राजै।

लखियतु नखन रूप लखि अवली कनक जड़े जनु हीरा।

पूरन भा की खनखन बाँकी एँड़ी ललित कहीरा।"[3]

सुभान के चरण तो कमल हैं, इसी कारण इन चरणों में मन रूपी भ्रमर हमेशा भ्रमरित होते रहते हैं, वैसे सुभान के चरण तो कमल से भी श्रेष्ठ हैं क्योंकि कमल प्रातः खिलता है, सूर्य के अस्ताचल जाते ही मुरझा जाता है, लेकिन चरण हमेशा दमकते रहते हैं –

"फल चारि रहैं तिन आगे खरे भृकुटी परखैं चित चायन में।

जेहि ओर ढरें उगरैं तिनको जिनको पठवैं तिन्हैं जाय नमें।

कवि बोधा सरोज रहैं निसि बासर फूले सुभान सुभायन में।

मन भृंग अहे भहरात कहा बसु रे बसु गोरी के पायन में।"[4]

बोधा 'सुभान' के अति निकटस्थ थे, उसके अद्वितीय सौन्दर्य पर मुग्ध थे, प्रभावित थे, 'सुभान' के पूरे रूप को कामकन्दला या लीलावती में उतारने का प्रयास किया है। उसका दमकता हुआ कंचन के समान गौर वर्ण सोने के रंग जैसी पीठ, श्रेष्ठ रोमवली भला किसे न मुग्ध कर ले –

---

1. विरहवारीश – 103/37
2. विरहवारीश – 103/38
3. विरहवारीश – 103/38
4. इश्कनामा – 10/55

"चंपक कमल चंद्रिका झूठी रंग पर वारौं सोनो।
रतनाकर की लहर निकट कटि रेखा तीननि मानो।
कनक ईंट सी पीठ डीठियतु कनक पिंडी उन लोनी।
नाभी बर रोमावलि ब्याली कै मनमथ्थ मथोनी।"[1]

<u>वस्त्र</u> :– लीलावती का घाँघरा और ओढ़नी तारों से जड़ित हैं, उसके वस्त्र उसके व्यक्तित्व को प्रभावोत्पादक रूप प्रदान कर रहे हैं –

"घूम घुमारिय घाँघरिया सजि। बाड़क ओढ़नि ओढ़ चलै लजि।।
फूल भरी गजरा पहिरै उर। माधौ त्यों सुमिरत्त हरीहर।"[2]

"चोली सारी घांघरो तरक समय सब देखि। तरकस सत्त मनोज का कामकंदला लेखि।।"[3]

<u>चाल</u> :– लीलावती रति के समान सुन्दर हैं, वह सुकुमारी जब ठसक भरी चाल से चलती है तो नवयुवक उसकी तरफ देखते रह जाते हैं,

"यों कटि मोरत छाँह निहारत। ओढ़नि बारहि बार सम्हारत।
केसरआर दिए सुकुमारिय। मैनमयी झलकै नवनारिय।
तेवर यों झलकाय चलै जब। छैल हियो करखै निरखै तब।"[4]

<u>आभूषण</u> :– आभूषणों का महत्व सर्वविदित है, कुरूप स्त्री भी सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित होकर रूपसी दिखने लगती है, कामकन्दला तो साक्षात् सौन्दर्य का प्रतिरूप है, उसने अंगराग लगाकर सारे शरीर को शोभित कर लिया, केशों को जूड़े से गुम्फित किया, आँखों में काजल लगाया, सोलह श्रृंगार करके वह बारह वर्ष की रूपसी दिखने लगी –

"अंगराग भूषन विबिध, मुखवास राग,
केसपास मंजन यों अंजन सरस की।

---

1. विरहवारीश – 103/36
2. विरहवारीश – 47/49
3. विरहवारीश – 104/40
4. विरहवारीश – 47/47,48

अमल सुवास लोल लोचन चितौन चारू

हँसन लसन पाँव जावक परस की।

गवन करी लों बानी कोकिला प्रवीन अति,

पूरन सनेह चाह प्यारे के दरस की।

सोरहो सृंगार साजै सहित विलास राजै

कंदला अखाड़े बीच बारह बरस की।"[1]

काम कंदला ने वेणी में शीशफूल को लगाया, नाक में वेसर पँहनी, कण्ठमाला गले में पहनी, भुजाओं को बाजूबन्द से सुशोभित किया, स्वर्णिम ककना, जटित चूड़ियों से कलाइयों को सौन्दर्य प्रदान किया, छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त करधनी पहनी, बिछिया पहनते ही पैरों का सौन्दर्य बढ़ गया - इस तरह से आभूषणों से सुशोभित वह दीपमालिका सी प्रतिभासित हो रही थी -

"बेनी सीसफूल बीजबेनिया में सिरमौर,

बेसर तरौना केसपास अँधियारी सी।

कंठी कंठमाला भुजबंध बरा बाजूबंद,

ककना पटेला चूरी रत्नचौक जारी सी।

चोटीबंद डोरी क्षुद्रघंटिका नई निहार,

बिछिया अनौटा बाँक सुखमा की वारी सी।

राजा कामसैन के अखाड़े कंदला कों पाय,

माधो चकचोधि रहयो चाहिकै दिवारी सी।"[2]

कामकन्दला के माथे में बिन्दी और माँग में बेंदी इस तरह से सौन्दर्य श्री को प्राप्त हो रही थी मानो चतु र्दिक बीरबहूटी की पंक्तियाँ विखर गई हों -

"लसल वाल के भाल में रोरी बिंद रसाल।

मनो सहद ससि में बसी बीर वहूटी लाल।।"[3]

---

1. विरहवारीश - 103/39
2. विरहवारीश - 104/41
3. विरहवारीश - 101/29

मोतियों की माल बगुले की पंक्ति के समान सुशोभित है –

"मुक्तामाल हिये पर सोहैं उपमा एक लसी है।

जनु पावस घनस्याम मध्य ह्वै बगपंगत निकसी है।

गुंजामाल लाल लालन के उर पै रूरकत ताकी।

जनु उफनाति हिये मोहन के रति बृषभान सुता की।"[1]

बोधा ने कहीं कहीं सौन्दर्य वर्णन में रीतिबद्ध कवियों की परिपाटी – नखसिख सौन्दर्य वर्णन को अनुसरित किया है –

"है द्विजराज मुखी सुमुखी अति। पीन कुचाहं गरू गज की गति।।

है हरिनाक्षिय बाल प्रबीनिय। त्यों द्युति दामिनि की करि छीनिय।।

पन्नग मेचक सी बर बेनिय। कुंदन लौं झलकै सुख देनिय।।

है नवली अति प्रीति भरी मिय। तीक्षन भौंह कटाक्ष करयो बिय।।

खेलत सीउलता मग डोलहि। कंचुकि आप कसै अरू खोलहि।।

हार उतारि हिये पहिरै पुनि। पाँव धरै लहि त्यों नउरा धुनि।।

हार सिंगार सिंगारहि सुन्दर। क्यों न बसै तिय छैल दिलंदर।।"[2]

रीतिकालिक कवि, नायिका सौन्दर्य में अपनी पैठ बनाये रहे अंग–प्रत्यंग के अनेक उपमान प्रस्तुत किये गये लेकिन कम ही कवियों का ध्यान वाणी–वर्णन की ओर गया। रीति मुक्त कवि ने कन्दला के माध्यम से इस कमी को सम्पूरित करने का सत्प्रयास किया। कन्दला की वाणी में सितार की मधुर ध्वनि सुनाई देती है तो ढोल की मादक गुमक प्रतिध्वनि होती है –

"तूतिया मुनैया सुआ सारिका कपोत हंस,

कोकिला मयूर अलि अवली बखानी है।

चक्रवाक खंजन पपीहा मैना चानडूल,

दहिये दरेबा खूब खूमरी बिकानी है।

बोधा कबि स्वर न तंबूराहू को ठहरात,

जनऊ तरंग–भुहयंग वाकुहानी है।

ढोल की गुमक बीन बाँसुरी सितार वारे,

कंदला तिया की ऐसी अति मृदु बानी है।"[3]

बोधा ने सुभान–कामकंदला एवं लीलावती के सौन्दर्य–वर्णन के साथ ही अपनी लेखनी से पुरूष सौन्दर्य को भी चित्रित करने की दक्षता प्रस्तुत की। माधव के सिर पीले रंग की पगड़ी है तो काले–घुंघराले केश भ्रमर होने का भ्रम पैदा कर देते हैं, गले में फूलों का हार सुशोभित है तो कुमकुम का त्रिपुण्ड माथे पर। पीताम्बर से कमर का सौन्दर्य द्विगुणित हो रहा है। कानों में सुन्दर कुण्डल हैं तो नेत्रों में प्रेम की मादकता –

"सिर जर्द पाग विलसत सुबेस। रहि जुल्फ जुल्फ घुंघरारि केस।
उर सुमनहार तुर्रा जटीन। कुमकुम त्रिपुंड भृकुटी पटीन।
कटि पीत पट तुम देख। कछनी सुरंग बिसेख।
गल बीच मुक्तामाल। पग पाउड़ी लहि लाल।
जगत तड़ित गजरा जु हाथ। चंपक बरन तन रतिनाथ।
कुंडल लसत नवल सरूप। छबि कों देखि रीझत भूप।
कर में लसत लकुट सुरंग। झलकत प्रेम हिये उतंग।
अरून कटाक्ष भरे सनेह। कर में बीन अति छबि देह।"[1]

रीतिमुक्त 'बोधा' कहीं–कहीं रीतिबद्ध कवियों से प्रभावित दिखते क्योंकि उन्होंने नायक–नायिका का सौन्दर्य वर्णन तो परम्परागत रूप से ही चित्रित किया साथ ही नायक एवं नायिका भेद प्रस्तुत करते हुए लक्षण भी बताते हैं, चार प्रकार के नायकों का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

"सस कुरंग कहिये बृषभ बहुरि तुरंगक जानि।
चारि भाँति वाला जथा नायक चारि बखानि।"[2]

पद्मिनी नायिका का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि कुन्दन की भाँति चमकती हुई उसकी देह होती है, विशाल नेत्र, लम्बे केश, मूँगे जैसे अधर, कोयल जैसी वाणी, नारंगी सदृश कुच, हंसनी जैसी चाल, शरीर से कमलनी जैसी सुगंध केलि में लज्जालु होती है –

---

1. विरहवारीश – 48/51–55
2. विरहवारीश – 73/57

"कारे सटाकरे वड़वारे कैंस जाके दोनों,

भृकुटि पिनाक देह कुन्दन सर गाई है

कौलदल लोचन विसाल मुख चन्द्रमा सा,

अधर प्रबाल बानी पिक सी सुहाई है।

बोधा कवि सुन्दर नारंगी सी सोहैं,

नख अरू हथेरी सुबास अति छाई है।

गवन मराल सुकुमार राखै सुद्ध तन,

धन्य ताके भाग्य जाने ऐसी बाल पाई है।

दीरघ केस कटाक्ष उरोज जंघा नितंब भनि।

लोचन रसना अधर लाल नख करत खार गनि।

सूक्षम तन अंगुली सुढार बानी हाटक हिय।

नासा उन्नत सकल सुभ्र बस्तर चित चाहिय।

सुकुमारि चारू चाहत सुमन देह सुगंध मराल गति।

लाज मनोज समय पद्मिनी लहै मति।"[1]

चित्रिणी नायिका का वर्णन करते हुए **'बोधा'** लिखते हैं कि वह चंचला मनोवृत्ति की गोरी, गर्वीली, घुघराले केशो वाली, कबूतर के समान गर्दन वाली, निरंतर सुन्दर वस्त्र आभूषण से सुसज्जित रहने वाली भीनी–भीनी सुगंध वाली होती है।

"चंचल चित परबीन सलज गोरी गुमान अति।

भारी भोंह कटाक्ष भाल घुंघरार केस मति।

केकीरव कृस अंग उरज जंघा नितंब बढ़ि।

सुरतहीन ग्रीवा कपोत साजत भूषन मढि।

चित चाह नहिं पीरे बसन मदन सहित सुकुमारि गनि।

लघु गंध देह छुंछुम कछू मनि कंठा चित्रिनी भनि।"[2]

---

1. विरह वारीश – 72/51–52
2. विरह वारीश – 72/53

संखिनी नायिका का चित्रण करते हुए बोधा लिखते हैं कि यह नायिका ऊँचे लम्बे शरीर वाली होती है, उस मनुष्य का दुर्भाग्य है जिसके साथ इसका विवाह सम्पन्न होता है–

"गोरे तन ऊँचे कठोर बानी आतुर गति।
नासा दृग सम केस देह दुरगंध कूरमति।
कुच नितंब अति पीन बसन भूषन अति चाहत।
जान न मौनसुजान प्रेम पालत नख बाहत।
अति चाहत सुरत निसंकगति जेहि संजोग यह गुन बसहि।
वरि जाय वाम संखिनी सो जो ललाट विधिना लिखहि।"[1]

हस्तिनी नायिका का करते हुए बोधा लिखते हैं कि इस नायिका के केश भूरे रंग के होते है, दीर्घ काया वाली यह नायिका गौर वर्णी तो होती है, लेकिन पूरे शरीर में बाल होते हैं, इसके शरीर से दुर्गन्ध आती है तथा विपरीत रति की कामना करने वाली होती है–

नासा उन्नत भाल केस रूखे दीरघ तन।
कोता गरदन नैन भूरि भोजन चाहत घन।
सम कुच जंघ नितंब बाँह लंबोदर जानहु।
गोरे तनबहु लोम मान अति कठिन बखानहु।
गति गयन्द आतुर मदन कूर सुरति विपरीत रति।
बल बृद्धि बुद्धि दुरगंध तुन अति ही रंग करिनी करति।" [2]

सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन

सुभान का सौन्दर्य कवि बोधा के हृदय में इतना घनीभूत हो गया था कि इस रूप–नद में उमड़ते उतराते रहे, तभी तो वे कह उठते हैं कि प्रेमिका का सौन्दर्य तभी सार्थक है, जब प्रेमी उसे देखते ही उमंगित हो जाये–

---

1. विरहवारीश – 73/54
2. विरहवारीश – 73/55

"कुनहदार अनियारो आछो सुखी करै दिल खूबों सों।
खिलवत खिन-खिन खूबीवारो राखै इस्क हबूबों सों।
मस्ताने प्रेम दिवाने जे तिन जाने मन मनसूबों सों।
कवि बोधा अरज सुबुंद हिये उन माहिरबां महबूबों सों।"[1]

<u>प्रभावोत्पादकता</u> :- प्रेम की पत्ती को हृदय रूपी शिला में पीस कर मन रूपी पानी में घोलकर कटाक्ष रूपी मिर्च डालकर समग्र सौन्दर्य भंग को पिला दिया गया, तभी आज तक कवि बोधा के मन-मस्तिष्क में सुभान का सौन्दर्य छाया हुआ है -

"प्रीति की पाती प्रतीति कुँड़ी दृढ़ताई के घोटन घोटि बनावै।
मैन मजेजन सों रगरैं चितचाह को पानी घनो सरसावै।
बोधा कटाछन की मिचै दिल साफी सनेह कटोरे हलावै।
मो दिल होइ सुखी तबहीं जब रंग में भावती भंग पिआवै।"[2]

काम कन्दला का बदन चन्द्रमा के समान सुख देने वाला है, तो चन्द्रमा की कलाओं की सदृश परिवर्तनशील है, तभी तो उसकी चमक नित प्रति कवि के अन्तस् में व्याप्त रहती है और कवि मन को सम्मोहित किये रहती है -

"मदन सदन प्रान प्यारी को बदन ताकों,
चाहि चाहि सुधाधर धीर न धरतु है।
रहै निसिवासर समान अकलंक उर,
संक सकलंक सोई मानि हहरतु है।
बोधा कवि नितप्रति नौतम कला कों धारि,
मास मास यौं ही उपहासनु मरतु है।
परवा तें पूनो लों सो जोरिबे करत तैसे,
पूनो तें कुहू लौं फेरि फोरिबो करतु है।"[3]

---

1. **इश्कनामा** - 6/32
2. **इश्कनामा** - 18/107
3. **विरहवारीश** - 100/25

माधव के हृदय में कामकन्दला का सौन्दर्य इस कदर व्याप्त है कि एक भी क्षण को वह विमुख नहीं हो सकता, जिस हिरनाक्षी के कटाक्ष से हृदय वेधित है वह इस सुख को छोड़कर और कहीं जा भी तो नहीं सकता –

"हेरि हिरनाक्षी हारो चारहू दिसा में भारी,
जिनके कटाक्षन सों पाहन सिला कटै।
तेऊ तो चुभै ना बोधा चक्र कुचकोरन के,
जोरन हितू कै कोऊ मुख सों कहा रटै।
सुन हे सुभान हियो हीरा ते सरस ता,
वियोग वज्र घाउन सों रंचक नहीं कटै।
खूबी के समाज ठौर देखि आयो यार,
पै ना दिलदार को या दरद कहूँ घटै।"[1]

यहाँ मैं एक बात स्पष्ट करना चाहूँगी कि सुभान का सौन्दर्य ही कवि के लिए प्रेरक तत्त्व रहा, उस सौन्दर्य से प्रभावित कवि ने काम कन्दला के सौन्दर्य की कल्पना की। सुभान न होती तो बोधा, कवि बनते ही नहीं।

<u>कान्ति</u> :- सुभान की कान्ति, बोधा के हृदय में समाहित है, तभी तो वह इससे अपने को अलग नहीं कर पाता। सुभान के सौन्दर्य का पान करके ही उसने काम कन्दला के रूप को वर्णित किया –

"काम कन्दला के लसत छावत इतो प्रकास।
जनु रवि सन्मुख आरसी कर कंपित आभास।"[2]

लीलावती की कान्ति माधव के हृदय में व्याप्त है तो माधव की कान्ति से लीलावती सम्मोहित है –

---

1. विरहवारीश – 157/65
2. विरहवारीश – 102/32

"जनु ससिसमूह मंदिर उदोत। सिवधाम सुभग जगमगत जोत।
नवबैस सबै सोहैं कुमारि। भयो मस्त माधवानल निहारि।
ते रहीं माधवा में समाय। छविनिधि अथाह में गोत खाय।"[1]

"अंकुर जोबन बाल सो सती रूप के गेह।
है माधो द्विज सों लगो जाको प्रेम सनेह।"[2]

तरल रूप सौन्दर्य

रीतिकालीन कवियों ने नायिकाओं के मांसल सौन्दर्य को चित्रित किया है, उनकी दृष्टि, रूप के स्थूल पर जमी रही। रीतिमुक्त, कवि घनानंद ने परम्परागत सौन्दर्य चित्रण से हटकर सौन्दर्यदीप्ति के पक्ष को प्रस्तुत किया है, जो पाठकों के हृदय को प्रभावित करता है। इसी परम्परा की पुनरूक्ति बोधा के काव्य में परिलक्षित होती है –

"जगमगात छबि जटित जवाहिर पन्नन जेब जनाई।
भाल तिलक सोभा लखि भा लहि केसरगंध सुहाई।
भृकुटी भवैं धनुष मदगंजन रंजन निकट लसी है।
बेंदी ललित सरद ससि में जनु बूड़न जाइ बसी है।।"[3]

काम कन्दला का तरलायित सौन्दर्य माधव को आकृष्ट किये हुए है –

"तरल तरंगिनि तरून की पैयत रति के ठौर।
सुनत मान संसार में अमृत झूठो और।।"[4]

कवि लोग, कविता करने में निमग्न रहते हैं, तो साधु जन सत्संगति

---

1. विरहवारीश – 45/19–21
2. विरहवारीश – 47/43
3. विरहवारीश – 28/7
4. विरहवारीश – 123/36

से आनंद प्राप्त करते हैं, लेकिन रसिक लोग रूपसी के तरल–सौन्दर्य समुद्र में आकंठ डूब जाते हैं –

"काहू कहयो अंमृत कवित्त के निवेदन में,
कबिन बतायो प्रेमगान में लसतु है।
प्रेमगान अंमृत बतायो है फ़निंदहू के ,
फनिप बतायो छपाकर में बसतु है।
छपाकर कहयो सुधा साधुन की सुगति में,
साधुन बतायो बेद ऋचा दरसतु है।
बेद ऋचा अंमृत बतायो हमैं बुद्धिसेन,
तरूनी की तरल तरंगन रसतु है।"[1]

इसी सिद्धांत को रसिक कवि बोधा ने प्रस्तुत किया, स्वयं निवाहा तथा पात्र रूपों में चित्रित किया।

कन्दला के तरलायित सौन्दर्य के समक्ष सभी उपमान फीके हैं, यहाँ तक कि सभी की सुन्दरता जूठन प्रतीत होती है –

"भौरियौ भवन केती रन में नवन केती,
चंग में छवन केती काहू ने निहारी है।
फिरकी फिरन केती घेरनी गिरन केती,
मोर में थिरन केती किन्नरी कुमारी है।
बोधा कवि बाजी औ कमान में मुरन केती,
लक्का में लगन कौन उपमा बिचारी है।
गिरा गिराबाज लोट लोटन कबूतरी की,
कंदला तिया पै एती तरलाई वारी है।"[2]

नायिका के सौन्दर्य से विमोहित नायक एक क्षण को भी उस सौन्दर्य से दूर नहीं रहना चाहता –

"पगनि परो री प्रान काहू सों पगे जो चूर,
होत मगरूरी मगरूरियै जगी रहै।

---

1. विरहवारीश – 124/37
2. विरहवारीश – 105/44

हेरनि हँसनि बतरैबे को कौन स्वाद,

उन्माद तें और पीर तन में पगी रहै।

बोधा कबि जो है मेरे हितू कों सुहाती जगी रहै।

ताही में खगो रहै सोई जी में खगी रहै।

कैसी करौं कहां जाउँ कासों कहौं दई कहूँ,

मन तौं लगै न चित मन में लगी रहै।"[1]

सुभान कोई साधारण नारी तो थी नहीं, रूपगर्विता, सौन्दर्य देवी थी तभी तो बोधा व्यथित हो जाते हैं –

"दूर है मूर अपूरब सो ससि सूरजहूँ कबहूँक निहारी।

अन्दर बेली नवेली अबै कहि कैसे मिलै बिन जोग दिवारी।

बोधा सुनो हे सुभान हितू करि कोटि उपाय थके उपचारी।

पीर हमारे दिलंदर की हम जानत हैं वह जाननहारी।"[2]

घुंघरू के स्वर हमेशा कर्णप्रिय लगते हैं, लेकिन जब ये स्वर सुनने को नहीं मिलते तो सारा सौन्दर्य व्यर्थ लगने लगता है –

"बैर परी पुरबासिनी ये बसु जाम करै घुघुरून घनाको।

बीच परी टटिया तिन की झझकोरत जोर धरें जोवना को।

बोधा बचे ना घरी पल में छुटि जाइगो छोर छुए तें फना को।

रोसु कै काहू सों का कहियै हमें रोसु न और सों रोसु जना को।"[3]

तरल सौन्दर्य का आनंद चकोर चन्द्रमा से प्राप्त करता है, घुन लकड़ी से उसी सौन्दर्य रस को प्राप्त करता है तो पतंगा, आत्मोसर्ग द्वारा उसी सुख की अनुभूति प्राप्त करता है, नायक, लीलावती के सौन्दर्य पर ठीक ऐसे ही विमोहित हैं –

"कह चकोर सुख लहत मीत कीन्हो रजनीपति।

कह कमलन कहं देत भान सह हेत कीन्ह अति।

---

1. विरहवारीश – 84/38
2. विरवारीश – 84/36
3. इश्कनामा – 15/87

घुन कहं कहा मिठास लकुट झूरी टकटोरत।
दीपक संग पतंग आय नाहक सिर फोरत।
नहिं तजत दुसह जद्यपि प्रगट बोधा कबि पूरी पगन।
है लगी जाहि जानत वही अजब एक मन की लगन।"[1]

वह गज गामिनी एक चितवन मात्र से मन को प्रसन्न कर सारे अवसाद को दूर कर देती है –

"गजगामिनि कामिनि बाम बरं। सुखदायक नो हिय पीर हरं।।
सुकुमारिय प्यारिय नेह भरी। हरिनाक्षिय कोकिल नाद करी।।
गवढ़ी नवढ़ी द्विजराजमुखी। परवीन प्रिया बनिता सुमुखी।।
कटि केहरि नेह भरी रवनी। गज मत्त मतंग जथा गवनी।।
लखि पीन कुचा मद मोद लहै। कुचसंघ सकीन न संतुक है।।"[2]

<u>अंग दीप्ति</u> – सुभान का शरीर कन्तिमय था, तरल सौन्दर्य से आभा प्रतिभासित होती थी, इस सौन्दर्य को कवि बोधा ने जाँचा, परखा एवं भोगा था, इस अंग दीप्ति को भला वह कैसे भुला सकता है, क्योंकि वह ही तो जीवन मूरि है। सुभान के रूप को देखकर ही कवि ने लीलावती, कामकन्दला के सौन्दर्य की कल्पना की है –

"पहिराय बसन सुरंग। तिमि लसत केसर अंग।
सृंगार भूप नवेलि। अंग अंग साज सुबेलि।
त्रिविधा सुगंध समेत। छबि फूलमाला देत।"[3]

"बल्लभा बाल प्रिया बनिता मन भावदी बाम हितू गजगैनी।
चन्द्रमुखी रवनी है नितंबिनी पीन कुचा सुजनी पिक बैनी।
बोधा बखानत माधवा यों तरूनी घरनी गबड़ी सुख दैनी।
कामिनी कामदा प्यारी तिया अये लीलावती है कि तू मृगनैनी।"[4]

---

1. विरहवारीश – 52/18
2. विरहवारीश – 55/50–51
3. विरहवारीश – 61/5–6
4. विरहवारीश – 92/11

काम कन्दला की अंग दीप्ति माधव के हृदय मे व्याप्त हो गयी है उसको किसी भी तरह से विस्मृत नहीं किया जा सकता है –

"जाको सतसंग पाय चलत निवान ऐसी,
नैया भवसिंधु में न दूसरी लखात है।
ताही नरदेह सों सनेह तू करत नाहिं,
स्यामा स्याम ध्याइबे की येही अवखात है।
बोधा कवि फेरि चाको पायबो कठिन बड़ी,
कठिन सों पाइ थोरे कसट रिसात है।
ऐसी प्रानप्यारी इहि बारी तू मेरे कहे ते,
राखत बनै तौ राख जात है पै जात है।"[1]

विषपान किये हुये की चिकित्सा हो जाती है, सर्प काटे का मंत्रों से झाड़–फूँक हो जाता है लेकिन अंगदीप्ति से भ्रमित व्यक्ति का कोई इलाज नहीं हो पाता –

"सिखी केर जारयो जियै सिंह को बिदारयो जियै,
बरछी को मारयो जियै बाको भेद पाइये।
गरल को खायो जियै नीर को बहायो जियै,
पर्वत सों ढायो जियै औषधो पिवाइय।
साँपहू को काटो जियै जमहूँ को डाटो जियै,
मौतहू को बाधा जियै जतन बताइये।
बैद्य ह्वै बिधाता जौ उपाय करै बोधा कवि,
नैनन को मारयो कहो कैसे कै जिवाइये।"[2]

एकभी क्षण के लिए प्रियतमा का चन्द्रमुख नहीं दिखता तो, विरह की भावना प्रबलतम रूप से कष्टित करने लगती है, ऐसा विरही न तो प्रेम को किसी से बता सकता है, न छिपा कर मूक ही रह सकता है –

---

1. विरहवारीश – 154/41
2. विरहवारीश – 166/60

नई प्रीति में प्रीतम तो बिछुरो बनै काहू न पीर सुनावत री।
विरही चकचौंधि रही बनिता वै अषाढ़ी घटा लखि आवत री।
सुनिभूली सुभान सबै मुर वा धुरवान को धावन धावत री।
हफासेट लौं बाये फिरै मुख को बनै रावत ही नहिं गावत री।"[1]

लज्जा :– लज्जा तो नारी का आभूषण है– प्रेमी एकांत में मिलता है तो मनोकामना की पूर्ति होती है, लेकिन प्रेयसी लज्जालु हो जाती है, सखियों से निवेदन करती है कि स्थिति तो सुखकारक है, लेकिन मुझे अकेला छोड़कर न जायें –

"जानिकै रीति नवोढ़न की छलिकै गही माधवा बाल सकेली।
सो हिलखी बिलखी तबहीं जबहीं सुमुखी धरि बाँह ढकेली।
बोधा छुड़ायो खरै पहुँचा तब हाय कह्यो वह बाल नवेली।
ये री अरी ये सखी सुनि ये इहि धाममें मोहिं न छोड़ अकेली।"[2]

यौवनोन्माद :– कवि बोधा ने, सुभान के माध्यम से लीलावती एवं काम कन्दला के तरल रूप सौन्दर्य, अंग दीप्ति एवं लज्जा के साथ ही साथ यौवनोन्माद का बिम्बात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है।

"फुलवारी कै रति लखी सरद सुकल पख रात।
रही वही चुभि चित्त तें सो छवि कही न जात।।"[3]

कन्दला के रूप, यौवन का चित्रण बोधा ने परम्परागत पद्धति में ही प्रस्तुत किया है –

"सम लाज मनोज सुबाल हिये। बिहँसै पट अंचल ओट दिये।
पिय नाहियैं नाहियैं यो कहती। मन माह उमाह घनो गहती।
मुसक्याय काभू मुख हाय कहै। तब माधव ही सुख छाय रहै।
कुच चारू बिचार कहा लहिये। मदनद्वल के कलसा कहिये।
कटि छीन प्रबीन उतंग करै। उमग्यो तन स्वेद प्रवाह ढरै।"[4]

---

1. विरहवारीश – 202/33
2. विरहवारीश – 62/10
3. विरहवारीश = 48/50
4. विरहवारीश – 197/32–34

नायक को देखते ही नायिका तथा उसकी सखियों में उन्माद का ज्वार सा आ जाता है –

"कधी अलसाय तन तोरे। अंगूली हाथ की फोरे।
कधी बंद चोलिया कसदी। कधी दिल खोल के हँस दी।।"[1]

इधर माधव की स्थिति ऐसी हो गयी –

"नौढ़ा को रस पाय मगरूरी दिल पै चढ़ी।"[2]

माधव को एक बार देखा, उसी पर अनुरक्त हो गयीं, दुबारा न मिलने पर –

"उनमादी सब बाम लाज तजे व्याकुल फिरैं।
दृग एक अंजन आँजि कै एकै चलीं अकुलाय।
एकै महाबर देत बिसर्‌यो दयो एकइ पाय।
एकै अन्हात उमाह बाढ़ी चलीं बसन चुचात।"[3]

<u>रूपगर्विता</u> :– सुभान रूप गर्विता नायिका है, साधारण नायिकाओं से अलग नायिका। अंग–प्रत्यंग सौन्दर्य से भरा, मदमाता यौवन किसी को भी आकृष्ट कर लेने की क्षमता से परिपूर्ण है, तभी तो बोधा उस पर मर मिटे थे, सब कुछ लुटा देने को हमेशा तत्पर रहते थे –

"तै अब मेरी कही नहिं मनति राखति है उर जोम कछू री।
सो सबकी छुटि जाति भटू जब दूसरो मारि निकारत झूरी।
बोधा गुमान भरी तब लौं फिरिबो करौ जौ लौं लगी नहिं पूरी।
पूरी लगें लखू सूरन की चकचूर है जाति सबै मगरूरी।"[4]

इसी सुभान के प्रतिरूप को बोधा ने लीलावती–काम कन्दला में चित्रित किया है –

"यह सुनि खंड पाँच मे प्यारी। लीलावति आई तिहि बारी।
जथा मेघमाला छबि छाजै। यों दल पुर चकछूँदा राजै।

---

1. विरहवारीश – 93/25–26
2. विरहवारीश – 63/28
3. विरहवारीश – 65/40–41
4. इश्कनामा – 4/20

वहि आवसे वसति तिय लीलावति तिहि नाम।
सीलवंत सुखमा सुरत गुन नवरस अभिराम।"[1]

सुभान के मुख चन्द्र से बोधा, एक क्षण के लिए विलग नहीं होना चाहते हैं –

"दूर हे मूर अपूरब सो ससि सूरज हूँ कवहूँक निहारी।
अंदर बेली नवेली अबै कहि कैसे मिलै बिन जोग दिवारी।
बोधा सुनो हे सुभान हितू करि कोटि उपाय थके उपचारी।
पीर हमारे दिलंदर की हम जानत हैं वह जाननहारी।"[2]

"पगनि परो री प्रान काहू सों पगे जो चूर।
होत मगरूरी मगरूरियै जगी रहै।
हेरनि हँसनि बतरैबे को कौन स्वाद,
उन्माद तें और पीर तन में पगी रहे।
बोधा कवि जो है मेरे हितू कों सुहाती जीव,
ताही में खगो रहै सोई जी में खगी रहै।
कैसी करौं कहाँ जाउँ कासों कहौ दई कहूँ,
मन तौ लगै ना चित मन में लगी रहै।"[3]

घनानन्द और बोधा की सौन्दर्य दृष्टि–साम्य

घनानंद और बोधा के काव्य में रूप सौन्दर्य का विवेचन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि रीति स्वच्छन्द धारा के दोनों कवि रूप माधुर्य की साक्षात् मूर्ति प्रेयसी के सौन्दर्य में उमड़ते और डूबते रहे। घनानंद सुजान के अंग प्रत्यंग, यौवन सम्पदा पर मुग्ध हैं तो बोधा 'सुभान' सौन्दर्य में लिप्त है, 'सुभान' से अपने को अलग ही नहीं कर पाते, साहित्य–सर्जना सुभानमय है।

घनानंद ने 'सुजान' से प्रेम किया, उसकी प्रत्येक अदा पर मुग्ध हैं, कटाक्ष शर से आहत हैं, नेत्र वारों से विमोहित हैं; सुजान के काले चमकीले केश, मुख पर

---

1. विरहवारीश – 220/10–14
2. विरहवारीश – 84/36
3. विरहवारीश – 84/38

इधर–उधर बिखर जाते हैं, वे उन्नत भाल को सौन्दर्य प्रदान करते हैं, सुजान के खुले केशों को देखकर पपीहा उन्हें बादल समझ लेता है, उनकी ओर दौड़ पड़ता है।

बोधा ने सुभान का सम्मोहक रूप चित्रित किया है –

सुभान का माथा रोली से इस तरह प्रतिभासित हो रहा है, मानो लघु सूर्य ही साक्षात् उपस्थित हो गया हो, माँग में रखी हुई बेंदी वीर वहोटी को भ्रम उत्पन्न कर रही है तो केश सर्प का भ्रम।

इस तरह से घनानंद और बोधा दोनों ने ही केश राशि तथा भाल का वर्णन किया है।

घनानंद ने सुजान के नेत्रों का वर्णन बड़ी तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है, नेत्रों के जितने भी उपमान है, वे सुजान नेत्रों से पराजित हैं – खंजन में शक्ति का अभाव, मीन में रसवर्षण का अभाव, तो कमल में लज्जा का अभाव है।

बोधा ने सुभान के नेत्रों मे इतनी मादकता, रम्यता, आकर्षित कर लेने की क्षमता का भाव देखा है, जो अन्य किसी में नहीं। गुप्त प्रेम को प्रकट कर देने की सामर्थ्य इनमें है।

घनानंद और बोधा दोनों ही अपनी प्रेयसियों के नेत्र सौन्दर्य पर मंत्र–मुग्ध हैं।

वाणी का व्यापार जहाँ समाप्त हो जाता है, वहीं से कटाक्ष का क्रिया व्यापार प्रारम्भ हो जाता है– सुजान के कटाक्ष शर विलक्षण हैं कि पहले हृदय को बेधित करते हैं, फिर प्राण दान भी देते हैं। जिलाने और मारने दोनों की अद्भुत क्षमता सुजान के कटाक्षों में है, तभी तो वे प्रेमी घनानंद को सुखदायक लगते हैं।

बोधा ने भी सुजान के कटाक्ष वर्णन को प्रस्तुत किया है, इन कटाक्षों को उसने गूँगे का गुड़ माना है, उसकी कामना रहती है कि उसका हृदय सुभान के कटाक्षों से घायल होता रहे।

रूप वर्णन की इस नदी में घनानंद और बोधा समान विचारधारा लेकर तैरते हैं।

घनानंद ने सुजान की नाक का बिल्कुल नये ढंग से चित्रण प्रस्तुत किया है, सुजान की नाक सिकोड़ने की मुद्रा अनिर्वचनीय है, यह मुद्रा कवि मन को विमोहित कर देती है।

बोधा सुभान की नाक को तोते की सदृश देखते हैं; नाक में पहनी हुई नथ में हीरा जड़ा हुआ है, जो मुखमण्डल की प्रभा को द्विगुणित कर देता है।

बोधा ने नाक वर्णन में परम्परित प्रचलित उपमानों का ही सहारा लिया है।

सुजान के दाँतों में शुभ्रता है, मोती के समान चमक और दाड़िम जैसी सघनता है, जिस प्रकार फाग खेलने के लिए आतुर गोपिका के अंचल में गुलाल भरा है, ठीक वैसी लाली सुजान के अधरों में है – यहाँ मैं एक बात स्पष्ट करना चाहूँगी कि अधरों के तमाम उपमान प्रस्तुत किये गये लेकिन ऐसी भव्य उच्च भावना किसी कवि ने प्रस्तुत नहीं की; यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि घनानंद प्रेमी पहले हैं, कवि बाद में।

सुभान के दाँत, अनार की भांति परिलक्षित हैं, उनकी चमक से ही बिजली चमकती है, अनार की पंक्ति इस बात के लिए धन्य हो गयी कि सुभान की दंत पंक्ति वैसी है, ऐसा प्रतीत होता है कि अनार पंक्ति ने सारा सौन्दर्य सुभान से चुरा लिया है।

घनानंद और बोधा सुजान और सुभान के निकटस्थ रहे हैं, इसी कारण से इस तरह के रूप सौन्दर्य वर्णन में एक रूपता है।

सुजान का मुख मंडल प्रभामय है, मुख मडल की शुभ्रता के सामने चन्द्रमा

का प्रकाश फीका पड़ गया, कमल आभा रहित हो गये, चिकने चिहुर के मध्य उसका आनन ऐसा प्रतीत होता है, जैसे रजनीश की सहोदरा का प्रतिरूप हों। बोधा ने सुभान के माध्यम से काम कन्दला की ठोढ़ी को पके आम की तरह चित्रित किया है, काला तिल सुषमा को द्विगुणित कर रहा है।

घनानंद ने सुजान से सच्चा प्रेम किया था इसी कारण से उरोज वर्णन में बहुत शालीनता से काम लिया है, इस वर्णन में उपमानों की झड़ी नहीं लगाई गई।

बोधा उरोज में नारंगी फल देखते हैं, तो श्रीफल की कठोरता भी चित्रित करते हैं।

रीतिबद्ध कवियों से अलग बोधा ने उरोजों को पुष्प से उपमानित किया है।

सुजान की कटि ध्वनि के समान सूक्ष्म है जो मानस नेत्रों से ही देखी जा सकती है उसके रहस्य को मात्र किंकनी ही जानती है।

बोधा ने कटि की अनेक उपमायें दी हैं; दी हुई उपमा से वे संतुष्ट नहीं है, अतः प्रेयसी से पूँछ बैठते हैं कि कटि की क्या उपमा दी जाये।

साक्षात् रति–सी सुन्दरी सुजान की सुन्दर पिण्डली की गोराई को देखकर उसका मन आह्लादित हो जाता है, कवि घनानंद का मन वहीं रमता है, जहाँ सुजान के चरण हैं तो कवि बोधा चरण में सफेद नख को हीरा बताते हैं और अपने मन से प्रार्थना करते हैं कि उनका मन आलता से सुशोभित चरण कमलों में ही लगा रहे।

इस तरह से रूप सौन्दर्य के बाह्य वर्णन में घनानंद और बोधा में एकरूपता है।

सौन्दर्य के सूक्ष्म वर्णन में घनानन्द के पास विधि प्रदत्त सूक्ष्म दृष्टि थी जिससे उनका काव्य परम्परागत स्थूल चित्रण से भिन्न प्रकार है।

सुजान के सौन्दर्य के प्रभाव घनानन्द की अन्तः सत्ता पर इस तरह पड़ा कि मन, प्राण, हृदय, जीव सभी सुजान पर मुग्ध हैं, वे तो सुजान के हाथों के बिक गये है, धैर्य, संयम, लज्जा सभी को छोड़ वे सुजान के अधीनस्थ हैं, तो बोधा सुभान के सौन्दर्य भंग का पान कर मदमस्त हैं; सुभान के अतिरिक्त वे किसी की ओर भी देखना पसन्द नहीं करते। इस तरह से समर्पण और निष्ठा की भावना दोनों कवियों में समान रूप से प्रवाहित हो रही है।

सुजान के प्रति अतिशय प्रेम का कारण है लावण्यमयी कान्ति। सुजान की छवि उसके मुख की कान्ति हमेशा सुरम्य रहती है तभी तो प्रेमी नेत्र सौन्दर्यपान से कभी थकते नहीं।

सुभान की कान्ति बोधा के हृदय में समाहित है तभी तो वह उससे अपने को अलग नहीं कर पाता। सुभान की कान्ति से प्रभावित कवि बोधा ने कामकन्दला और लीलावती की कान्ति का वर्णन किया है।

रीतिकालिक कवियों ने नायिका के तरल रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है, लेकिन इसमें कहीं मांसलता है तो कहीं अंग विशेष का चित्रण। पर घनानंद ने सुजान के जिस तरल सौन्दर्य का चित्रण प्रस्तुत किया है, उससे हृदय पक्ष की प्रधानता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

बोधा का मानना है कि कवि लोग कवित्त कर्म में लगे रहते हैं तो संन्यासी लोग सत्संगति का लाभ उठाते हैं तो रसिक प्रेमी, प्रेयसी के तरल सौन्दय समुद्र में डूबकर आनंद निमग्न रहते हैं।

बोधा ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया, अपने पात्रों में भी प्रस्तुत किया।

लज्जा तो नारी का आभूषण है, अभिनय कला में निपुण, काम कला में दक्ष सुजान कभी भूलवश घूंघट निकाल लेती है तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि साक्षात् लज्जा की वर्षा हो रही है।

बोधा की नायिका सुभान लज्जालु प्रकृति की रही होगी, क्योंकि कवि ने लीलावती और काम कन्दला दोनों को ही अतिशय लज्जालु चित्रित किया है। उनमें भय कम लज्जा अधिक है।

सुजान रूप गर्विता नारी है, सौन्दर्य का अभिमान हो जाना स्वाभाविक है, इस यौवन से मदमाती सुजान का कई रूपों में घनानंद ने चित्रण चित्रित किया है, अपनी प्रेयसी के अंग, प्रत्यंग, यौवनोन्माद का सहज मार्मिक चित्रण घनानंद ने जिस सहजता के साथ प्रस्तुत किया है, वह उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति है। कवि बोधा ने सुभान के साथ लीलावती–कामकन्दला के उन्मुक्त यौवन के तमाम चित्र बिखेरे हैं, रसिकता का रंग भरा है।

सौन्दर्य दृष्टि का विवेचन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि घनानंद और बोधा ने रीतिकालीन परम्परा का अंधानुसरण नहीं किया है, उन्होंने प्रचलित परम्पराओं से हटकर नये चित्र उकेरे, नये उपमान प्रस्तुत किये हैं। सौन्दर्य चित्रण के प्रति नई सोच दी, नई दिशा दी, अर्न्तदृष्टि के साथ व्यापक दृष्टिकोण भी प्रदान किया, अपनी प्रेयसी से इस कदर जुड़े कि काव्य सर्जना होती गयी, इस सौन्दर्य वर्णन की एक विशेषता और है कि मांसलता उसे छू नहीं पाई, रूप सौन्दर्य का ऐसा तारल्य प्रस्तुत किया, जो अनूठी चमक, रंग के साथ आज भी देदीप्यमान है।

वैषम्य

घनानंद बोधा में रूप सौन्दर्य चित्रण में ऊपर से एकरूपता भले ही दिखाई देती हो लेकिन गहन विवेचन के पश्चात् उनमें वैषम्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है –

घनानंद ने सुजान के नेत्रों का वर्णन रसिकता के साथ प्रस्तुत किया, कृत्रिमता से कोसों दूर रहे, लेकिन बोधा ने नेत्र वर्णन में रीतिकालिक परिपाटी का ही अनुधावन किया। वर्णन में कृत्रिमता अधिक सहजता कम है।

कटाक्ष शर ऐसे हैं, जो प्रेमी को घायल करते रहते हैं। कटाक्ष वर्णन में घनानंद ने सहजता दिखलाई है, घनानंद का समग्र साहित्य पढ़ने से एक बात तो बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमी भाव ही सर्वत्र छाया रहा। पाठकों को इसी भाव भूमि तक पहुँचाने में वे सफल रहे है; सहृदय पाठक स्वयं सुजान के कटाक्ष से बेधित होने की अनुभूति करता है, उसे ऐसा कहीं नहीं लगता कि वह घनानंद से अलग है।

बोधा कटाक्ष वर्णन में स्वाभाविकता नहीं ला पाये; यद्यपि सुभान और सुभान के माध्यम से लीलावती ओर कामकन्दला के कटाक्षों का चित्रण प्रस्तुत करने का सत्प्रयास तो उन्होंने किया लेकिन भावों की गहन अनुभूति तक पाठकों को न ले जा सके।

सच्चा प्रेमी वही है, जो प्रेयसी के रूप मुद्रा में होने वाले परिर्वतन को हृदयंगम कर सके, घनानंद इतराती हुई सुजान की नाक का सौन्दर्य, प्रत्यक्ष करा देते हैं, नाक चढ़ी जहाँ स्वाभिमान को व्यक्त करती है, वहीं रूप गर्विता होने का अभिमान भी चित्रित करती है। घनानंद ने नाक का इतना स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है कि स्वच्छन्दधारा के कवियों ने और परवर्त्ती कवियों ने इसी चित्रण को ज्यों का त्यों स्वीकर कर लिया है।

बोधा ने नाक के कई उपमान प्रस्तुत किये हैं, इसी वर्णन में वे रीतिकालिक कवियों से भी आगे बढ़ गये, ऐसा प्रतीत होता है कि उपमान देकर ही वे नाक वर्पन से छुटकारा पाना चाहते हों। उपमान-जाल से वे बाहर नहीं निकल सके, मौलिकता भी स्थापित नहीं कर सके।

घनानंद ने सुजान के दाँतों की चमक-दमक, शुभ्रता विशेष का चित्रण प्रस्तुत किया, बोधा ने सुभान के दाँतों के बिम्बात्मक चित्र प्रस्तुत किये हैं, दोनों में वैषम्य इस बातपर है कि घनानन्द ने उपमान ही प्रस्तुत किये हैं, बोधा ने इस वर्णन में अतिश्योक्ति का सहारा लिया है:

सुजान का मुख मण्डल सुघर तो है ही तथा गोराई के साथ-साथ लालिमा भी है। घनानंद उस आभा मण्डल से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होना चाहते। उन्होंने आनन सौन्दर्य को निकट से देखा था, भोगा था, इसी कारण से

इस वर्णन में स्वाभाविकता दे सके, कल्पना से दूर यर्थाथ के निकट यह घनानंद के रूप वर्णन की विशेषता है, बोधा ने सुभान तथा परोक्ष कथा रूपों में 'लीलावती'–'कामकन्दला' के मुख मण्डल के चित्र उकेरे हैं, इन चित्रों के रंग मद्धिम हैं, क्योंकि कवि वर्णन में सजीवता न डाल सके, समग्र चित्रण फीका–फीका लगता है।

स्त्री का स्त्रीत्व कुचों में है, तो वही पुरुषों के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु। घनानंद की प्रेयसी सुजान, राजदरबार की नर्तकी अवश्य थी, लेकिन प्रेमी तो निष्ठा चाहता है, कवि घनानंद ने हर व्यवहार में निष्ठा बनाये रखी; चाहे समपर्ण हो या कवित्व कर्म में। सुजान के कुच वर्णन में भी वे नैष्ठिक रहे, अश्लीलत्व या भदेसपन नहीं आने दिया। उपमानों की झड़ी नहीं लगाई। बोधा ने सुभान, लीलावती एवं कामकन्दला के कुचों को कई तरह के उपमान दियें, लेकिन केलि वर्णन में यह चित्रण सहृदय पाठक को ठेस पहुँचाता है –

"कनक कलस से चारु कुच गहे मरोरत कंत।
मनहुँ लंक को सीस गहि हिलरावत हनुनंत।।"[1]

घनानंद के वर्णन में स्वाभाविकता तो, बोधा के वर्णन में भदेसपन।

बहुत कम रीतिकालिक कवियों ने "उदर" का वर्णन किया; स्वच्छन्द काव्यधारा के कवि सहजता, स्वाभाविकता के साथ उदर वर्णन को प्रस्तुत किया। बोधा ने उदर का तो नहीं रोमावलि का अतिशयोक्ति चित्रण चित्रित किया है।

घनानंद पर सुजान के रूप सौन्दर्य का प्रभाव तीव्र नहीं तीव्रतम था, तभी वे अंग, जिन्हें रीतिबद्ध कवियों ने महत्त्वहीन कहकर कोई विशेषता नहीं दी पर रसिक कवि ने अपनी लेखनी उन पर भी चलायी।

घनानंद ने पीठ का चित्रण, परम्परा से हटकर प्रस्तुत किया। बोधा, सम्भवतः रीतिकालिक कवियों की भाँति पीठ को बेकार का अंग समझते थे, इसीकारण वे पीठ के सौन्दर्य को न देख सके, पीठ का वर्णन उन्होंने कहीं नहीं किया।

सुजान का सहज सौन्दर्य कई गुना विवर्द्धित हो जाता है, जब वह आभूषण धारण कर लेती है, आभूषण की आभा, रूप की आभा से मिल जाती है। सुजान के रूप सौन्दर्य से प्रभावित घनानंद ने रूप का ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया है, जिसमें सजीवता के साथ ताजगी भी है।

---

1. विरहवारीश – 197/38

बोधा ने, सुभान, लीलावती एवं कामकन्दला द्वारा धारित आभूषणों की लम्बी तालिका लिखी है, एक जगह अवश्य ही चित्रित किया है कि आभूषणों से सुसज्जित नायिका दीपमालिका की तरह प्रतिभासित हो रही है। मूल वैषम्य यह है कि घनानंद ने रूप सौन्दर्य को महत्त्व प्रदान किया है तो बोधा ने बाह्य उपादानों को महत्त्व प्रदान किया है।

सुजान के स्थूल चित्रण में कवि ने अंगों की कान्ति, अरूणाई, सुकुमारता, तरुनी आदि को तन्मयता के साथ चित्रित किया है, क्योंकि उनका मानना था कि रूप और सौन्दर्य अपनी सार्थकता ही खो देता है, यदि वह किसी को प्रभावित ही न करे, इसीकारण घनानंद ने सुजान के रूप के उत्कर्ष की व्यंजना में उसका प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए अनेकानेक छन्द रच डाले। इन छन्दों में कवि ने अनोखे रिझवार होने का परिचय दिया है, अपनी बात को उन्होंने कई तरह से कहा है; मधुपान करती प्रेयसी, उन्हें और भी आकर्षक लगती है। रीतिकालिक कवि, रूप–सौन्दर्य की समग्रता को एक जगह प्रस्तुत न कर सके, पर घनानंद ने समस्त परम्पराओं को अस्वीकार कर, सौन्दर्य की तरलता, दीप्ति को प्रस्तुत कर, हृदय पक्ष की प्रधानता प्रस्तुत की; समग्र सौन्दर्य को एक दृष्टि से देखा।

बोधा ने भी तरलता, कान्ति के चित्र प्रस्तुत किये हैं, उनके चित्र रीतिकालिक कवियों के सन्निकट हैं तथा उन्होंने नायिका के एक एक अंग को देखा, विचार किया फिर लिखा, इस तरह अंग को अलग–अलग फ्रेमों में फिट करके प्रस्तुत किया है, कवि चातुर्य की प्रशंसा तो की जा सकती है, लेकिन भावनाओं को कहीं बोधा प्रभावित कर सके हैं, ऐसा नहीं लगता।

घनानंद ने अनेक पदों में सुजान की मुस्कान, मधुर बातों का चित्र प्रस्तुत किया है, मादक हंसी, रूप सौन्दर्य की तरलता को तीव्र कर देती है। बोधा, मादक मुस्कान का चित्रण नहीं कर पाये।

घनानंद और बोधा दोनों कवियों ने अंगदीप्ति, लज्जा, यौवनोन्माद के सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं – घनानंद के चित्रों में स्वाभाविकता, सहजता अधिक है, जबकि बोधा में बनावट है, कृत्रिमता है।

घनानंद का काव्य; हृदय का काव्य है, अन्तर्मुखी काव्य है, अंग–प्रत्यंग में झलकते हुए लावण्य की अभिव्यक्ति है जो लक्षित चित्र–योजना के क्षेत्र में बड़ी समर्थ बन पड़ी है। सुजान के अन्तः सौन्दर्य चित्रण में उन्होंने भावुकता का सहारा लिया है।

बोधा पर रीतिकालिक कवियों का प्रभाव अधिक था, इसी कारण उन्होंने सौन्दर्य वर्णन में सिद्धांत पक्ष को भी स्थापित किया है, पद्मिनी, चित्रिणी, संखिनी एवं हस्तिनी चार प्रकार की नायिकाओं का लक्षणगत विवेचन प्रस्तुत किया है, ठीक इसी प्रकार चार प्रकार के नायकों (पुरूषों) के लक्षण भी बताये हैं; पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए तो इस प्रकार के वर्णन उचित हैं, लेकिन इससे साहित्य में रसावरोध उत्पन्न हो जाता है। बोधा के काव्य में कई जगह रसावरोध हुआ है, जिससे आननंद की प्रच्छन्न धारा में व्यवधान परिलक्षित होता है, सौन्दर्य वर्णन में उन्होंन बुद्धि का आश्रय लिया है, पाण्डित्य प्रदर्शन किया है, अतः काव्य; हृदयगत, भावगत नहीं, बुद्धिप्रधान हो गया है। सहृदय पाठक इसको स्वीकार नहीं कर पाता, यही घनानंद और बोधा में मूल वैषम्य है। घनानंद का साहित्य हृदय प्रधान है, पाठक, रसधारा में डूबने–उतराने लगता है, बोधा बुद्धिवादी है, पाठक, बुद्धि नहीं हृदय की प्रधानता चाहता है।

****

***** *****

***

चतुर्थ – अध्याय

आलोच्य काव्य में संयोग शृंगार

श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन

श्रृंगारभृंगारौ' उणादि सूत्र से शृ (हिंसायाम) धातु से आरम्भ, नुम्, गुक् तथा ह्रस्व का निपातन करने पर 'श्रृंगार' शब्द सिद्ध होता है। वैसे 'शृ' धातु का अर्थ होता है – मारना, हिंसा करना प्राण लेना।

अमर कोष में श्रृंगार को 'शुचि' तथा उज्ज्वल का समानार्थी बताते हुए यह अर्थ किया गया है – 'श्रृंग प्राधान्यमियर्ति। कर्मण्यण् अर्थात श्रृंग यानी प्राधान्य वा प्रभुत्व को प्राप्त करने वाला श्रृंगार कहलाता है।

'साहित्य दर्पण के टीकाकार श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने 'श्रृंग' की जो व्याख्या की है, "श्रृंग शृणाति, दशमदशया हन्ति कामुकान् इति तथोक्तं" जो प्राण लेता है, अर्थात वियोग की दसवीं दशा से जो कामियों को मारता है, वह 'श्रृंग' है।

इस प्रकार, शृ धातु से व्युत्पन्न श्रृंगार का अर्थ वह अन्तर्वृत्ति या व्यापार होगा जो मनुष्य के प्राण हर ले अथवा मर्मान्तिक पीड़ा पहुंचावे।

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने काव्यकल्पद्रुम (प्रथम भाग रस मंजरी) में श्रृंगार का अर्थ किया है, "श्रृंगार शब्द में श्रृंग और आर दो अंश हैं – श्रृंग का अर्थ कामोद्रेक, आर शब्द 'ऋ' धातु से बना है 'ऋ' का अर्थ होता है – 'गमन' अतः श्रृंगार का अर्थ है 'काम वृद्धि' की प्राप्ति। कामी जनों के हृदय में रति स्थायी भाव रस–अवस्था को प्राप्त होकर काम की वृद्धि करता है, इसी से इसका नाम श्रृंगार है।

<u>साहित्य का रस श्रृंगार</u> :– साहित्य को 'सुकुमार' इस कारण कहा गया है कि उसमें वर्णित भाव सम्पदा सहृदयों के निकट आस्वाद्य बन जाती है। रस्यमान होने से ही साहित्य के मर्म को 'रस' की अभिधा मिली है। जिस प्रकार पाक–रस का आस्वादन रसनेन्द्रिय द्वारा होता है, उसी प्रकार साहित्य–रस का आस्वादन मानसेन्द्रिय द्वारा सम्पन्न होता है। जीवन का नियमन एवं अधिशासन करने वाले भाव जीवन में प्रयेण अनुभूयमान नहीं होते और जीवन यांत्रिक भाव से जीते हुए भी, हम उसकी

प्रतीत एवं आस्वाद से वंचित रह जाते हैं। साहित्य में जीवन का आस्वाद्यमान रूप में अनुवाद होता है, इसीलिए आचार्यो ने साहित्य का विवेचन रस-रूप में किया है।

इस सम्बन्ध में डॉ0 रमाशंकर तिवारी का विचार है कि "साहित्य-रस जीवन-रस ही है। यह जीवन-रस मूलतः एक अद्वैत है, किन्तु, जैसे सुर-सरिता गंगा अपने प्रवाह-पथ की नाना भूमियों के सन्दर्भ में नाना अभिधान ग्रहण करती है वैसे ही जीवन - रस भी नाना स्थितियों की अनुकूलता में नाना रूपों में उच्छलित होता है, एक अनेक बन जाता है। साहित्य-रस की अनेकता इसी का परिणाम एवं प्रतिफल है, तथापि, कवि की नवनवोन्मषशालिनी प्रज्ञा जैसे रचना की ह्लादेकमयी प्रेरणा में एकत्व को अनेकत्व में अलोकित करती है, वैसे ही समीक्षा का 'शास्त्र' नानात्व का अवलोकन एवं परीक्षण कर उसे समेटने तथा कुछ निश्चित पैटर्न वा पद्धतियों में बाँधने का प्रयत्न करता है। अपने इस व्यापार में वह यदि एक ओर कवि की कारयित्री प्रतिभा को मार्ग दर्शन कराता है, तो दूसरी ओर जीवन के जटिल तथा विजृम्भित विस्तार को, उसके मौलिक स्वरूपों में, समझने में सहायता भी करता है।"[1]

'भानुदत्त' ने 'भरतुनि' के सूत्रवाक्य की व्याख्या प्रांजल रीति से की - "भावविभावानुभाव व्यभिचारिभावेर्मनो विश्रामो यत्र क्रियते स वा रसः।" स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से जहाँ मन को विश्राम मिले, वहीं रस निष्पन्न होता है। मनुष्य की श्रृंगार भावना- जहाँ उचित उपदानों के संनिवेश से पुष्ट होकर सहृदयों को तदाकार कर लेती है, वहाँ श्रृंगार-रस प्रतिफलित होता है।

<u>श्रृंगार रस का महत्व</u> :-

भरत ने श्रृंगार का वेश उज्ज्वल बताते हुए कहा है कि संसार में जो कुछ पवित्र, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है, वह श्रृंगार से उपमित होता है -

---

1. श्रृंगार और साहित्य - पृ सं0 - 80

"सुख प्रायेष्ट सम्पन्न ऋतुमाल्यादि – सेवितः।
पुरुष प्रमदायुक्त श्रृंगार इति संज्ञितः।।"[1]

सुखद तथा इष्ट पदार्थो से युक्त, ऋतु माल्यादि से सेवित तथा पुरुष से प्रमदायुक्त होने पर 'श्रृंगार' होता है।

विश्वनाथ, शारदातनय एवं भानुदन्त इसकी व्यापकता एवं सर्व–ग्राह्यता पर बल देकर, उसे प्रधान रस माना है।

भोजराज का कथन है कि कवि के श्रृंगारी होने से समस्त जगत् रसमय हो जाता है और अश्रृंगारी होने से सभी कुछ रस बन जाता है।

"श्रृंगारी चैत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एवं चैदश्रृंगारी नीरसं सर्वमेव तत्।"[2]

भोज ने श्रृंगार को व्यापक अर्थ में रस माना है तथा नायक–नायिका वाले परिचित श्रृंगार को उसकी एक मध्यम कोटीय अवस्था के रूप में स्वीकार किया है, लेकिन, अग्निपुराण ने श्रृंगार को नवरस की श्रेणी में प्रमुख महत्त्व का स्थान प्रदान किया है।

हिन्दी के आचार्यो ने तो इसे 'रसराज' के आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया –

"सबको केसवदास कहि नायक है सिंगारे।"[3]

"भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल सिंगार।"[4]

<u>श्रृंगार रस के उपादान</u> :–

जैसा पहले कहा गया है विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारि भाव के संयोग से स्थयिभाव अतिशय रूप में उद्रिक्त होकर, सहृदय–मन को विश्रान्ति प्रदान करता है, तब रस की निष्पत्ति होती है।

---

1. नाट्यशास्त्र – 6/46
2. सरस्वती कंठाभरण – 5/3
3. रसिक प्रिया – 1/17
4. भवानी बिलास – 10

आलम्बन विभाव :-

"यमालम्ब्य रस उत्पद्यते स आलम्बन विभावः।"[1]

आचार्यों ने श्रृंगार के आलम्बन के यौवन, उत्तम यौवन तथा यौवन की उत्तम प्रकृति पर बल दिया है। देव ने श्रृंगार को वाणी का सार बताते हुए, किशोर-किशोरी को श्रृंगार का सार कहा है-

"प्रीति महागुन गीत विचार,
विचार की बानी, सुधारस बोरी।
बानी को सार बखान्यो सिंगार,
सिंगार को सार किसोर-किसोरी।।"

अतएव श्रृंगार के प्रमोदात्मक उपप्लवन के लिए नव-तारूण्य से संयुक्त युवक-युवती ही सम्यक् आलम्बन हो सकते हैं। आलम्बन दो प्रकार के होते हैं - विषयालम्बन तथा आश्रयालम्बन। राधा में यदि कृष्ण के प्रति-प्रीति उत्पन्न होती है तो राधा आश्रयालम्बन और कृष्ण विषयालम्बन कहे जायेंगे।

उद्दीपन विभाव :- विश्वनाथ ने चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर इत्यादि को श्रृंगार का उद्दीपन बताया है। शारदातनय ने - उद्दीपनों की चार कोटियाँ बताई हैं -

"आलम्बनगुणश्चैव तच्चेष्टा तदलंकृतः।
तटस्थश्चेति विशेस्षश्चतुर्धोद्दीपन क्रमः।।"[2]

(1) आलम्बन के गुण (2) उसकी चेष्टाएं (3) अलंकरण (4) तटस्थ

इस सम्बन्ध में डॉ0 तिवारी का मन्तव्य है कि -

"गुणों के मानसिक, वाचिक एवं कायिक तीन वर्ग बताये गये हैं। कृतज्ञता, क्षान्ति, करूणा, इत्यादि मानसिक गुण हैं और कर्ण मधुरता वाचिक गुण है। कायिक गुणों के घटक तत्व वय, रूप, लावण्य, सौन्दर्य, अभिरूपता, माधुर्य मार्दव इत्यादि।"[3]

---

1. रस तरंगिणी
2. दी0, पृ0 21
3. श्रृंगार और साहित्य - पृ0 सं0 88

अनुभाव :- "अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः"

(दशरूपक) भाव को सूचित करने वाले विकार, अनुभाव कहे जाते हैं। अनुभावों के अभाव में रस का पूर्ण परिपाक सम्भव नहीं है। श्रृंगार के अनुभावों का विस्तृत विवेचन शास्त्रों में हुआ है। यथा- कायिक, मानस, आहार्य, तथा सात्त्विक इसी तारतम्य में 'वाचिक' जिसका सम्बन्ध वचन रचना से और भी जोड़ा जा सकता है। आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप, अनुलाप, संदेश, अतिदेश, उपदेश, निर्देश तथा व्ययदेश ये बारह प्रकार के वाचिक अनुभाव हैं। सत्त्व से उत्पन्न होने वाले विकार, 'सात्त्विक' कहे जाते हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु या कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलाप ये आठ सात्त्विक हैं।

अलंकरण में, अंगज, अयत्नज एवं स्वभावज

व्यभिचारिभाव :- धनंजय के अनुसार व्यभिचारी या संचारी भाव वे हैं जो विशेष रूप से, चारों ओर से विचरण करते हैं। ये स्थायीभाव में उसी भाँति उछलते-डूबते रहते हैं, जैसे - समुद्र में लहरें उछलती-डूबती रहती हैं -

"विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।

स्थायिन्युन्मग्ननिर्भग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।।"[1]

सर्वसम्मत से संचारियों की संख्या तैंतीस बतायी गयी है -

(1) निर्वेद (2) आवेग (3) दैन्य (4) श्रम (5) मद (6) जड़ता (7) उग्रता (8) मोह (9) विबोध (10) स्वप्न (11) अपस्मार (12) गर्व (13) मरण (14) अलसत्ता (15) अमर्ष (16) निद्रा (17) अवहित्या (18) औत्सुक्य (19) उन्माद (20) शंका (21) स्मृति (22) मति (23) व्याधि (24) सँन्यास (25) लज्जा या व्रीड़ा (26) हर्ष (27) असूया (28) विषाद (29) धृति (30) चपलता (31) ग्लानि (32) चिन्ता (33) वितर्क ।

श्रृंगार रस के भेद

भरत के पश्चात् सबसे पहले आचार्य रूद्रट हैं। जिन्होंने श्रृंगार नामक

1- दश रूपक - चर्तुथ प्रकाश।

रस का सम्भोग और विप्रलम्भ दो विभागों में वर्गीकरण किया।

"सम्भोगः संगतयोर्वियुक्तयोर्यश्च विप्रलम्भोऽसौ।
पुनराप्येष द्वेधा प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च।।"[1]

संगत पुरुष और नारी के रति व्यवहार को सम्भोग और वियुक्त पुरुष और नारी के रति व्यवहार को विप्रलम्भ कहते हैं। ये दोनों फिर प्रच्छन्न और प्रकाश के नाम से दो प्रकार के हैं। प्रच्छन्न और प्रकाश की व्याख्या रूद्रट ने नहीं की, सम्भवतः सम्भोग श्रृंगार वहाँ माना जायेगा जहाँ नायक, नायिका एक दूसरे के समीप्य में रति का अनुभव कर रहे हों और विप्रलम्भ श्रृंगार वहाँ होगा जहाँ वे एक दूसरे से बिछड़े हुए हों।

सम्भोग श्रृंगार :- सम्भोग श्रृंगार की अलग परिभाषा करते हुए रूद्रट कहते हैं -

"अन्योन्यस्य सचित्तावनुभवतो नायकौ यदिद्वमुदौ।
आलोकवचनादि स सर्वः सम्भोग श्रृंगारः।।"[2]

"सम्भोग श्रृंगार वहाँ माना गया है, जहाँ नायक-नायिका पूर्ण रूप से प्रसन्न तुल्यमानस हों और आलोकन बचन आदि में रत हो(केवल मिथुन मात्र को श्रृंगार को सम्भोग श्रृंगार नहीं कहा गया)"
'काव्य प्रकाश' 'कार मम्मट' ने श्रृंगार रस के दो भेद बतलाते हुए सम्भोग श्रृंगार के बारे में कहते है-

"तत्र श्रृंगार द्वौ भेदौ सम्भोगो विप्रलम्भश्च। तत्राद्यः परस्परवलोकना लिंगनाधरपान परिचुम्बनाद्यमनन्तभेदत्वाद परिच्छेद्यं एक एव गण्यते।[3]

श्रृंगार रस के दो भेद हैं-
(1) सम्भोग (2) विप्रलम्भ। उनमें से पहला परस्पर अवलोकन, आलिंगन, अधरपान आदि अनेक भेदों से संयुक्त होकर अपरिछेद्य और एक ही हैं"।

---

1. काव्यालंकार - रूद्रट - अध्याय -12
2. काव्यालंकार - रूद्रट - अध्याय - 13
3. काव्य प्रकाश - मम्मट - चतुर्थ उल्लास

पंडितराज जगन्नाथ का विचार सर्वग्राह्य है–

"यदि स्त्री–पुरूष मेंसंयोग के समय प्रेम हो तो संयोग श्रृंगार रस कहलाता है। परन्तु संयोग का अर्थ स्त्री–पुरूष का स्थान पर रहना नहीं है क्योंकि शय्या पर शयन करते हुये दम्पति में यदि ईर्ष्या आदि विद्यमान हों तो विप्रलम्भ रस का वर्णन किया जाता है। इसी तरह वियोग का अर्थ भी अलग रहना नहीं है क्योंकि यह दोष वहाँ पर भी उपस्थित रहता है। अतः यह मानना चाहिए कि संयोग और वियोग, यह दोनों एक प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं और वह है 'मिला हुआ हूँ' और 'बिछुड़ा हुआ हूँ' यह ज्ञान।"[1]

<u>विप्रलम्भ श्रृंगार</u> :–

नाट्य शास्त्र के छठे अध्याय में विप्रलम्भ का लक्षण देते हुये भरत कहते हें– "निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, चिन्ता, उत्सुकता, निद्रा, सुप्ति, स्वप्न, विव्वोक, व्याधि, उन्माद, अपस्मार, जडता, मरण आदि अनुभावों युक्त विप्रलम्भ होता है।"

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार–

"यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।"[2]

"अनुराग के अत्यन्त उत्कट होने पर भी जब प्रिय समागम नही होता तो उसे विप्रलम्भ कहते है।"

<u>विप्रलम्भ के प्रकार</u> :– विप्रलम्भ श्रृंगार के भेद–प्रभेदों का कोई वर्गीकरण भरत् के 'नाट्य शास्त्र' में नहीं मिलता। केवल करूण विप्रलम्भ ओर करूण रस के अन्तर को भरत ने अवश्य स्पष्ट किया है।

विप्रलम्भ का सर्वप्रथम वर्गीकरण रूद्रट ने किया । काव्यालंकार के 14 वें अध्याय की प्रथम कारिका में विप्रलम्भ को चार प्रकार का माना है।

---

1. रस गंगाधर– पंडितराज जगन्नाथ, पृष्ठ सं0–34
2. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ, तृतीय परिच्छेद

प्रथमानुराग, मान, प्रवास और करूण।

रूद्रट के बाद आज तक विप्रलम्भ का वर्गीकरण इसी रूप में चला आ रहा है।

(1) <u>प्रथमानुराग (पूर्वराग)</u> :-

"आलोकनादिमात्र प्ररूढ़गुरूराग योर संप्राप्तौ।

नायकयोर्या चेष्टा स प्रथमोविप्रलम्भ इति।।"[1]

आलोकन मात्र आदि से ही जिनमें अधिक स्नेह उत्पन्न हो गया है, ऐसे नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं को प्रथमानुराग कहते हैं।

(2) <u>मान</u> :-

"मानः स नायके यं विकारमायाति नायिका सेर्ष्या।

उद्विष्य नाकियकान्तर सम्बन्ध समुद्भवं दोषम।"[2]

रूद्रट के अनुसार, "ईर्ष्या से युक्त नायिका, नायक में अन्य नायिका के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए दोष को लक्ष्य करके जिस विकार को प्राप्त होती है, उसे मान कहते हैं।

(3) <u>प्रवास</u> :-

"यास्यति यतिगतो यत्परदेशं नायकः प्रवासोऽसौ।

एण्यत्येत्यायातो यथर्त्ववस्योऽन्यथा च गृहान।"[3]

रूद्रट ने प्रवास की परिभाषा करते हुए काव्यालंकार में लिखा है - "नायक, विदेश जायेगा, जा रहा है, चला गया; ये सब प्रवास कहलाते हैं। ऋतु विवक्षा (ऋतु के अनुसार उत्पन्न होने वाली इच्छा) के अनुसार ये तीन अभिलाषांए भी प्रवास कहलाती हैं - आएगा, मानो आता है, अथवा आया हुआ है।

(4) <u>करूण</u> :-

"करूणः स विप्रलम्भा यत्रान्यतरो म्रियेत नायकयोः।

यदि वा मृतकल्पः स्यात्तत्रान्यस्तद्गतं प्रत्नपेत।"[4]

---

1. काव्यालंकार - अध्याय - 14
2. काव्यालंकार - अध्याय - 14
3. काव्यालंकार - अध्याय - 14-33

"नायक अथवा नायिका में से किसी की मृत्यु हो जाए अथवा कोई मृतकल्प हो तो उससे उत्पन्न प्रलाप को करूण कहते हैं।

<u>कामदशाएं</u> :– आचार्य विश्वनाथ "अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण ये दस दशाएं वियोग में होती हैं। इच्छा का नाम अभिलाष, प्राप्ति के उपायादि चिन्ता, जड़चेतन का बोध न रहना उन्माद, चित्त के बहकने से उत्पन्न अटपटी बातों को प्रलाप, दीर्घश्वास, पांडुता, दुर्बलता आदि व्याधि, अंगों तथा मन के चेष्टा शून्य होने को जड़ता और मरण को मृति कहते हैं।"[1] इसी शास्त्रीय आधार पर घनानंद तथा बोधा के साहित्य का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

घनानंद के काव्य में श्रृंगार

जैसा पहले कहा जा चुका है –

नायक और नायिका के परस्पर अनुकूल दर्शन, स्पर्श और आलिंगन आदि व्यापारों को संयोग कहा जाता है। डॉ0 भगीरथ मिश्र के शब्दों में "जहाँ रस रूप स्थायी भाव प्रिय के संयोग से परिपुष्ट होकर विविध अनुभावों तथा संचारियों द्वारा प्रकट होता है, वहाँ संयोग की स्थिति होती है।" संयोग श्रृंगार के कई भेद किये गये हैं, उनमें आरम्भकर्त्ता प्रकाशन और स्तर भेद का आधार है। आरम्भकर्त्ता की दृष्टि से नायकरब्ध और नायिका–रब्ध, प्रकाशन की दृष्टि से प्रकाश और प्रच्छन्न तथा स्तर भेद के विचार से संक्षिप्त संकीय सम्पन्नता और समृद्धिमान भेद हैं।

स्थूल रूप से संयोग श्रृंगार के दो भेद किये गये हैं। (1) संयोग श्रृंगार (।।) संभोग श्रृंगार। संयोग श्रृंगार में नायक–नायिका के बीच पारस्परिक रति तो होती है, परन्तु संभोग की प्राप्ति नहीं होती है, संभोग श्रृंगार में नायक–नायिका की पारस्परिक रति में संभोग श्रृंगार निहित रहता है।

हिन्दी में श्रृंगार वर्णन का प्रवेश गीत–गोविन्द से माना जाता है। गीत–गोविन्द में स्थान–स्थान पर असंयत तत्व भी स्थान पा गये हैं। जयदेव से प्रेरणा लेने वाले प्रथम कवि विद्यापति हैं, उन्होंने अपनी पदावली में राधा व कृष्ण के जीवन को सर्वांगीण रूप में न देखकर उनके विलासमय लीलाओं को प्रेममय रूप देने

---

1. साहित्य दर्पण – विश्वनाथ – तृतीय परिच्छेद

का प्रयत्न किया, यद्यपि विलासिता की गन्ध उसमें झाँक रही थी किन्तु धर्माचार्यों द्वारा विशुद्ध शृंगार में भी भक्ति का आरोपण कर लिया।

रीतिकालीन काव्य में शृंगार भावना की भक्ति–मण्डित–भव्यता के स्थान पर वासनात्मक पक्षा ज्यादा उभर कर परिलक्षित होता है। इस सन्दर्भ में डॉ0 शशि सहगल का मंतव्य है कि "प्राकृत की गाथा सप्तशती और आर्यासप्तशती आदि से श्रृंगार की नग्न भावना हिन्दी में आयी। विद्यापति पर उनका स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। भक्तिकाल के राधा–कृष्ण मात्र सामान्य नायक–नायिका रह गये। यद्यपि विद्यापति ने किसी निश्चित रूप–रेखा के अनुसार पदावली में नायिका भेदोपभेद प्रस्तुत नहीं किया, किन्तु राधा–कृष्ण के परकीया प्रेम के सीमित वृत्त में नायिका भेद का जो भाग सहज में समाविष्ट हो सकता था, वह सब कुछ पदावली में है। रीतिकालीन कवियों ने जो विस्तृत नायिका भेद प्रस्तुत किया, उसकी परम्परा का आदि स्रोत आदि काल में देखा जा सकता है। रीतिकाल में भक्तिकालीन राधा–कृष्ण, नायक–नायिका बन गये, वृन्दावन की कुंज, गलियाँ, महलों में आकर बस गयीं। कवि स्वयं अपनी सत्ता खो बैठे और प्रभु आश्रित होने के स्थान पर राज्याश्रित हो गये, उनका कार्य बाल कृष्ण को जगाने के स्थान पर राजा की कामुकता को जगाना रह गया। धनोपार्जन तथा यश उनका मुख्य उद्देश्य रहा। इन कवियों में आचार्य बनने का चाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा था, परिणामतः रीतिकालीन कविता अलंकार युक्त हो गयी। इस काल में अश्लील चित्रों की नुमाइश कवियों ने लगा डाली। प्रजा रक्षक राजा कामिनियों की केश–राशि सुलझाने और नीवीबन्ध खोलने की कला में निपुण हो गया। इस युग की शृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता और ऐन्द्रिय चित्रण का प्राधान्य हो गया। इस घोर श्रृंगारिक वातावरण में 'रीति' की एक ऐसी धारा बह निकली, जिसमें स्वयं को 'रीति' से मुक्त करके, हृदय की विशुद्ध अनुभूति से काव्य–भूमि को सींचा– यही धारा रीति मुक्त धारा कहलायी।"[1]

---

1. घनानंद का रचना संसार पृ0 सं0 – 101

घनानंद इस काव्य धाराकेमूर्धन्य कवि हैं, उन्होने भी परम्परागत संयोग श्रृंगार को ही काव्य का आधार बनाया, अपनी कविता को नवीन भाव भूमि पर खड़ा किया, जिसमें परम्परागत संकीर्णता न थी वासनात्मक और अश्लीलता को स्थान नहीं दिया। डॉ0 मनोहर लाल गौड़ के शब्दों में, "जो प्रेम–वासना मूलक है, उसका पर्यवसान भोग में होता है, पर जो विशुद्ध आत्मानुभूति के रूप में है, उसका पर्यवसान भी प्रेम में ही होता है। ऐसा प्रेम किसी वस्तु जैसे भोगादि का साधन नहीं बनता। इस साध्यभूत प्रेम का मिलन संयोग कहा जाना चाहिए। कवि ने अनुभूत्यात्मक प्रेम के प्रसंग से संयोग वर्णन किया है और साधनात्मक प्रेम में राधा और कृष्ण के मिलन में संयोग का वर्णन पदों में किया है।"

घनानंद के काव्य में श्रृंगार रस के दोनों ही पक्षों का भेदापभेदों के साथ विस्तार से वर्णन है, यद्यपि उनकी वृत्ति संयोग पक्ष के चित्रण में कम रमी है तथापि नायक–नायिका के रूप वर्णन, नख–शिख सौन्दय वर्णन, दोनों ही चेष्टाओं का वर्णन साथ ही मिलन से पूर्व की अभिलाषा तथा मिलन के समय का वर्णन कर उन्होंने श्रृंगार के संयोग पक्ष को पुष्टता प्रदान की है। उनके श्रृंगार वर्णन में रूप लिप्सा तथा साहचर्य दोनों का समावेश है।

घनानंद के प्रेम का आलम्बन 'सुजान' है, उन्होने उसके विशद् रूप का चित्रण किया है, इस चित्रण में स्थूलता का अभाव है। डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार, "अपने प्रिय का रूप चित्रण खींचने में घनानंद ने रीतिबद्ध कवियों की स्थूल, अप्रधान यौन अंगों के आकार और व्यापार का वर्णन नहीं प्रस्तुत किया है। वे मुख्यतः प्रिय के तरल सौन्दर्य पर रीझे हुए हैं।"[1]

---

1. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना – डॉ0 बच्चन सिंह – पृ0 236

प्रस्तुत छन्द में सुजान का सम्वेत रूप से सौन्दर्य का चित्रांकन किया है।

"झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हंसि बोलनि मै छबि–फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।"[1]

रीति मुक्त कवि भाव के सागर में डूब कर काव्य सर्जना करते थे, उन्होंने 'रीति' कुल मर्यादा, लोक लज्जा किसी की भी चिन्ता नहीं की। संयोग शृंगार तरलता के रंग में आप्लावित है तो वियोग की स्थिति में चित्त अशांत तथा मन उद्वेलित हो उठता है। इस धारा के कवियों के वर्णन में नव्यता के साथ ही साथ पिष्ट पेषण नहीं है, इनकी अनुभूति स्वाभाविक तथा प्राकृतिक है। इनके द्वारा वर्णित भावनायें स्व की समपित्त हैं, वर्णित शृंगार अनायास और स्वाभाविक रूप से हमारे सामने आया है।

रीति मुक्त काव्य धारा के कवियों में वही स्वच्छन्दता है, जो राधा–कृष्ण और गोपियों कृष्ण के बीच थी। जीवन और जगत के झूठे बन्धन इन्हें सर्वथा अस्वीकार थे। इन कवियों ने स्वकीया, परकीया गणिका के अलग–अलग के प्रेम, मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा की काम वृत्ति पर आधारित भिन्न वृत्तियाँ और नायिका की अवस्था आदि पर निर्भर आगतपोषिका, प्रोषितपतिका, उत्कंठिता, अभिसारिका, खंडिता आदि के प्रेम, प्रेम की लुका–छिपी, चोरी–चोरी संदेश भेजना, मान करना और मानना, मनवाना, बीच में सखियों का इधर–उधर संदेश निवेदन, शठ और धृष्ट नायकों के विभिन्न प्रकार के आचरण, सखियों या दूतियों का नायक से रमण और सम्भोग तथा सपलीक ईर्ष्या आदि जो नायिका भेद के ग्रन्थकारों द्वारा निर्दिष्ट प्रेम वर्णन के विषय में हैं, उन पर ये रीति मुक्त कवि काव्य रचना करने में नितांत असमर्थ रहे हैं। रीतिमुक्त कवि प्रेम की संकरी गलियों से निकल कर उन्मुक्त, स्वच्छन्द वातावरण में आये, इनके

---

1. प्रकीर्णक – 2

वर्णन में उदात्तता है, ओछेपन और संकीर्णता का नितान्त अभाव है।

सुजान के सौन्दर्य का संश्लिष्ट रूप बड़ा प्रभावशाली तथा मोहक है, उसके नेत्रों की अतिशायिक सुन्दरता को कवि ने बड़े कौशल से व्यक्त किया है।

"पानिप–पूरी खरी निखरी, रस–रानि–निकाई की नीवँहि रोपैं।
लाज–लड़ी बड़ी सील–गसीली सुभाय हँसीली चितैचित लोपैं।
अंजन–अंजित–श्री घनआनंद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न अवति मोपैं।"[1]

यह रूप अनुभूत्यात्मक है, अंग–प्रत्यंग के परिपाटी विहित पुरातन उपमानों की सहायता से किये गये चित्रों की अपेक्षा, उन्होंने प्रिय की भंगिमाओं, गौर वर्णन का तरल प्रभाव, प्रेम मद से छके सुन्दर कर्णावलम्वित नेत्रों तथा हंसने की मधुरता का वर्णन किया है –

"लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय–भरी,
लसति ललित लोल–चख–तिछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रूचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन–दमक फैलि हियें मोती–माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम–पगी बतरानि मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग–रंग ढुरि मुरि जानि मैं।"[2]

गौर वर्णी रंग प्रतिदिन निखतरा हुआ, प्रदीप्त हो रहा है–

"देखि धौं आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैं कसी ललाई।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भेंटन आई।

---

1. सुजान हित – 185
2. प्रकीर्णक – 1

फूलत कंज कुमोद लखें घनआनंद रूप अनूप निकाई।

तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई।"[1]

घनानंद ने संयोग श्रृंगार के अत्यन्त अल्प चित्र हमें दिये हैं, जिनमें अधिकाँश तो सुजान के रूप–वर्णन से ही सम्बन्धित हैं। शास्त्रीय शव्दावली के अनुसार नायक–नायिका के नेत्र मिलन ही संयोग हैं –

"रूप धरे धुनि लौ घनआनंद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।

लोयन लेत लगाय कै संग अनंग अचम्भे की मूरति मानौ।

है किधौं नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कवि क्यौं हूँ प्रमानौ।

तो कटि–भेदहिं किंकिनी जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ।"[2]

रूप वर्णन के साथ ही घनानंद ने आलम्वन की चेष्टाओं का भी वर्णन किया है, इस तरह के वर्णन रति कामना सूचक होने के साथ सजीव तथा चित्रात्मक हैं –

"केलि की कलानिधान सुन्दरि महा सुजान,

आन न समान छबि–छाँह पै छिपैयै सौनि।

माधुरी–मुदित मुख उदित सुसील भाल,

चंचल बिसाल नैन लाज–भीजियै चितौनि।

पिय–अंग–संग घनआनंद उमंग हिय,

सुरति–तरंग रस–बिबस उर–मिलौनि।

झुलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,

स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि।"[3]

सुजान एक नर्तकी होने के साथ ही साथ कुशल अभिनेत्री भी थी, उसके प्रेम, नृत्य एवं अभिनय ने घनानंद को मस्त कर दिया था,

---

1. सुजान हित – 19
2. सुजान हित – 20
3. सुजान हित – 31

नृत्य के समय कजरारे नेत्र जब कटाक्ष करते थे, तो घनानंद अपनी सुध–बुध खो बैठते थे –

"रूप–मतवारी घनआनंद सुजान प्यारी,

घूमरे कटाक्षि धूम करै कौन पै घिर।

नाच की चटक लसै अंगनि मटक–रंग,

लाड़िली लटक–संग लोयन लगे फिरैं।

अभिनै निकाई निरखत ही बिकाई मति,

गति भूली डोलै सुधि सोधौ न लहौं हिरैं।

राते तरवानि तरें चूरे चोप–चाड़–पूरे,

पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरै।"[1]

नायिका का कटाक्ष वर्णन भी इसी कोटि का है। उसके ये कटाक्ष–वाण हृदय का बेंधकर भी सुख प्रदान करते हैं, सौन्दर्य से युक्त होने के कारण आकर्षण की तीव्रता है –

"नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,

या बस ह्वै जीब धीर होत लोट–पोट है।

रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा,

घूमै मति गति–आसैं, प्यास की न टोट है।

चलत सजीवन–सुजान–दृग–हाथन तें,

प्यारी अनियारी रूचि रखवारी ओट है।

जब जब आवै तब तब अति भावै ज्यावै,

अहा कहा विषम कटाच्छ सर–चोट है।"[2]

---

1. सुजान हित – 127
2. सुजान हित – 204

घनानंद के कवित्तों में संयोग श्रृंगार की सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं, 'उद्दीपन' विरह व्यथा में अधिक प्रयुक्त हुआ है। संयोग श्रृंगार में यदा-कदा उद्दीपन रूप के चित्रण मिल जाते हैं –

"सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निरस्यौं करि।
केलि-कला रस आरस-आसव पान छके घनआनंद यौं करि।
पै मनसा मधि रागत लागत अंकनि जागत ज्यौं करि।
ऐसे सुजान बिलास-निधान हौ सोएं जगे कहि व्योरियै क्यौं करि।"[1]

रूपवती नायिका सुजान की चितवन मात्र, उद्दीपन भाव को उद्दीप्त कर देता है –

"रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन बिधि है।
चलनि चितौनी बंक भौंहनि चपल हौनि,
बोलनि रसाल मैन-मंत्र हू कौ सिधि है।
अंग अंग केलि-कला-संपति-बिलास घन-
आनंद उज्यारी-मुख सुख रंग-रिधि है।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौं
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है।"[2]

स्वच्छन्द वृत्ति के कवि घनानंद का संयोग श्रृंगार एकदम नवीन भाव-भूमि पर खड़ा है। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत कटाक्ष, स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन आदि समस्त श्रृंगारिक उपादानों के चित्र

---

1. सुजान हित – 139
2. सुजान हित – 162

प्रस्तुत किये हैं, लेकिन घनानंद इस श्रृंगारिक कीच में कमल की भाँति निर्लिप्त रहे। प्रियतमा को देखा तो बस देखते ही रह गये, मन ने चाहा कि प्रिय से भेट लूँ लेकिन पैर जड़ हो गये –

"चेटक रूप रसीले सुजान। दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाये। कहा कहौं हेरनि ऐसें हिराई।।
बातैं बिलाय गई रसना पै हियो उमग्यौ कहि एकौ न आई।
साँचि कि संभ्रम हौ घनआनंद सोचनि ही मति जाति समाई।।"[1]

रीझ तो अमूर्त्त है, उसके हाथ होने का प्रश्न ही नहीं उठता। रीझ पर हाथों का आरोपण तथा उससे हार जाना, मानवीय क्रिया व्यापार है। कवि ने जिस सुन्दरता से रीझ और रूप का समन्वय किया है, वह सैकड़ों भावों को, संचारी भावों का हृदय में उत्पन्न करने में समर्थ है ।

घनानंद ने 'वाणी' पर 'दुलहिन' अप्रस्तुत का आरोपण करके अद्वितीय मानवीकरण की सृष्टि की है –

"उर भौन मैं मौन को घूंघट कै दुरि बैठी विराजति बात–बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सों सु लसै दुलसै रस–रूप–मनी।
रसना–अली कान गली मधि है पधरावति लै चित्त सेज ठनी।
घनआनंद बूझनि–अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान–धनी।"[2]

इस सुन्दर चित्र में कवि ने भावों के संवेग प्रस्तुत किए हैं। संवेगो की सघनता ही इतने उत्कृष्ट बिम्ब–योजना को रूपायित करने में सफल हो पायी है –

"रीझि बिकाई निकाई पै, रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति।
जोबन घूमरे नैन लखें मति–बौरी भई गति वारि कै मोमति।

---

1. सुजान हित – 353
2. सुजान हित – 192

बानी बिलानी सुबोलनि मैं अनचाहनि चाह जिवातति है हति।
जान के जी की न जानि परै घनआनंद या हू तें होति कहा अति।"[1]

शास्त्रीय भेदाभेद विवेचन में श्रृंगार के संयोग पक्ष के दो भेद किये गये हैं – संयोग श्रृंगार ओर सम्भोग श्रृंगार। इस सन्दर्भ में डॉ0 शशि सहगल का मन्तव्य है कि "संयोग श्रृंगार में पारस्परिक प्रेम होता है, परन्तु शारीरिक संसर्ग प्राप्त नहीं होता और सम्भोग श्रृंगार में नायक और नायिका की पारस्परिक रति समाहित रहती है। घनानंद के काव्य में संयोग श्रृंगार का वर्णन संयोग की अपेक्षा अधिक हुआ है। कवि ने दर्शन, रीझ, मति के डोले जाने, विक जाने रूप की प्रशंसा आदि संयोग सम्बन्धी अनेकानेक छन्द रचे हैं, परन्तु सम्भोग श्रृंगार के पद अधिक संख्या में नहीं हैं। जितने भी छन्द मिलते हैं, उन्हें पढ़ने से इतना अवश्य प्रतीत होता है कि सुजान के साथ शारीरिक सामीप्य स्थापित करने का स्वर्ण अवसर उनके जीवन में अवश्य आया था। ऐसे प्रसंग वह अधिक लब्ध नहीं कर पाये, परन्तु अल्पकालीन संयोग का पूर्ण लाभ उन्होंने उठाया।

<u>पूर्व सम्भोग वर्णन</u> :– सम्भोग की पूर्व दशा का वर्णन करते समय कवि ने किसी प्रकार का दुराव–छिपाव नहीं रखा है, सुजान पर वे आसक्त हैं। सुजान के दर्शन मात्र से ही उसका जीवन सफल है। सुजान के सम्मुख किसी प्रकार की लज्जा नहीं। सम्भोग पूर्व की स्थिति के चित्रण में घनानंद ने सामीप्य और संसर्ग की लालसा को हृदय की अन्तर्तम अभिलाषाकी अभिव्यक्ति की है –

"उर आवत है अपने कर द्वै बर बेनी बिसाल सों नीकें कसौं।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियें अनखौं हे सुभाव के त्रास त्रसौं।

---

1. सुजान हित – 34
2. घनानंद का रचना संसार पृ0 सं0 108–109

घनआनंद यौं बहु भाँतिनि हौं सुखदान सुजान समीप बसौं।

हित–चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौं।"[1]

सम्भोग सुख की प्राप्ति के लिए वह अत्यन्त दीन होकर, हाथ जोड़कर आँखे नीची करके, हुक्म का गुलाम बनने को तैयार है। घनानंद का हृदय सम्भोग सुख की उमंग, मिलन का उत्साह, आनंद क्रीड़ा की आतुरता, रति सुख उत्साह से भरा हुआ है। नायिका के साथ शीघ्र होने वाले संयोग की सुन्दर उमंगे आनन्द रस में भींग कर कवि के रोम–रोम में व्याप्त हो गयी है –

"ललित उमंग–वेली आल बाल–अंतर तें,

आनंद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।

आगम उमाह चाह छायौ सु उछाह–रंग,

अंग अंग फूलनि दुफूलनि परे कढ़ी।

बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,

दसा सुभं सगुनौती मीकें इन है पढ़ी।

कुचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज,

फरकि सुजान चोप–चुहत महा बढ़ी।"[2]

'काम' से प्रेरित होकर काम तुष्टि से पूर्व पुरूष, अपनी इच्छा से कुछ भी करने को तैयार हो जाता है, क्योकि पूर्व सम्भोग की दशा में वह इतना बेचैन हो जाता है कि हर कीमत में प्रेयसी को प्रसन्न कर उसका सहयोग चाहता है। घनानंद ने वासना से प्रेरित होकर इस तरह के मनोभाव चित्रित किये हैं। सुजान के अंग–प्रत्यंग पर वे आसक्त हैं, उन्होंने अपना मन तो सुजान को दे दिया, फिर भी सुजान उन्हें गाली भी दे तो भी उनका मन सुजान को पाने के लिए तरसता है –

---

1. सुजान हित – 110
2. सुजान हित – 77

"दसन–बसन ओली भरियै रहै गुलाल,

हँसनि–लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै।

साँसनि सुगंध सोंधे कोरिक समोय धरे,

अंग अंग रूप रंग–रस बरस्यौ करै।

जान प्यारी तो तन अनंदघन–हित नित,

अमित सुहाग राग, फाग दरस्यौ करै।

इते पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो,

मन फगुवा दै, गारी हू कौं तरस्यौ करै।"[1]

घनानंद के सम्भोग श्रृंगार के विषय में डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने 'हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि' में लिखा है, "घनानंद की प्रेमानुभूति में श्रृंगार के संयोग या सम्भोग हर्ष, उल्लास एवं सुख भी भरा हुआ है। यद्यपि घनानंद ने थोड़े से छन्दों में ही प्रेम श्रृंगार के संयोग पक्ष का निरूपण किया है, जिसमें सम्भोग सुख की उमंग, मिलन का उल्लास, आनन्द क्रीड़ा की आतुरता रति सुख का उत्साह, सामीप्य लाभ का हर्ष तथा संसर्ग की लालसा का उद्दाम वेग भरा हुआ है। घनानंद ने इसीलिए संयोग सुख के आनंद से प्रफुल्लित रोम–रोम तथा अंग–अंग से फूटते हुए हर्षोल्लास का सजीव चित्रण किया है।"

सम्भोग पूर्व की दशा का चित्रण कवि ने उभय रूप से किया है, जिस नायिका के दर्शन मात्र से वह अपने जीवन को धन्य मानता है, आज वही नायिका संकेतों से 'काम' का खुला निमन्त्रण दे रही है –

"मृदु मूरति लाड़–दुलार–भरी अंग अंग बिराजति रंग मई।

घनआनंद जोबन–माती दसा छबि ताकत ही मति छाक छई।

बसि प्रान सलोनी सुजान रही चित पै हित–हेरनि–छाप दई।

वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कैं हटतार भई।"[2]

---

1. सुजान हित – 216
2. सुजान हित – 153

घनानंद ने पूर्व सम्भोग की जिन काम चेष्टाओं का वर्णन किया है, वे उनके सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देती हैं, साथ ही इससे घनानंद के अन्तर में व्याप्त प्रेमानुरक्ति भी मुखर हो उठती है। संयोग श्रृंगार और संभोग श्रृंगार में तमाम विविधताएं हो सकती हैं, घनानंद ने वैविध्य वर्णन की अपेक्षा गहराई से काम लिया है। सुजान के यौवन का सम्भोग पूर्व निम्नलिखित चित्र उनके आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति को चित्रित करता है –

> "सुख स्वेद–कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
> मद–जोबन, रूप–छकीं अँखियाँ अवलोकनि आरस रंग रली।
> घनआनंद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली।
> गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ–बेलि फली।"[1]

सुजान की सुन्दरता से प्रभावित होकर उनकी कामजन्य पिपासा तीव्रतर हो जाती है। कामोद्रेक के सूचक स्वेद–बिन्दुओं को उसके मुख पर छलका हुआ देखकर प्राणों की ईर्ष्या, सामीप्यलाभ की तृषा, पीतपट से स्वेद कणों को पोंछने की लालसा, सुजान को चूमने की तीव्र लालसा बढ़ती ही जा रही है। इस तरह नायक की पूर्व सम्भोग की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन किया गया स्त्री स्वभाव से लज्जालु होती है, संभोग की इच्छा होने पर भी आत्म स्वीकृति संकेतों द्वारा व्यक्त करती है, परिणाम स्वरूप 'काम' वेलि अधिक प्रफुल्ल हो उठी है –

> "रति–सुख–स्वेद ओप्यौ आनन बिलोकि प्यारो,
> प्राननि सिहाय मोह–मादिक महा छकै।
> पीतपट–छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
> चुंबन की चायनि लुभाय रहि ना सकै।
> परसि सरस बिधि रूचिर चिबुक त्यौं ही।
> कपित करनि केलि–चाव–दाँव ही तकै।
> लाजनि लसौं ही चिवनि चाहि जान प्यारी,
> सींचति अनंदघन हाँसी सो भरीन कै।"[2]

---

1. सुजान हित – 360
2. सुजान हित – 231

सुजान तथा घनानंद के सम्बन्ध व्यक्तिगत तथा घनिष्ठ थे, पूर्व सम्भोग, सम्भोग एवं पर सम्भोग के चित्रण इस तथ्य के प्रमाण हैं। वाणी व्यापार द्वारा कवि ने सहज स्वाभाविक सौन्दर्य उत्पन्न किया है। नायिका प्रेमी को धैर्य धारण करने के लिए कहती है, नायक कामातुर होने के कारण धैर्य खो बैठा है, नायिका उसे प्रबोध दिलाती हुई, नियन्त्रण में रहने तथा धैर्य धारण करने को कहती है –

"चातुर ह्वै रस–आतुर होहु न बात सयान की जात क्यौं चूके।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ ढिग ढूके।
देखि जियौ, न छियौ घनआनंद, कोंबरे अंग सुजान–बधू के।
चोली–चुनावट–चीन्हें चुभें चपि होत उजागर दाग उतू के।"[1]

घनानंद ने कृष्ण–राधा के माध्यम से तथा गोपियों द्वारा भी श्रृंगार की काम परक चेष्टाओं का वर्णन किया है, इस तरह के वर्णनों में गाम्भीर्य का प्रभाव अधिक रहा है। नायिका कृष्ण के कटाक्ष से मर्महित होकर लाज से थकित हो गयी है –

"दृग छाकत हैं छबि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनंद भीजि हँसै सुलसै झुकि झूमति घूमति चौकि चकै।
पल खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै बलकैऽरू बकै।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै।[2]

राधा–कृष्ण पर रीझ कर अनेक से लाड़–लड़ाई करती है। घनानंद ने निम्न कवित्त में नायिका के कटाक्षों और नायक की कामेच्छा को 'दान' के माध्यम से बड़ा ही मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है –

"हैं उनए सु नए न कछू उघटै कित ऐंड अमैंड अयानी।
बैन बड़ें बड़े नैनन के बल बोलति है कयौं इती इतरानी।

---

1. सुजान हित – 146
2. सुजान हित – 100

दान दियें बिन जान न पाइहै अइहै जौ चलि खोरि बिरानी।

आगे अछूती गई सो गई घनआनंद आज भई मनमानी।"[1]

उपर्युक्त सभी वर्णन रीतिबद्ध कवियों जेसे ही हैं, मात्र अन्तर इतना है कि रीतिबद्ध कवियों ने काम चेष्टाओं को वासनामय बना दिया, लेकिन घनानंद के इन वर्णनों में भाव अधिक, अंग परक कम।

सम्भोग वर्णन :– घनानंद के काव्य में सम्भोग के नग्न और खुले अत्यल्प है तथापि कतिपय छन्दों में उन्होंने सम्भोग–सुख का निःसंकोच भाव से वर्णन किया है। इस सम्वन्ध में शशि सहगल का विचार है कि "सम्भोग शृंगार में शुद्ध रति क्रीड़ा चित्रण मिलता है परन्तु उनकी विशेषता यह है कि वह चित्र काव्य–कला से समृद्ध हैं, केवल रति क्रीड़ा का प्रदर्शन मात्र उसमें नहीं। कवि ने इस ढ़ंग उसे चित्रित किया है कि मांसलता होते हुए भी मानसिकता, अनुभूत्यात्मकता उसका आंचल नहीं छोड़ पाई।"[2]

प्रस्तुत चित्र में नायक–नायिका पर्यंक पर हैं, दोनों अतिशय प्रसन्न हैं, किसी प्रकार चिन्ता, भय एवं शंका नहीं, नायिका पूर्ण रूपेण समर्पित है, सम्भोग के लिए स्वीकृति मिल चुकी है। घनानंद के सम्भोग चित्रण की विशेषता यह है कि उसमें मन मानस का संयोग हो गया है–

पौढ़े घनआनंद सुजान प्यारी परजंक,

धरे धन अंक तऊ मन रंक–गति है।

भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना,

रूचि के विचार सों समोय सीझी मति है।

ठोर ठौर लै ले राखैं औरै और अभिलाखैं,

बनत भाखैं तेई जानैं दसा अति है।

मोद मद छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,

गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है।"[3]

---

1. दानघटा –2
2. घनानंद का रचना संसार– पृ0 सं0 114
3. सुजान हित –70

सम्भोग –वर्णन का एक छन्द ऐसा मिलता है जिसमें सुजान के माधुर्यपूर्ण प्रसन्न मुख मुद्रा, उसकी काम कला प्रवीणता, चंचल और विशाल नेत्रों की सलज्जता, कामोदीप्ति के कारण मन की चंचलता तथा नेत्रों की चपलता चित्रण किया है। रति की तरंगों में प्रियतम के साथ बहते हुए हृदय निकटता, उत्साह तथा कामवासना शान्त हो जाने पर नायिका की अधमुँदी पलकें तथा पसीने के द्वारा शारीरिक शिथिलता का सरस चित्रण यहाँ प्राप्त होता है–

केलि की कला निधान सुदंरि महासुजान,
आन न समान छवि–छाँह पै छिपैयै सोनि।
माधुरी–मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल विसाल नेन लाज–भीजियै चितौनि।
पिय–अंग–संग घनआनंद उमंग हिय,
सुरति–तरंग रस–विबस उर–मिलौनि।
झुलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि।"[1]

'सुरति' का एक तीसरा चित्र है जिसमें फागुन मास की मीठी ऋतु में रात्रि में यौवन के रंग में भरे हुए, अंगों में अनंग का उत्साह समेटे, चाव के साथ रति क्रीड़ा में रत नायक–नायिका के आनन्द की कोई सीमा नहीं है। नायिका के विशाल और सुन्दर नेत्र रति क्षण में चंचल होकर अत्यधिक खिल गए हैं और रात्रि में देर तक जागरण के कारण नेत्र गुलाब की भाँति लाल हो गये हैं–

भरि–जोबन रंग अनंग–उमंगन अंगहि अंग समोय रहे।
उर फागुन–दाँव को चाव रच्यौ सुमच्यो खुलि खेलि जुगोय रहे।
घनआनंद चोपहि चोपनि लै उर चौ चंद नेकु न सोय रहे।
दृग रावरे छैल खिलार महा कहा नीके गुलाल में भोय रहे।"[2]

---

1. सुजान हित – 31
2. सुजान हित – 487

'सुरति' के ऐसे चित्र बहुत कम हैं, परन्तु इन परम्परागत चित्रों के वर्णन के समय कवि का उद्देश्य नग्नता और अश्लीलता का प्रदर्शन नहीं न ही किसी प्रकार की एन्द्रीय उत्तेजना को जन्म देना है। घनानंद ने तो अपने अन्तर के भाव को प्रतिबिम्बित करते हुए उस उल्लास को व्यंजित किया है, जो अत्यन्त अल्प मात्रा में उसके भाग्य में लिखा था।

<u>सुरतान्त वर्णन</u> :– पूर्व सम्भोग तथा संभोग दशा के समान ही 'सुरतान्त' के वर्णन भी अत्यल्प हैं, इन चित्रों में रति–मदमाती नायिका के चित्रण कवि ने चित्रित किये हैं। रात्रि भर प्रिय के साथ विहार और विलास में निमग्न निमग्न रही, भोर में ही थोड़ा सा शयन कर पायी, इस अल्पशयन के पश्चात् जब वह जगती है तो, उसके अंग प्रफुल्लित नहीं है, बल्कि अंग शिथिल होने के साथ ही साथ आलस्य विद्यमान है, वह अपने अंगों को मरोड़ती हुई जम्हाई लेती है, उसके बिखरे हुए केश मुख मण्डल में विद्यमान हैं, कामासक्ति और रात्रि जागरण के कारण मद की लालिमा है। उसका हृदय प्रिय के अनुराग में पूर्णतया डूबा हुआ है, वह सलज्ज भावों से अपने अंगो को निहारती है, संभोग–सन्तुष्टि के पश्चात् उसका चित्रण कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"रस–आरस भोय उठी कछु सोय लगी लसैं पीक–पगी पलकैं।
घनआंनद ओप बढ़ी मुख औरै सु फैलि फबीं सुथरी अलकैं।
अंगराति जम्हाति लजाति लखें अंग अंग अनंग दिपैं झलकैं।
अधरानि मैं आधियै बात धरै लड़कानि की आनि परैं छलकैं।"[1]

नायिका को कहीं किसी की नजर न लग जाये, इसीलिए सखी उस पर तिनका तोड़ती है –

"रस रैनि जगी प्रिय–प्रेम–पगी अरसानि सों अंगनि मोरति है।
मुख–ओप अनूप बिराजि रही ससि कोरिक वारने, को रति है।

---

1. सुजान हित – 17

अँखियानि मैं छाकनि की अरूनाई, हियो अनुराग लै बोरति है।

घनआनंद प्यारी सुजान लखें डरि डीठि हितू तिन तोरति है।"[1]

नायिका जो कुछ कहना चाहती है, लज्जा के कारण नहीं कह पाती है, आधी बात मुँह में ही रह जाती है, जिस नायिका की संभोग–तृप्ति हो चुकी है, उसकी दशा इसी प्रकार की होगी। घनांनद के काव्य में ऐसे जितने भी चित्रण मिलते हैं, उनमें भाव प्रवणता है, वासना नहीं। रीतिबद्ध कवि अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए वासनात्मक, रति प्रधान, काम चेष्टाओं के वर्णन किया करते थे। नायिका अनाम होती थी या राधा को अध्यात्म के सिंहासन से उतार कर वासना के कीच में डालकर रति प्रधान चित्रों का चित्रण करते थे; जबकि रीतिमुक्त कवियों को किसी किराये की नायिका की आवश्यकता नहीं थी, इस काल के कवियों ने स्वयं प्रेम किया और विरह की पीड़ा स्वयं भोगी। घनानंद हो या चाहे बोधा हों, अपनी प्रेमिकाओं को दिलो–जान से चाहते थे, इसी कारण इनके काम वर्णन में वासना की गन्ध नहीं। ये दोनों कवि दरबारी संस्कृति से पूर्ण दूर थे, इसीकारण इनके शृंगार वर्णन अनुभूति परक हैं।

'काम' अथवा संभोग स्वस्थ जीवन की एक स्वाभाविक आवश्यकता है, अतः घनानंद ने इसका उसी रूप में वर्णन किया है। कवि ने एक चित्र में सोती हुई सुजान का चित्रण प्रस्तुत किया है, जो रातभर प्रिय के साथ रति क्रीड़ा करती रही, और भोर में थककर सो गयी। काम से मतवाली होकर उसने संभोग किया, उसके केश बिखरे हुए है, उसके गले का हार टूट गया, मुख पर तृप्ति की झलक है, उसकी शारीरिक दशा संभोग की अवस्था का वर्णन करती है –

"मद–उनमाद–स्वाद मदन के मतवारे,

केलि कै अवार लौं सँवारि सुख सोए हैं।

भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु,

जंघनि सुधारि तन मन ज्यौ समोए हैं।

---

1. सुजान हित – 359

सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,

सोए हूँ सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं।

छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,

भरे रस-सार घनआनंद अहो ए हैं।"[1]

सुजान के इस सामीप्य को कवि ने 'महासुख' का नाम दिया है, यह ऐसा 'महासुख' है, जिससे उसके अंग-प्रत्यंग भीग उठे, इस सुख का स्वाद अवर्णनीय है, इस सुख को मात्र वही जानता है, जिसने इस स्वाद को प्राप्त किया है। इस तरह का 'महासुख' कहने की नहीं अनुभूति की वस्तु है। शुद्ध सामीप्य में दो हृदय मिलकर एकाकार हो गये, रूप की तरंगों की बाढ़ से हृदय में प्रेम का प्रवाह तीव्र होकर प्रवाहित होने लगा, इससे बड़ा 'महासुख' और क्या हो सकता है –

"मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रह्यो है।

स्वाद जगे रस रंग-पगे अति, जानत वेई न जात कह्यो है।

द्वै उर एक भए धुरि कै घनआनंद सुद्ध समीप लह्यौ है।

रूप-अनूप तरंगनि चाहि तऊ चित-प्रवाह बह्यौ है।"[2]

घनांनद ने संभोग-वर्णन के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कवित्तों की संरचना की है, जिसमें संभोग की मादक अवस्था की मधुर स्मृतियों का चित्रण है, सुजान के साथ शारीरिक संसर्ग से वह बेसुध हो जाता है, उसके अंग-प्रत्यंग से काम-ज्वाला उठने लगती है। कवि रति की तीव्र इच्छा से प्रेरित होकर सुजान के पैरों को चूमता है तो कभी उसके कपोल सहलाने लगता है –

"मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,

दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।

रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी,

चाय चूमि चूमि कै कपोलन सों माजिहौं।

---

1. सुजान हित – 382

2. सुजान हित – 236

जान प्रान प्यारे अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,

बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भाजिहौं।

कब घनआनंद ढरौंहीं वानि देखें सुख,

सुधा-हेत मन-घट-दरकनि राँजिहौं।"[1]

एक बार सुजान से शारीरिक सम्पर्क हो जाने के बाद पुनः उसी सुख को प्राप्त करने की कवि की तीव्र इच्छा रहती है। वह सुजान से कहता है कि तुम्हारे स्वाद के अतिरिक्त संसार के अन्य सुख के स्वाद फीके लगने लगे हैं। यदि दुबारा शारीरिक संसर्ग का अवसर मिला तो मैं समझूँगा कि मेरे भाग्य जग गये, इस तरह के अवसर, मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होंगे –

"है निसवादिल जात रसौ मन तेरे सुभाव मिठासहिं पागै।

आन दै जान कहौं तुव आनन लागि न आन सों लोयन लागैं।

चैन मौ सैन करैं सब ओर तें भावते भाग जौ तो मिलि जागैं।

रंग रचै सुठि संग सचैं घनआनंद अंगन क्यौं सुख त्यागैं।"[2]

घनानंद के संयोग शृंगार का विवेचन करने के पश्चात् एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि संयोग शृंगार सम्बन्धी कवित्तों की रचना उन्होंने कम की है। उन्होंने सुजान से प्रेम किया, शारीरिक सम्पर्क भी स्थापित किया, लेकिन शृंगार वर्णन में गहनता, भावात्मकता है, व्यापकता है। इन वर्णनों में अश्लीलता, भदेसपन नहीं है। घोर शृंगार वर्णन मांसल स्थूल होते हुए भी उनमें चित्रात्मकता तथा भावात्मकता है। डॉ0 कृष्ण चन्द्र वर्मा का विचार है कि, "वीभत्सता और कुरुचि का कहीं लेश भी नहीं और मन का भाव, इन्द्रियों की हर वासना पूरे-पूरे तौर से कह दी गयी है। सुजान के सम्भोग वर्णन में भी सम्भोग की स्थूल क्रियाओं का वर्णन विशेष नहीं किया गया है। ध्यान अधिकतर कवि की मानसिक दशा के निदर्शन पर केन्द्रित मिलता है। सम्भोग वर्णन में वासना और एन्द्रिकता का

---

1. सुजान हित – 328
2. सुजान हित – 63

का भाव पूरा–पूरा है, बहुत सारा रीझ और आकर्षण उसी से सम्बन्धित है, पूरा का पूरा प्रेम व्यवहार लौकिक है, सारी रीझ इन्द्रियों की ही है, इन्द्रियो के ही प्रति है, पर गन्दी कामुकता और छिछोरापन कहीं नहीं। ऐन्द्रिय रीझ और वासना एकनिष्ठ होकर परिष्कृत और पवित्र हो गयी है। कवि की सच्ची प्रीत, लगन और निष्ठा ने उसमें दीप्ति और पुनीतता पैदा कर दी है।"[1]

<u>संयोग में वियोग</u> :– घनानंद का प्रेम वर्णन चाहे संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में अभिलाषा प्राधान्य है। कवि ऐसा असाधारण प्रेमी है, जिसे संयोग में भी सुख शांति नहीं है, संयोग में वियोग का भय बना रहता है। घनानंद की ऐसी अनुभूति किसी भी रीतिकालिक कवि में दिखाई नहीं देती है। इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी का कथन है कि –

"घनानंद की प्रेम साधना इसलिए चरम साधना के रूप में प्रतिष्ठित है। उनकी चरम साधना सामान्य प्रेम प्रवाह से बहुत आगे है, विरह में मंजिष्ठा रोग हो जाता है, प्रेम का पूरा परिपाक हो जाता है या प्रेम का भोग न होने से वह राशिभूत हो जाता है, यह साहित्य परम्परा कहती चली आ रही है, पर वहाँ प्रेम की वह चरम साधना दिखाई नहीं देती, जहाँ वियोग में ही नहीं संयोग में भी वियोग का अनुभव होता है।"

आचार्य मिश्र का कथन वास्तव में गम्भीर है। सामान्य प्रेमी तो एक बार प्रिया के दर्शन पाकर धन्य हो उठता है, लेकिन बेचारे घनानंद की विषम स्थिति है, एक तो वह प्रियतमा के बार–बार दर्शन चाहते हैं, दर्शन मिलने से इस बात का भय खाये जाता है कि प्रिया के जाते ही उन्हें वियोग के पयोधि में डूबना पड़ेगा, अतः संयोग में वियोग का भय व्याप्त रहता है। दोनों प्रेमी जब मिलते हैं, तो हृदय में असंख्य अभिलाषायें जन्म लेने लगती हैं –

"मुख चाहनि–चाह–उमाहन को घनआंनद लाग्यौ रहैई झरै।
मनभावन मीत सुजान–संजोग बने बिन कैसे बियोग टरै।

---

1. घनआनंद – डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा

कबहूँ जौ दई–गति सों सपनो सो लखौं तौ मनोरथ भीर भरै।

मिलि हू न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि व्यौरि परै।"[1]

घनानंद की दशा विचित्र है, प्रिया उसके एकदम समीप है, उसे भय है कि हाय, अभी चली जायगी, इसी कारण उसका हृदय तेजी से धड़कने लगता है, आसन्न वियोग की आशंका उसे ग्रसित कर देती है, अतः संयोग की अवस्था में भी वह वियोग की अवस्था में पहुँच जाता है –

"ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं धरकै खरकै दुख दोहतु है।

दृग–आगे ते बैरी कहूँ टरै न जग–जोहनि–अंतर जोहतु है।

घनआनंद मीत सुजान मिले बसि बीच तऊ मति मोहतु है।

यह कैसो संजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहतु है।"[2]

सुजान के रूप–सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कवि कहते हैं कि मेरा मन उसी सुजान सौन्दर्य से हमेशा बंधा रहता है, यह कैसी अनोखी लगन है कि बिछुड़ने में मिलने की आकाँक्षा तथा मिलने पर वियोग का भय व्याप्त रहता है –

"मोहन अनूप रूप सुन्दर सुजान जू को,

ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोद की।

अनोखी हिलग दैया, बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,

मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।

कैसें धरौं धीर बीर। अति ही असाधि पीर,

जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की।

देखें अनदेखें तहीं अटक्यौ अनंदघन,

ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की।"[3]

इस सम्बन्ध में डॉ0 शशि सहगल का मन्तव्य है कि , "संयोग में

---

1. सुजान हित – 72

2. सुजान हित – 104

3. सुजान हित – 276

वियोग सम्बन्धी कवित्त कवि की अपनी प्रेमानुभूति से सम्बन्धित होने के कारण अत्यन्त मार्मिक, हृदयग्राही, भावप्रवण स्वभाविक तथा परम्परा मुक्त हैं। रीतिबद्ध कवि को इस अनुभूति से दूर का भी परिचय नहीं, क्योंकी लक्षण परम्परा में ऐसी किसी भावविभूति का वर्णन लक्षणाचार्यो ने नहीं किया अतः प्रेम तो वे कवि, आचार्य से पूँछ कर करते थे तो उनके बताये हुए मार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग का तो वर्णन वे कैसे करते?"[1]

<u>स्वप्न संयोग</u> :- मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार व्यक्ति की जिस इच्छा की तृप्ति जागृतावस्था अथवा चेतन स्तर पर नहीं होती है, वह ग्रन्थि बनकर अवचेतन मस्तिष्क में व्याप्त हो जाती है। व्यक्ति जब सोता है, तब उसका अचेतन मन सक्रिय हो जाता है और स्वप्न के माध्यम से उस इच्छापूर्ति का सुख लूटता है। घनानंद ने जो संयोग चेतन स्तर पर नहीं भोगा, उसका वर्णन उन्होंने स्वप्न-वर्णन में किया है, किन्तु वियोग की प्रबल पीड़ा उन्हें स्वप्न में भी चैन से नहीं रहने देती है -

"साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गन छावत।
देखैं कहा?सिपने हू न देखत नैन यौं रैन दिना झर लावत।
जौ कहूँ जान लखैं घनआनंद तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौन बियोग-भरे अँसुवा, जु संयोग मैं आगेई देखन धावत।"[2]

इस सम्बन्ध में डॉ0 मनोहर लाल गौड़ का कथन है कि, "प्रेमी प्रिय का निरन्तर ध्यान करने से बौद्धिक वियोग का अभ्यस्त हो गया है। वियोग में हृदय स्थित प्रिय से आलाप सम्भाषण आदि नहीं हो सकता। यह अवस्था संयोग में भी बनी रहती है। संयोग, वियोग तुल्य हो जाता है।xxx इस तरह अभिलाषा, अन्तर्ध्यान, वियोग की अनन्यता तथा प्रिय की उदासीनता आदि कारणों से घनानंद का संयोग सर्वत्र वियोग-संयुक्त है।xxxअश्लीलता का अभाव तथा रसानुभूति का बौद्धिक रूप घनानंद की देन माननी चाहिए। इनका श्रृंगार, भावात्मक से बौद्धिक रूप में विकसित होता गया है। प्रेरणा कहीं से भी हो, पर अनुभूतियों का स्वरूप अभारतीय नहीं है। यह चिन्तन में आने वर्णनों की परम्परा से संगत प्रतीत होता है।"[3]

---

1. घनानंद का रचना संसार - पृ0 सं0 123
2. सुजान हित - 214
3. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा

बोधा के काव्य में श्रृंगार

पहिले लिखा जा चुका है कि रीतिकालिक कवि ईश्वर उपासना के बजाय धनोपार्जन में लगे रहे, अश्लील चित्रों को चित्रित कर अपने राजा का मनोरंजन करते रहे, ऐंसी परम्परा से हटकर रीति मुक्त धारा प्रवाहित हुई, जिन्होंने अपनी कविता में वासना को स्थान नहीं दिया, रीति की नींव पर नयी भव्य अट्टालिका खड़ी की, जो परम्परागत संकीर्णता से बहुत परे थी।

घनानंद के पश्चात् बोधा रीतिमुक्त कवि हैं, जिन्होंने संयोग श्रृंगार को अपने काव्य का आधार बनाया, बोधा ने श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का विस्तार से वर्णन किया है, रूप लिप्सा के साथ-साथ साहचर्य का भी समावेश प्रस्तुत किया है। बोधा के प्रेम का आलम्बन सुभान है, उससे प्रेम किया, राजा द्वारा निष्कासित होने पर 'विरहवारीश' की रचना की, माधव, लीलावती, कामकन्दला की पूरी कथा राजा को सुनाई गयी, 'विरहवारीश' रचना सुनकर राजा प्रसन्न हुये और 'सुभान' से मिलने का आदेश दे दिया।

'इश्कनामा' में कवि ने स्वयं अपना प्रेम, संयोग श्रृंगार का चित्रण प्रस्तुत किया तो 'विरहवारीश' में माधव, लीलावती, काम-कन्दला के संयोग का वर्णन है, बोधा ने सुभान के रूप सौन्दर्य का इस प्रकार से वर्णन किया है - उसका कुन्दन के समान गौर वर्णी रंग, हस्तिनी जैसी मादक चाल मन मोहक है -

"है द्विजराजमुखी सुमुखी अति। पीन कुचाहँ गरू गज की गति।
हे हरिनाक्षिंय बाल प्रबीनिय। त्यों द्युति दामिनी की करि छीनिय।
पन्नग मेचक सी बर बेनिय। कुंदन लौं झलकै सुख देनिय।
है नवली अति प्रीति भरी त्रिय। तीक्षन भौंह कटाक्ष कर्‌यौ बिय।"[1]

बोधा ने सौन्दर्य वर्णन में संश्लिष्ट रूप का ही सहारा लिया है, चाहे वह लीलावती का हो या काम-कन्दला का। उसके नेत्र काले होने के साथ-साथ हिरनी के समान विशाल हैं, कानों को छू रहे हैं -

---

1. विरहवारीश - 47/44,45

"कारे सेत बर्न अनियारे भाल ही सृंगार
मारत जुरे तें ऐसे समराधिकारी हैं।
रहत सुरंग चाहैं सुर बहु नायकन,
नित नव केलि करिबे कों कहतकारी हैं।
बोधा कबि चलत न मारग निवाह नाहि,
नरबर पाइ मारे चाह व्यभिचारी हैं।
दृग मृग एक रीति सों बखाने माने बे तौ,
काननबिहारी येऊ काननबिहारी हैं।"[1]

`कवि ने अंग–प्रत्यंग का सुन्दर उपमानों की सहायता से स्वाभाविक चित्रण किया है, इन वर्णनों में कहीं भी कृत्रिमता नहीं, किसी भी प्रकार का आवरण नहीं, स्वच्छन्द प्रेम का रूप सौन्दर्य स्वाभाविक रूप से प्रवाहित है –

"तैं तो हेरी हिर्न ओर हिर्न हेर्यो हरि ओर,
हरि हेर्यो बिधि ओर गुसा यों विचार्यो है।
तीक्षन कटाक्ष चाके विष सों सँवारे जाने,
रंचक चितौन में सुरंग कियो कारयो है।
बोधा कवि जानिकै सरोस हरिजू कौं विधि,
ठौर–ठौर सुधा को निवास यों निहार्यो है।
चिबुक ना तेरो बीर अमृत की चौंड़ बिधैं,
चन्द्रमा के धोखें मुख चन्द्र छेदि डार्यो है।"[2]

ठोढ़ी पके आम की बानिक तिल अलि छौन बिराजै।
अल्प भार लचि जात ग्रीव तब मस्त कबूतर लाजै।
कनकलता की बनिक बाहु बिय अँगूरी चंपकली सी।
कीन्हीं नखन लखत बहु लज्जित नखतन की अवली सी।
हाटक बरन कठिन उन्नत कुच गोल गोल गदकारे।
कमल बेल गेंदा नारंगी चक्रवाकजुग वारे।
बिबि कुच बीच सकीन संधि में मन मतंग उरझानो।
सकै न निकसि मृनालतार तहँ निकसि पर क्यों जानो।
चंपक कमल चंद्रिका झूठी रंग पर वारों सोनो।

रतनाकर की लहर निकट कटि रेखा तीनमि मानो।

कनकईंट सी डीठियतु कनक पिंड़ी उर लीनी।

नामी बर रोमावलि व्याली कै मननव्य मथोनी।"[1]

बोधा ने नायिका के बड़े नेत्र, गौर वर्ण, केश-पाश का बहुत ही स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है- यह वर्णन रीतिकालिक नखशिख वर्णन पर ही आधृत है -

"बड़वारे कारे सटकारे केसन गूँदी बेनी।

मीतन के हीतन सीतल क्यों ब्याल बधू दुख उदारी।

रूप रास विच केसपास बिच राजत माँग उदारी।

मनो धँसी घनस्याम मध्य तें ससि सों सुर सरिधारी।

नीकी लसी लसी मुख ऊपर बंक अलक अलबेली।

गई दरार चंद्र के आनन त्यों चारु नवेली।

नितप्रति नई कला कों धरि ससि तेरे मुख सों जोरै।

सम न होय पूनो लौं सजि फिर कुहू रैन लौं फोरै।"[2]

गौर वर्णीय नायिका का अंग-प्रत्यंग का प्रदीप्त है, पूर्णिमा की चंद्रिका की तरह प्रतिभासित है -

"मदन सदन प्रान प्यारी को बदन ताकों,

चाहि चाहि सुधाधर धीर न धरतु है।

रहैं निसि बासर समान अकलंक उर,

संग सकलंक सोई मानि हहरतु है।

बोधा कवि नितप्रति नौतम कला कों धारि,

मास मास यौं ही उपहासतु मरतु है।

परवा तें पूनो लौं सो जोरिबो करत तैसे,

पूनो ते कुहू लौं फेरि फोरिबो करतु है।"[3]

नायिका की भौंह कमान की तरह टेढ़ी हैं, बोधा ने पौराणिक इतिवृत्ति

---

1. विरहवारीश - पृ0 सं0 102-103/33,34,35,36
2. विरहवारीश - 99-100/23,24
3. विरहवारीश - 100/25

का सहारा लेते हुए सुन्दर उपमान के द्वारा रूप चित्रित किया है। यहाँ मैं एक बात स्पष्ट रूप से कहना चाहूँगी कि बोधा ने रीतिकालिक कवियों की तरह हस्त कौशल बुद्धि चातुर्य दिखाया है –

"त्रेता माहिं साजो एक धनु भृगुनंद सोई,
लीन्हयो रघुनाथ ने असुर बरियाने में।
साजे द्वै धनुष नीके सीताजू के बालकन,
कीन्हें द्व भारी अस्वमेघ जज्ञ ठाने में।
बोधा कवि द्वापन में धनुष धनंजै साजो।
करन के कारन कठोर सर ताने में।
कलऊ में कीन्हों महावीरन के मारवे कों।
कठिन कमानैं तेरी भौंह ये जमाने में।"[1]

कानकंदला के शरीर में लगा हुआ अंगराग, पूरा शरीर विभिन्न आभूषणों से आभूषित है उसके केश अंजन की तरह काले हैं, नेत्र चंचल और विशाल हैं, वाणी कोकिल की तरह है, चोली और घाघरा पहनकर उसने काम–युद्ध करने का बाना धारण किया –

"अंगराग भूषन विविध मुख वास राग,
केसपास मंजन यों अंजन सरस की।
अमल सुवास लोल लोचन चितौन चारु,
हँसन लवन पाँव जावक परक की।
गबन करी लौं बानी कोकिला प्रबीन अति,
पूरन सनेह चाह प्यारे के दरस की।
सोरहो सृंगार साजे सहित विलास राजै,
कंदला अखाड़े बीच बारह बरस की।
चोली सारी घाँघरो तरक समय सब देखि,
तरकस सत्त मनोज का काम कंदला लेखि।"[2]

---

1. विरहवारीश – 100/26
2. विरहवारीश – 103,104/39,40

काम कंदला का रति के समान स्वरूप देखकर माधव का सारा विरह समाप्त हो गया उसका उद्दीपक रूप इतना मादक है कि मन सदैव उसी को निहारने का संकल्प लिये रहता है –

"चारों भाग बाग तड़ग लखि नीके केर,
बसती निहारी जैसी मूरत सूचैन की।
उन्नत हवेली पै खड़ी है अलबेली लसै,
रति सी नवेली क्यों समान होहि मैन की।
बोधा कवि धन गुन रूप की कहा लौं कहौं,
दान औ पुरन गुजरान द्यौस रैन की।
बिसर्‌यो बियोग भयो माधवा मगन देखि,
काम कैसी कुटी पुरी राजा कामसैन की।"[1]

रीतिमुक्त धारा में बोधा ऐसे कवि हैं, जिन्होंने नायिका सौन्दर्य के साथ–साथ पुरुष सौन्दर्य को उतने ही भव्य स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है। माधव के केश घुंघराले हैं, कुमकुम का त्रिपुण्ड माथे में सुशोभित है, तो कमर में पीताम्बर सुशोभित है, गले में पड़ा हुआ मोतियों का माल मन को आकर्षित कर रहा है, तो रक्ताभ नेत्र बरबस आकृष्ट कर रहे हैं, माधव के समान सुन्दर पुरुष इस संसार में दूसरा कोई नहीं है –

"सिर जर्द पाग बिलसत सुबेस। रहि जुल्फ जुल्फ घंघरारि केस।
उर सुमनहार तुर्रा जहीन। कुमकुम त्रिपुंड भृकुटी पटीन।
कटि पीत पट तुम देख। कछनी सुरंग बिसेख।
गल बीच मुक्तमाल। पग पाउड़ी लहि लाल।
जगत तड़ित गजरा जु हाथ। चंपक बरन तन रतिनाथ।
कुंडल लसत नवल सुरूप। छवि कों देखि रीझत भूप।
कर में लसत सुरंग। झलकत प्रेम हिये उतगं।
अरून कटाक्ष भरे सनेह। कर में बीन अति छबि देह।"[2]

---

1. विरहवारीशी – 95/39
2. विरहवारीश –48/51–54

माधव का समग्र सौन्दर्य इस तरह का है कि जो भी उसकी ओर देख लेता है, सम्मोहित हुए विना नहीं रह पाता, मीना कृति कुंडल–कुंदन के समान दमकता गौरवर्ण, कमर में पीताम्बर, चन्द्रमा के समान मुखाकृति को देखकर लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि इस प्रकार के द्वितीय कामदेव का अवतरण इस पृथ्वी पर कैसे हो गया? –

"पाँवड़ी मुकुट खौर केसर लसत भाल,

मीना कृति कुंडल कपोलन पै ह्वै रहे।

कुंदन वरन तन सुंदर मनोज जनु,

बीना कर लीन्हें पोला पावन में ठै रहे।

लकुटी रंगीन औ प्रबीन ओढ़े पीत पट,

कौलवत धोती फूलहार छवि दै रहे।

चन्द्रवत आनन बिलोकिकै चकोरवत,

चौंकि से चके से लोग माधवै चिते रहे।"[1]

कन्दला का रूप यौवन उन्माद इस तरह का है कि रसिक उसकी ओर सुध–बुध खोकर देखते रहते हैं, इस तरह का वर्णन रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों जैसे हैं, सौन्दर्य के श्रृंगारिक उपादान चित्रों में बोधा का कवित्त कुछ कमजोर हुआ है –

"उन्नत उरोजन में दृगन सरोजन में,

भौंहन के ओजन में मंद मुसक्यान में।

रसन दसनहूँ में कंचुकी कसनहूँ में,

अंजन रसनहू में बेनी सुख दान में।

बेंदी के मसकिबे में नाहीं के कसकिबे में,

रोस कै ससकिबे में रस की रिसान में।

भूले कोऊ अंत ही बतावत हैं बुद्धिसेन,

अंमृत बसत है बिसेष नवलान में।"[2]

---

1. विरहवारीश – 99/14

2. विरहवारीश – 124/39

बोधा ने यौवन के ऐसे चित्र खीचे हैं, जो कि भावों की सघनता को बढ़ा देते हैं, इस तरह के उद्दीपक चित्रण सहृदयों के मन को मोह लेते हैं। बोधा की मान्यता हैं कि मानव योनि में जन्म लेकर प्रेम को नहीं परखा, सौन्दर्य को नहीं देखा तो मानव होना बेकार है –

"रसहीन जान्यो जुवापन सो जहूरा पाइ,
छाती और नजर के नेजा जो नहीं लये।
भय ने दिवाने थोड़ी मुरि मुसक्यानहूँ में,
कंचुकी करन कुचकोर सों नहीं हये।
बोधा कवि बारन बधें न छूटै छूटी लाज,
कसक में कसे नाहीं सी सी सों नहीं नये।
नेह प्रानप्यारी के न हार्‍यो देह गेह ऐसो,
जो न इस्क जानो सो तौ मानुष बृथा भये।"[1]

पूर्व सम्भोग वर्णन :– बोधा ने सुभान से प्रेम किया, शारीरिक सामीप्य सुख को प्राप्त किया, इस तरह के वर्णन में उन्होंने कहीं दुराव और छिपाव से काम नहीं लिया। अपनी प्रेम गाथा के साथ ही साथ विरहवारीश में माधव, काम कन्दला के पूर्व सम्भोग के सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किये हैं। माधव, लीलावती के पास पहुँचता है, उमंगित होकर, सेज में बैठकर हाथ में बीड़ा देकर सम्भोग की याचना करता है। इस तरह के वर्णन में कृत्रिमता नहीं, सहजता है, स्वाभाविकता है –

"बैठि एक ही सेज मैं लगे दोऊ बतरान।
त्यौं सुमुखी रूचिकै दिये तिय के कर में पान।
व्यभिचारिन कों केलि में झेल न रंचक होय।
लाज तजैं उर उर भजैं हरबरात हैं दोय।
याते कुछ बरने न कछु आभूषन सृंगार।
व्याभिचारिन कीं केलि में केवल कहतबिकार।"[2]

---

1. विरहवारीश – 124/39
2. विरहवारीश – 61/2–4

सहलियाँ, लीलावती का सुन्दर वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित कर अंग-राग लगाकर, केश में पुष्पों का गुच्छा लगा, चन्द्रमा की चान्द्रिका से प्रतिभाषित सेज तक ले गयीं, माधव पान का बीड़ा देकर कुच मर्दन प्रारम्भ कर देता है, लीलावती जहाँ पुरूष स्पर्श से उत्तेजित होती है, तो दूसरी लज्जा से स्पर्शन न करने का निवेदन करती है।

इस तरह बोधा ने पूर्व सम्भोग के सहज चित्र उकेरे हैं --

"पहिराय वसन सुरंग। तिमि लसत केसर अंग।
सृंगार भूष नवेलि। अंग अंग साज सुबेलि।
त्रिविधा सुगंध समेत। छबि फूलमाला देत।
चाँदनी सेत बनाय। पुनि सेज बंध तनाय।
बीरा परस्पर खात। रस अंग अंग वतात।
छाती छुई जब नाथ। तब बाल पकर्यो हाथ।
जथा नरंगी रसमी तिहि समान कुच दोइ।
पूरब पुन्यन ते पुरूष ग्रहन करत है कोइ।"[1]

बोधा ने व्यवहार पक्ष के साथ ही साथ सिद्धान्त पक्ष का भी वर्णन किया है. पूर्व सम्भोग के समय निम्न शारीरिक एवं मानसिक क्रिया व्यापार होते हैं -

"बीरा विप्र के कर खात। तिय के कँपे थर-थर गात।
ऊग्यो अंग अंग अनंग। समझो कोप को यह अंग।
स्वेद कंप रोमाँच फुर अस्रुपात जंभात।
प्रलप बेबरन भंगसुर तन तोरत अलसात।[2]

जैसे ही माधव ने काम कन्दला को पान का बीड़ा दिया वैसे ही थर-थर काँपने लगी, उसके अंग-प्रत्यंग में काम समाविष्ट हो गया, कामोद्रेक, स्वेदबिन्दु उसके मुख पर छलक आये, माधव की काम-पिपासा बढ़ती चली जा

---

1. विरहवारीश - 61/5-8
2. विरहवारीश - 116/24, 25

रही थी, क्योकि काम कन्दला की अस्वीकृति में ही स्वीकृति थी। बोधा ने इस तरह के चित्रण को जिस स्वाभाविकता सहजता के रूप में व्यक्त किया है वह स्वयं उनकी भोगी हुई स्थिति थी –

"प्रगट होत पियपरस तें ये लक्षन तिय अंग।
निरखि कंदला देह तें माधव चाह्यो रंग।
तिय की गही पिय ने बाँह। तव तिय कही नाहीं नाँह।
मोकों दरद हूहै मित्त। ऐसी आनियें नहिं चित्त।
पग के छुवत उलटी बाल। माधो गल गह्यो त्यों हाल।
ज्यों ज्यों करत कारन वाम। त्यों त्यों बढ़त द्विज हिय काम।
नाहीं कहत बारंवार। टूटत जलज मनिमय हार।
कुच के छुवत झुकि झहारात। तकिया ओर टरकत जात।"[1]

बोधा के पूर्व सम्भोग चित्रण इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि घनानंद के बाद इस क्षेत्र में महारत उन्हें ही हासिल थी। काम कन्दला की मौन अस्वीकृति में भी स्वीकृति का होना, नायिका की कामातुर स्थिति को देखकर माधव का स्वाभाविक रूप से उत्तेजित होना, नायिका की बार–बार प्रार्थना, सखियों से बचाने के लिए बार–बार आग्रह, यह तमाम ऐसे चित्र है, जिनमें कवि को सफलता मिली है. कृत्रिमता के आवरण से बहुत परे, स्वाभाविकता के साँचे में ढले, यह हैं दृश्य बिम्ब –

"गही बाल की हाल ही पीन छाती। भई अंकु नौ को हिये यों डराती।।
कहै नाथ पै हाथ छाती न धारो। हितू जान हितू मान धाउर् विचारो।।
निसा रेग सफर्जंग कीनहों बिहानो। हिये धूर धरा सो नहीं थिरथिरानो।।
हिये लाग सोवो न होवो अधीरं। कहा भीर ऐसी न तोरो सरीरं।।
गह्यो माधवा कोपिकै लंक झीनी। हकारं नकारं सुरं बाल कीनी।।
दिया मेल डारो उधारो न देहं। छुबो ना पिया मोहिया पाइ येहं।।
करै ताबिया फाबिया पीउ काहीं। रजा यों मजा केलिके ठौर नाहीं।।
करै काटि सीबी गरीबी बतावै। सुने तें उन्हें माधवा चैन पावै।।"[2]

---

1. विरहवारीश – 116–117/26–29

सम्भोग वर्णन – बोधा ने अपने काव्य में सम्भोग के तमाम छन्द लिखे हैं, उनके यह चित्र, काव्य कला से समृद्ध तो हैं ही साथ ही रति क्रीड़ा का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी चित्रित करते हैं, इसमें माँसलता है, अनुभूत्यात्मकता है, साथ ही मनोभाव की सुन्दर प्रस्तुतीकरण भी है।

नायक, नायिका को सम्भोग के लिए आमन्त्रित करता है, नायिका अस्वीकृति के साथ स्वीकृति देती है, उसके मन में उत्सुकता है, भय है लज्जा है, नायक ने जैसे ही नायिका का कुच मर्दन किया, कम्पित होकर मौन हो गयी –

"तिय चाहत बाँह छुड़ाय भजौं। पिय चाहत है कबहूँ न तजौं।
कसिकैं संसिकै रिस चित्त धरै। ननकार बिकारन और करै।
जबहीं पिय बाँह प्रिनाथ गहै। तबहीं तिय बास न छोड़ कहै।
पग के छुवते अकुलात खरी। मुख से निकसै सखि हाय मरी।
कर छूटत बाल उठाय चलै। तब माधव पीन उरोज मलै।
पुरलोगन को डर बाल हिये। बिगरै सुर रंचक सोर किये।
पिय सों बिनबै जिन बाँह गहौ। तजि और सबै हठ सोय रहौ।
हँसिये खिलिये कहिये बतियाँ। रतिनाथ न हाथ धरौ छतियाँ।
मदनज्वर माधव बूड़ि रहयो। भय कों तजिकै निहसंक गहयो।
अति कोपित कंथ भयो जबहीं। थहरान लगी बनिता तबहीं।
पुट चापि रही कसि जंघ दुबौ। पिय सों बिनबै जिन अंक छुबौ
बल कै कर सों कुच चापि रही। पिय तो घुँघराहि कि फँद गही।"[1]

नायक और नायिका पूरी रात रति क्रीड़ा में तल्लीन रहे, प्रातः काल होने पर भी उनका उत्साह कम नहीं हुआ, काम ज्वर से पीड़ित होकर पुनः संलग्न होना चाहते हैं –

"केलि करी सिगरी निसा निसा न मानी चित्त।
साहस कै माधो चल्यो मोहि बिदा दै मित्त।

1- विरहवारीश – 62/11–16

"सिगरी रैन केलि तिन कीन्हीं। भोर टेर तमचुर ने दीन्ही।
चाहत उठो उठो नहिं जाई। रहे दुवौ हिय सो लपटाई।
हिय सों छूटि सकत हिय नाहीं। गरे लगे दोनों गिरि जाही।
भोर भय जग की भय होई। बिछुरन क्यौं सकि ये दुख सोई।"[1]

माधव ने काम कन्दला को, सम्भोग के लिए आमन्त्रित किया, कन्दला ने आत्म स्वीकृति दे दी, कुच स्पर्श किया वैसे ही मणिमय हार टूट गया. तकिया खिसक गया। नायक ने रति क्रीड़ा प्रारम्भ की, नायिका ने सखियों को बार-बार बुलाने का प्रयास किया, कि वे इस विपत्ति से उसे बचा लें. बाहर खड़ी सखियाँ हंसती रहीं। माधव ने नायिका की जंघाओं को कस कर पकड़ लिया -

"पग के छुवत उलटी बाल। माधो गल गहयों त्यों हाल।
ज्यों ज्यों करत कारन बाम। त्यों त्यों बढ़त द्विजहिय काम।
नाहीं कहत बारंबार। टूटत जलज मनिनय हार।
कुज के छुवत झुकि झहरात। तकिया ओर टरकत जात।
कमर ग्रीव पकरी दोय। बाला रही दूनर होय।
सखियन सों कहै तुम धाय। मो कहँ आय लेह बचाय।
राखी दुबौ जँघन बीच। कुच भुज नैन दैके घींच।
माधो गही बाल रिसाय। जंघा भुजा ऊपर नाय।
लागी कँपन थर थर बाम। पिय पे चलत काँपै ठाम।
उझकत झुकत यों थहरात। चल दल पात लौं हहरात।"[2]

माधव और काम कन्दला ने सारी रात रति क्रीड़ा की, जिस तरह से दो योद्धा युद्ध के मैदान में अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करते हैं, ठीक ऐसे ही माधव और काम कन्दला दोनों ही रति युद्ध में दक्ष रहे, कोई पक्ष न तो विजेता रहा ना पराजित -

---

1. विरहवारीश - 63/22-24
2. विरहवारीश - 117/28-32

"प्यारे जेतेवारे के बरैया कुच दानों मल्ल,

जुद्ध के करैया कहूँ टारे न टरतहैं।

सुभट विकट जुरे जंघे बलवान ते तो,

भुजन सों लपटि न नेकु विहरत हैं।

बोधा कवि भृकुटी कमान नैना बानदार,

तीक्षन कटाक्ष सर सेल से परत हैं।

दंपति सो रति के बिहार बिहरत तहाँ,

पायल से पायल गरीब विदरत हैं।

छल बल बालम बाल सों लयो मजा करि केलि,

नबढ़ा बाल खिलायबो जथा बाज कों खेलि।"[1]

माधव और काम कन्दला इस रति युद्ध में सामरिक योद्धा बनकर युद्ध मैदान में डटे रहे. ऐसा प्रतीत होता था, इस प्रेम संग्राम में एक दूसरे को घायल कर देना चाहते थे, स्त्री की लज्जा का भाव समाप्त होता रहा –

"करै जोर झकझोर उल्छार जंघै। लगै बाल के चार आसू उलंघै।।

हिलक के फिलक् के नहीं होत साँती। किलक् के पिया चाह भै लाज माती।।

दचक्के मचक्के घने सोर चारो। महीडोल सो रावटी में निहारो।।

परो प्रेमसंग्राम को सो बखानै। करै सोर पायल्ल घायल्ल मानै।।"[2]

नायक और नायिका चन्द्रिका की छिटक चाँदनी रात में सेज बिछा कर रत्नों से जटित तकिया लगाये हुये, काम क्रीड़ा में रत हैं, यह ऐसा अनिर्वचनीय सुख है,. जो वर्णन से परे है। कभी सुन्दर सेज तो कभी मिट्टी के ढेलों पर पुआल बिछाकर ही कामालाप –

"चाँदनी सेज जरी की जरी तकिया अरू गेंडुआ देखि रिसाती।

राती हरी पिपरी लगीं झालरैं केसरधारी बिरी नहिं खाती।

---

1. विरहवारीश – 118/39,40

2. विरहवारीश – 123/33,34

बोधा इते सुख पैन रमै उत कारो को साँवरो रूप सिहाती।

यार के साथ पयार बिछाय कै डीमन में नित खेलन जाती।"[1]

नायिका में कहीं लज्जा है तो नायक में सामाजिक भय, लेकिन उन्माद दोनों को अपनी-अपनी सीमाएं तोड़ देने के लिए विवश कर देता है, परिणामस्वरूप अवसर मिलते ही पुन. काम-क्रिया व्यापार में संलग्न हो जाते हैं -

"पीय साथ घबराहट चढ़ती रोय।

जार साथ जद होवै बड़ सुख होय।

कंपत गात बतात सकात हैं साँकरी खोरिन औ अँधियारी।

पातहू के खरके छरके घरके उर आइ रहै सुकुमारी।

कीच के बीच रचै रसरीत मने जुग जात चुक्यो तिहि बारी।

यों जुरि केलि करैं जग में नर धन्य वहै धनि है वह नारी।"[2]

नायक ने जैसे ही नायिका के कुचों का स्पर्श किया उसका शरीर उमंगित हो गया, शरीर से स्वेद प्रवाह प्रवाहित होने लगा, नायक ने नायिका के अधरों का पान किया, नायिका की बिखरी अलकों ने मुख चन्द्र को इस तरह ढक लिया मानो राहु ने ग्रसित कर लिया, दोनों जाँघो को भुजाओं में कस कर पकड़कर फिर रति क्रीड़ा में संलग्न हो गये -

"कुच चारू बिचार कहा लहिये। मदन दलके कलसा कहिये।

कटि छीन प्रबीन उतंग करै। उमग्यो तन स्वेद प्रवाह उरै।

कुचसंघ सकीरन के उचकै। मनहू उहिं पार न नाय सकै।

हिरनाक्षन जारे कटाक्ष करै। मुख हट्‌ट लखें मनु चाप धरै।"

"कनक कलस से चारू कुच गहे मरोरत कंत।

मनहुँ लंक को सीस गहि हिलरावत हनुमंत।

---

1. 132/10 - **विरहवारीश**

2. 132,133/11,12 - **विरहवारीश**

दोनों जाँघ भुजान पर कर में पीन उरोज।
अचरज पिय मुख इंदु लखि विहँसत कंज सरोज।
मतो मतो ठहराय के रद छद कियो कपोल।
अक बकाय पिय पर कह्यो रस अनखौहें बोल।"[1]

बोधा के इन तमाम वर्णनों को देखने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि रीतिबद्ध कवि अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए उनके कानों में काम मिसरी के घोल ही डालते रहे. ऐसे वर्णनों को सुनकर राजा तरूणियों के केशपाश सुलझाते रहे, या नीवी के बन्धन खोलते रहे। बोधा भले ही रीतिमुक्त कवि हों लेकिन उनके इस तरह के चित्रण परम्परागत है कविता ने इन्द्रिय उत्तेजना को जन्म दिया, उल्लास को व्यंजित किया इस अर्थ में तो सार्थक कही जायेंगी. लेकिन ऐसे वर्णन अश्लील होने के साथ ही साथ दरबारी संस्कृति से युक्त हैं। मैं यह मानती हूँ कि काम और सम्भोग वर्णन स्वस्थ जीवन की आवश्यकता हैं, स्त्री और पुरूष की एक समर्पण की प्रक्रिया है साहित्य में इस तरह के हल्के चित्र उचित नहीं।

मैं गहन विवेचन के पश्चात, इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि सुभान का सामीप्य पाकर बोधा के अंग--प्रत्यंग भीग गये थे, उसी अनुभूति को काव्य की विषय सामग्री बनाकर उन्होंने चित्रित किया, यह ऐसा नहा सुख है जो अरसिकों के लिए अप्राप्य है, सम्भोग की मादक मधुर चित्रों का वर्णन कवि की स्वयं अनुभूति परक भावना है, इसी कारण से तो वह शारीरिक संसर्ग के लिए तत्पर रहता है।

बोधा ने 'विरहवारीश' में स्वैराचार का चित्रण किया है, नायिका और उसकी सखियाँ काम ज्वर से पीड़ित होकर पिपासा को शान्त करने के लिए मदिरा का सेवन करती हैं, प्यास बुझने के बजाय तीव्रतम हो जाती है. लज्जा को छोड़कर काम क्रीड़ा में ठीक ऐसे लग जाती है, जैसे मतवाला हाथी महावत

---

1. विरहवारीश – 197/34,35,38,39,40

के अंकुश को ना मानकर अनर्गल क्रियायें करने लगता है –

"तरुनी सबै मदमत्त सी मदिरा पिये द्विजगान।
गिनती हि नाहिं महावतै नहिं अंकुसै कुलकान।
बेरी न राखैं लाज की उठि वंदने सुख साज।
कुल को किला वो तोड़िकै भजि जायँयों करि काज।"[1]

स्त्री की लज्जा उसकी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, ईश्वरीय देन है, वो कितनी निकृष्ट क्यों न हो जाये लज्जा की भावना अन्त तक बनी रहती है। नायक ने उसका मान नहीं रखा। सम्भोग क्रीड़ा में मनमानी की, अत. वह रूठ गयी, नायक हाथ जोड़कर क्षमायाचना करता है, हृदय से लगाता है, आनंद–दायक रसभरी क्रियायें करता है, तब जाकर मानिनी का मान भंग होता है –

"उझकत झुझकत कही न मानत। बरबट मान तमासो ठानत।
घुटी जात नहिं बसन सम्हारत। टुटी प्रीति मुख ते उच्चारत।
कटि भुज गहि तिय कों द्विजखै चहि। भूषन बसन कामनीयै चहि।
गाय उठी अति रूठी बाला। ज्यों माधोनल दौदि खुसाला।
कहि न बाल बालम की मानी। चली रूसि अति ही खिसियानी।
तब द्विज माधौ बीना लीना। चल्यो रिसाय हिये रस भीना।"[2]

<u>सुरतान्त वर्णन</u> :–

बोधा ने सम्भोग शृंगार के विस्तृत दृश्य उपस्थित किये, उनकी उपलब्धि इस बात में है कि इस तरह के वर्णन में भदेसपन नहीं आने दिया, स्वाभाविकता उसका अंग बनी रही। पूरी रात नायक और नायिका सम्भोग क्रीड़ा में रत रहे, अतिशय परिश्रम के कारण नायक स्वेद बिन्दुओं से भर गये तो नायिका की बेसर गिर गयी, घुँघरू टूट कर गिर गये, अतिशय मर्दन के कारण कुच मादक पीड़ा का अहसास कराने लगे, सेज में बिछाये हुये फूल मलिन हो गये,

---

1. विरहवारीश – 68/8
2. विरहवारीश – 197/42–44

इतना सब होने के पश्चात् भी काम-पिपासा बनी रही।

बोधा के इस तरह के वर्णन स्वाभाविकता के अतिशय निकट है कृत्रिमता का किंचित मात्र अहसास नहीं, सारा सब कुछ चित्रात्मक लगता है. बोधा की यही विशेषता रीतिमुक्त धारा के कवियों में उन्हे श्रेष्ठ सिद्ध करती है। स्वाभाविकता का मूल कारण यह है कि सुभान के अतिशय निकट रहे, शारीरिक-संसर्ग का असीम सुख भी प्राप्त किया -

"झकझोरत छोड़त जोर किये। लपटी भय लाजन बाल हिये।
कर में थिर पारद जो रखिये। नवढ़ा तिय को रस त्यों चखिये।
घुँघरूख घायल सो विहरे। जनि श्रोनित स्वेदप्रवाह ढरे।
कुच सूर भले रन माह लरें। दोउ जंघ सुजानहु ते न टरे।
विथुरे मुतिया इमि सोभ धरे। त्रिदिसा जनु फूलन वृष्टि करे।
अति त्रास भयो तिय के हियमें। तब माधव जानि गयो जिय में।
रति में रति पति सो करत कारन वेपरवान।
पै मुर नहीं की कहन माधव सकत जवान।"[1]

नायक और नायिका समग्र रात सम्भोग में रत रहे, सुबह कब हो गयी जान न सके, भयभीत होकर व्यथित हुए, ऑखों में रात जागरण के कारण मद की लालिमा थी, उनके हृदय अनुराग से डूबे हुए थे, सुख से संतुष्ट होने के पश्चात् भी श्रमित होने के कारण एक दूसरे के ऊपर गिर रहे थे -

"केलि करी सिगरी रजनी पह फाटत दोनों उठे अकुलातु हैं।
कै कहुँ उनीं दै खुले जग की भय ते नहिं धीर धरातु हैं।"
"बोधा रहे चकचौंध दुबौ उठि जैबै कों दोनों हिये सकुचातु हैं।
ऐसे थके छबि के रस में लपटाय गरे सों दुबौ गिरि जातु हैं।"[2]

---

1. विरहवारीश - 62/17-20
2. विरहवारीश - 63/21

सुबह होने के कारण लीलावती की सखी उसको घर ले चलने के लिए आ गयी, माधव भी चलने के लिए उद्धत हो गया, रात में जागरण के कारण तथा अतिशय प्रेम के कारण नैत्र रक्ताभ थे, चलने में हस्तिनी जैसी चाल थी, अतिशय उमंगित होने के कारण एक दूसरे से विछड़ना नहीं चाहते थे –

"अहो प्रिया सुन प्रान मोहिं जान घर को कहौ।

भए दिवस गुजरान अइहौं इतः रजनी समय।

लीलावती की बाँह आय सखी सुमुखी गही।

अपने घर की चाह डगर चल्यो द्विज माधवा।

रोचन रंग सुरंग अनुरागो जागे नयन।

छबि छकि भए मतंग बलकत से झूमत चलत।

सरिता के तट आय झलझलान अनुराग जुत।

नौढ़ा को रस पाय मगरूरी दिल पै चढ़ी।" 1

---

1. विरहवारीश – 63/25–28

रात होने पर माधव से संसर्ग नहीं हो पाया, लेकिन रात्रि के सारे दृश्य आँखों के सामने घूमने लगे, अतिशय लज्जा के कारण उसके केश खुल गये –

"छुटे बार बाँधे न लज्जा सँभारें। चहुँ ओर ते माधवा को निहारै।
जकी सी थकी सी चकी चित्त डोलै। रजा चित्त की तो मजा कौन खोलै।
कह्यौ जात नहिं अंचभो सा भारी। न जान्यो कियो माधवा हालकारी।"[1]

माधव और काम–कंदला, काम–क्रीड़ा सम्पादित कर चुके हैं, कन्दला की चूड़ियाँ कई जगह से टूट गयी हैं, कई जगह से कमर पीड़ा करने लगी, गले में पड़ी हुई मोतियों की लड़ियाँ बिखर गयीं, उसकी सारी देह बहुत देर तक कम्पित होती रही, केशों में गुथी हुयी वेणी टूट कर बिखर गयी, नीवी के बंधन ढीले ही बने रहे, पर इतनी थकित थी कि बंधन बाँधने में भी असमर्थ थी –

"उझकि चलत झुकि सरकि उसीसे ही कों,
तरकि करकि भौहें होत अलबेली की।
सरकि सरकि सारी खरकि खरकि चूरी,
मुरकि मुरकि कटि जात यों नबेली की।
बोधा कबि छहरि छहरि मोती छहरात,
थहरि थहरि देह कंपत न केली की।
नीबी के छुबत प्यारी उलथि कलथि जात,
पौन लागे लोट जात बोली ज्यौं चमेली की।"[2]

रात्रि में बोलते हुये घुंघरू का शोर धीरे–धीरे शान्त हो गया, बिखरे हुए केश चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार उत्पन्न कर रहे थे, नायक और नायिका के मिलन के पश्चात् शारीरिक आभा से अंधकार छंट कर चारों तरफ प्रकाश बिखेर रहा था, अतिशय पसीने की बूदों से दोनों तर–बतर थे –

---

1. विरहवारीश – 64/34,35
2. विरहवारीश – 117/33

घने घोर घुँघ्रून के सोर छाये।

घटा से चटाके उमड़ मैन आये।

खुले केस चारों दिसा स्यामतासी।

दियो देह दीपै तमी में छटा सी।

परै मोतिया जो गिरै बूँद भारी।

मची स्वेद की कीच यों देह सारी।

तहाँ इंद्रपीनाक सी बाँक भौहै।

तिन्हों के परे खौर त्रैरेख सौहैं।"[1]

काम क्रीड़ा कंदला के लिए कष्टदायिनी सिद्ध हुई, पीड़ा के कारण नाराज होने का उसने नाटक किया, पूर्णतया संतुष्ट होने के कारण वह सो गयी. माधव संसर्ग के लिए प्रेरित न करे, इस कारण से नींद में भी चौंक जाती थी –

"सुसकत हिलकत हिय लगी नहिं पिय सों बतरात।

निद्राबस चौंकत चकित उझकि झझकि सतरात।।"[2]

बोधा ने सुरतान्त के वर्णन व्यापक रूप से किये हैं, हर दृश्य में स्वाभाविकता है, भाव–प्रवणता है। कन्दला का एक–एक अंग टूट गया. माथे में पसीने की बूँदे छलक आयीं, गले में पहना हुआ हार टूट कर बिखर गया, अतिशय रूदन के कारण आँखों का काजल गालों तक बहकर आ गया, शय्या पर लेटी वह तरूनी इस तरह दिखाई दे रही थी कि उसकी सारी शक्ति ही निचोड़ ली गयी हो –

"मार तें कुमार सुकुमार अंग अंग जाको,

नेकु न समान ऐसी निद्रा माँझ मोई सी।

अरून कटाक्ष तारे टरैं नाहिं टरि रही,

स्वेद कन छाई देह दरद में भोई सी।

---

1. विरहवारीश – 118/35,36

2. विरहवारीश – 118/41

बोधा कवि टूटे हार छूटे बार छहरात,

कज्जल कपोल माहिं सारी रैन रई सी।

धोई ऐसी सूरत बिसूरत सी सेज बीच,

पड़ी वह बाल देखी छाई सी निचई सी।"[1]

बोधा ने सम्भोग सन्तुष्टि को महासुख का नाम दिया है. यह ऐसा सुख है जिसकी पीड़ा में भी सुख का आभास है माधव और कामकन्दला की सम्भोग क्रीड़ा में कंदला के सारे मोती बिखर गये। मोती इस तरह दिखाई दे रहे थे कि इस मन्मथ युद्ध को देखकर देवताओं ने पुष्प वृष्टि की –

"लखि मुक्ता छवि धाम सकल सेज फैले फिरें।

मनो चाहि सग्राम पुहुप वृष्टि देवन करी।।

तरल तरंगिनि तरून की पैयत रति के ठौर।

सुनत मान संसार में अंमृत झूठी और।"[2]

यह मन्मथ युद्ध इतना प्रचण्ड रहा कि नायक और नायिका ने एक दूसरे को घायल कर दिया, जिससे दोनों में और अधिक अनुराग बढ़ा। नायिका की बिखरी हुइ अलकें, नायक के मुख को ढके हुए हैं, नायिका के गले का हार नायक की छाती से लगा हुआ है, दोनों के कपोल मिले हुए हैं, इस 'सुरतान्त सुख' को ही बोधा ने 'महासुख' के रूप में देखा है –

"पियरी तन ज्यों बिरहा सरसी। अनुराग ललाम बढ़ी नरसी।

बिथुरी अलकैं चहुंधा लहिये। जनु राहु ससंट ससी कहिये।

छहरै मुक्ता लहरै हियरे। तिय नाक सकोर कहै पिय रे।

चित्त घायल पायल घोर करै। मदन द्दल घायल से चिहरै।"[3]

बोधा ने रीतिकालिक कवियों की भाँति कई जगह सिद्धान्त पक्ष का

---

1. विरहवारीश – 119/46

2. विरहवारीश – 123/35,36

3. विरहवारीश – 197/36,37

भी विवेचन किया है, रीतिकाल की थोड़ी बहुत परिपाटी का निर्वाह अवश्य किया। सात्विक अनुभाव का स्वाभाविक चित्रण यहाँ पर उन्होंने चित्रित किया है –

"स्वेद कंप रोमांच फुर अश्रु जंभात।
प्रलय वेबरन भंगसुर तन तारत अलसात।
प्रगट होत पियपरस तें ये लक्षन तिय अंग।
निरखि कंदला देह ते माधव चाह्यो रंग।"[1]

<u>स्वप्न संयोग</u> :–

स्वप्न मनोवैज्ञानिक, इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, कि तमाम आकांक्षायें जो किसी भय के कारण पूरी नहीं हो पाती, अतृप्त ग्रन्थि बनकर अवचेतन मस्तिष्क में बैठ जाती हैं, व्यक्ति जब निद्रा ग्रस्त होता है तो यह इच्छायें स्वप्न बनकर सामने आती हैं, और स्वप्न में यह पूरी दिखती हैं, स्वप्न में इच्छा पूरी होने से व्यक्ति सुखी हो जाता है।

बोधा ने स्वप्न संयोग के सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किये हैं, उनके वर्णन पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि उनमें कृत्रिमता है, बनावट है, स्वाभाविकता हो भी क्यों न, सुभान से मिलने का स्वप्न जो उन्होंने देखा था।

काम कंदला, माधव के बिना व्यथित है, संयोग नहीं हो सका, स्वप्न में संयोग देखती हैं –

"माधो माधो सोवत कहतीं। स्वप्नहुँ बाल विकल जो रहतीं।।
तन की छाँह भई संग डोलें। है का सोना दिल की खोलैं।"[2]

बोधा ने स्वप्न में संयोग एवं वियोग के सुन्दर दृश्य उपस्थित किये –

---

1. विरहवारीश – 116/25, 26
2. विरहवारीश – 69/22

"स्वपने देखी माधवा लीलावती बिहाल।
हा प्यारी प्यारी सुमरि भूमि गिरयो तिहि काल।।
कम्पित रव सुनि मित्र को कम्पित उठि अकुलाय।
हाय हाय कहि कंदला द्विज कों लयो उठाय।"[1]

स्वप्न संयोग और वियोग के एक-एक उदाहरण इस बात के प्रबल प्रमाण हैं, कि बोधा को इस क्षेत्र में महारत हासिल थी –

"कै कछु कामसेन फिरि कीन्हा। कै काहू दूती मत दीन्हा।।
कै कछु कालकला अवरेखी। कै काऊ सपने प्रिय दखी।।
जो कदापि सपने प्रिय देखी। तो कर तासु तलास बिसेखी।।
सत्य होय तो आनि मिलाऊँ। जद्यपि भवन भानु के पाऊँ।।"[2]

संयोग शृंगार वर्णन में साम्य

घनानद और बोधा दोनों ही रीतिमुक्त धारा के प्रख्यात कवि है, दोनों ने ही परम्परागत सयोग शृंगार को काव्य का आधार बनाया है, इसी कारण कविता नवीन भाव-भूमि पर स्थापित हुई, उसमें ना तो संकीर्णता है, और ना अतिशय अश्लीलता। यह ऐसा संयोग है, आत्मानुभूति हे जिसका पर्यावसान प्रेम में ही हो जाता है, घनानंद प्रेम का आलम्बन 'सुजान' है, सुजान के तरलायित, सोन्दर्य पर मुग्ध हैं, सौन्दर्य का सांगोपांग विवेचन काव्य में हुआ है।

बोधा के प्रेम का आलम्बन 'सुभान' है, सुभान को कवि ने हृदय की गहराईयों से चाहा, अंग-प्रत्यंग का वर्णन प्रस्तुत किया है, नेत्र, भौंह, कटाक्ष, तीखे नक्श का विशद विवेचन जगह-जगह पर है। 'सुभान' के विरह से व्यथित

---

1. विरहवारीश – 216/1–2
2. विरहवारीश – 217/8–11

बोधा ने 'विरहवारीश' की रचना की, माधव लीलावती, काम कंदला की पूरी कथा सुभान को सुनायी और समर्पित की। इतना प्रेम करने वाले प्रेमी का प्रेम वासनात्मक नही हो सकता।

घनानंद के कवित्तों में सयोग शृंगार की सूक्ष्मता है, तो कहीं-कही उद्दीपन रूप के चित्रण हैं, उन्होंने सयोग शृंगार के अन्तगत कायिक, वाचिक, आहार्य एव अलंकरण आदि अनुभावों का, चुम्बन आलिंगन चित्रण प्रस्तुत किया है, उनकी कविता अनेक भावों को जन्म देती है। उन्होंने ऐसे कवित्तों की रचना की जिससे स्पष्ट परिलक्षित होता है, कि सुजान से उनका शारीरिक संसर्ग हुआ था।

बोधा 'सुभान' से जुड़े उन्होंने भी अनुभावों का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया था, यह बात अलग है कि उनके वर्णन घनानंद से बहुत अधिक हैं।

घनानंद ने पूर्व सम्भोग की स्थिति का बिना किसी दुराव-छिपाव के वर्णन प्रस्तुत किया है, सम्भोग सुख की प्राप्ति के लिए वे गुलाम बनने के लिए तैयार हैं; मिलन का उत्साह है तो आनंद क्रीड़ा की आतुरता। यद्यपि इस तरह के छन्द अल्प हैं, फिर भी उनमें सजीवता है।

बोधा ने 'इश्कनामा' और 'विरहवारीश' मे पूर्व सम्भोग के स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किये है। इन रचनाओं में कहीं-कहीं रीतिकाल का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी देता है, क्योकि वर्णन मे अश्लीलता परिलक्षित होने लगी थी।

घनानंद ने सम्भोग शृंगार का स्वाभाविक रूप से चित्रण प्रस्तुत किया, रति की तरंगों में प्रियतमा के साथ प्रवाहित होते हुए सुजान के बिखरे हुए बाल कवि के आभा मण्डल को ढके हुए हैं, रात्रि जागरण से रक्ताभ नेत्र, ये तमाम ऐसे दृश्य हैं जो उत्तेजना नहीं उल्लास को चित्रित करते हैं।

बोधा ने 'सुभान' के साथ शारीरिक संसर्ग के चित्र तथा 'विरहवारीश' में माधव-लीलावती, माधव-कामकंदला के सामीप्य सुख के विभिन्न चित्र उकेरे हैं। रति से मदमस्त नायक और नायिका पर्यंक पर हैं, नायक के हाथ नायिका के कुचों में हैं, नायिका सम्भोग से बचना चाहती हैं, लेकिन

नायक की हठ के सामने वह पराजित होती है परिणामस्वरूप सम्भोग के कष्ट को उसे सहन करना पड़ता है, मधुर पीड़ा से वह रूठ जाती है. नायक द्वारा मनाये जाने पर पुन. तत्पर हो जाती है, सम्भोग के ऐसे स्वाभाविक दृश्य है. जिनको बोधा ने चित्रित किया है। यहाँ पर मैं एक बात स्पष्ट करना चाहूँगी कि इस तरह के वर्णन भले ही स्वाभाविक हों. पर वह कहीं-कहीं अतिशय अश्लील हो गये हैं।

घनानंद के सुरतान्त वर्णन यद्यपि अल्प मात्रा में हैं, लेकिन शुद्ध एकाकार की कहानी कहते हुए बहुत कुछ कह जाते है। सम्भोग के पश्चात् पसीना आना, अंगो का शिथिल हो जाना, आँखों में खुमारी जैसा बना रहना तमाम ऐसे दृश्य हैं, जिनमें भदेसपन नहीं है समपर्ण का भाव. निष्ठा और पुनीत भावना का भाव है।

बोधा ने सुरतान्त वर्णन किया है कुछ वर्णनो में स्वाभाविकता है तो कहीं-कहीं भदेसपन, उनके वर्णन अतिशय मांसलवादिता के प्रतीक हैं – नथनी टूट कर गिर जाना, चूड़ियाँ टूट कर बिखर जाना, हार की लड़ियाँ टूट-टूट कर बिखर गयीं, केशों में लगाये पुष्पों के गुच्छे मुरझा गये, चादर मलिन हो गयी, तमाम इन चित्रों में स्वाभाविकता तो है, लेकिन कुछ ऐसे चित्र हैं जो रीतिकालिक कवियों से बढ़-चढ़ कर भी हैं।

सामाजिक भय, लोक मर्यादा, बंधन विशेष के कारण तमाम इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती, परिणाम स्वरूप अवचेतन मस्तिष्क में ग्रन्थि बनकर इकट्ठा हो जाती हैं। सोने पर व्यक्ति स्वप्न देखता है, और वह स्वप्न में उन इच्छाओं को पूरी होता हुआ देख लेता है, उसे संतुष्टि का सुख मिल जाता है, स्वप्न संयोग के तमाम चित्र घनानंद ने चित्रित किये। दिन में तो सुजान से मिलन हो गया, रात्रि में स्वप्न में ही एकाकार हुए।

घनानंद की भाँति बोधा ने भी 'सुभान' के साथ रात्रि में मिलने के सुखद स्वप्न देखे, माधव ने लीलावती और काम कंदला से स्वप्न में भी कई

बार मिलाप किया।

दोनों ही कवियों ने स्वप्न संयोग के एक जेस चित्र चित्रित किये हैं।

घनानंद और बोधा के काव्य में श्रृंगार रस का साम्य देखा जायें तो मैं यह पाती हूँ कि घनानंद और बोधा ने बिल्कुल एक जैसे वर्णन वर्णित किये हैं। रीतिमुक्त की धारा जो घनानंद से प्रवाहित हुई, बोधा उसका एक अंग बन गये और इन दोनों ने हिन्दी साहित्य को ऐसी अमूल्य धरोहरें दीं, जो रसिक पात्रों के लिए आनन्द की वस्तु हैं। गहन आलोचन, विवेचन करने के उपरान्त मैं यह निर्विवाद रूप से कह सकती हूँ कि घनानंद के वर्णन भले ही अल्प हों, स्वाभाविकता उनमें अधिक है।

संयोग श्रृंगार वर्णन में वैषम्य

घनानंद और बोधा भले ही दोनों स्वछन्द धारा के कवि हों, लेकिन कवित्त भाव वैषम्य होना स्वाभाविक है, क्योंकि जिस तरह से एक नदी में विभिन्न धाराओं वाली नदियाँ आकर मिलती हैं, उनकी गहरायी अलग-अलग होती है, बिल्कुल ऐसे ही घनानंद और बोधा की रचनायें हैं।

घनानंद दरबारी कवि थे, सुजान राज-नर्तकी से प्रेम हुआ, शारीरिक संसर्ग की उत्सुकता बढ़ी, संसर्ग हुआ तो वियोग भी सहन करना पड़ा, सारा लौकिक प्रेम पारलौकिक बन गया। घनानंद और बोधा के श्रृंगार वर्णन का पहला वैषम्य यह है कि सुजान के सुन्दर अंगो का वर्णन घनानंद ने जिस स्वाभाविकता से कियाा, वह पूर्णतया दृश्य जैसा चित्रित दिखाई देता है, बिखरी हुई केश राशि हो, या गुथी हुई बेणी, भौंहें, नासिका, ओष्ठ, दन्त, ग्रीवा, कुच, नाभि, वलय एवं अंग दीप्ति, तरलता के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गये, इन वर्णनों को पढ़कर सुजान का सुन्दर रूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है।

बोधा ने 'सुभान', लीलावती, काम कंदला के सौन्दर्य को चित्रित करने का प्रयास तो किया, कहीं-कहीं दृश्य खड़ा करने में सफल तो रहे, लेकिन भाव-भूमि की इस धारा में घनानंद से बहुत पीछे रह गये, भाव को गहराई नहीं दे सके भाव उथले रह गये।

घनानंद ने पूर्व सम्भोग की स्थितियों का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया, जिस तरह से एक सामान्य पुरुष क्रिया-कलाप करते हैं। घनानंद 'सुजान' के सामने याचक बनकर खड़े रहे, झोली फैलायी, हाथ जोड़े, पैर तक छूने के तैयार हैं। उनके रोने गिड़गिड़ाने याचना करने पर ही, सुजान शारीरिक संसर्ग के लिए तैयार हुई।

बोधा को सुभान' से ज्यादा आरजू मिन्नत नहीं करनी पड़ी, इस तरह के पूर्व सम्भोग वर्णन उनमें कम हैं।

'विरहवारीश' में लीलावती और काम कंदला की सखियाँ कई बार माधव के पास उनको छोड़ गयी, इनमें दूती-कर्म का आश्रय अधिक लिया गया है। बोधा ने इस तरह के वर्णनों को बहुत लम्बा खींचा है, परिणामस्वरूप उनमें रसभास का अभाव प्रतीत होने लगता है, पाठक उकता जाता है, जो निष्ठा, जो समर्पण घनानंद में है, उसे, बोधा पाना तो बहुत दूर छू भी नहीं सके हैं।

सम्भोग के चित्रण घनानंद के साहित्य में भले ही कम हों, लेकिन उनमें कृत्रिमता नहीं, स्वाभाविकता है, सुजान का शारीरिक संसर्ग उनको मिला, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वे आनन्द सागर में डूब गये, डूबे क्यों न जिसका सामीप्य चाहते थे वह पूरा का पूरा समपर्ण भाव से मिल गया, इससे बड़ा किसी का सौभाग्य क्या हो सकता है? सुजान और घनानंद रति क्रीड़ा हेतु पर्यंक पर हैं, दोनों के हृदय में आनन्द की तरंगे उठ रही हैं, फिर दोनों महासुख में तल्लीन हो जाते हैं। घनानंद राज्य से निष्कासित होने पर

ब्रजभूमि की शरण लेते हैं, उनका यह लौकिक महासुख पारलौकिक चरम सुख में परिवर्तित हो जाता है, लौटकर कवि लौकिक भाव–भूमि में आता ही नहीं। बोधा का सुभान से शारीरिक संसर्ग हुआ, 'विरहवारीश' में दृश्य कथा के माध्यम से इन चित्रों को प्रस्तुत किया गया, सम्भोग के तमाम चित्र, चित्रित तो हुए या तो विविध गहरे भदेसपन गहरे रंगो के साथ या फिर फीके हल्के रंगो के साथ। सम्भोग वर्णन में बोधा, घनानंद से बहुत आगे निकल जाना चाहते थे, लेकिन अतिशय मांसलता होने के कारण, घनानंद की सीमा रेखा तक नहीं पहुँच सके।

सुरतान्त वर्णन में घनानंद और 'सुजान' का पसीने से लथपथ हो जाना, अधिक श्रम के कारण श्रमित होना, साँस उखड़ जाना, तमाम ऐसे दृश्य हैं जो भाव की तीव्रता को समझाने में पूर्णतम सफल हैं, पाठक उन क्रिया व्यापार से तादात्म्य स्थापित कर लेता है, जिन्हें घनानंद ने स्वयं अनुभूत किया, कवि का कवितात्व इस कारण वरेण्य है, वह पाठकों को साधारणीकृत करने में पूर्ण सफल रहे हैं।

'बोधा' शृंगार वर्णन में प्रारम्भिक अवस्था से ही स्थूलवादी, मांसलवादी रहे हैं, चाहें सुभान का सौन्दर्य हो या लीलावती का सौन्दर्य या कंदला का सौन्दर्य, पूर्व सम्भोग से लेकर सुरतान्त वर्णन तक मांसल ही छाया रहा तो कृत्रिमता आ जाना सहज ही है। बोधा सुरतान्त वर्णन में भदेसता तो दे गये, उत्तेजना तो दे गये, लेकिन समर्पण, निष्ठा देने में बिल्कुल अक्षम रहे, ऐसा प्रतीत होता है कि उनका सारा का सारा सृजन शृंगार के घेरे में आबद्ध है, उस गहराई तक नहीं पहुँचा सके, जहाँ घनानंद स्थापित हैं, पाठक कई स्थलों पर साधारणीकृत नहीं हो पाता, अपने पात्र को जोगिया वेशधारण कराया लेकिन वहाँ भी घनानंद से पिछड़ गये। घनानंद को लोग श्रृंगारिक कहते हैं लेकिन वह तो बाद में पारलौकिकता से जुड़ गये ऐसा कुछ बोधा के साथ नहीं था। इसी कारण साहित्य में वैषम्य होना स्वाभाविक है।

जहाँ तक स्वप्न संयोग का प्रश्न है घनानंद और बोधा दोनों ने ही स्वप्न संयोग का वर्णन वर्णित किया है। घनानंद का यह वर्णन पाठक का देखा हुआ सुखद स्वप्न है, तो बोधा ने मात्र तीन जगह स्वप्न संयोग के चित्र उकेरे. इनमें एक वर्णन तो स्वाभाविक लगता है, दो में नितान्त कृत्रिमता।

श्रृंगार की दृष्टि से घनानंद और बोधा का तुलनात्मक विवेचन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि घनानंद की कविता, भाव प्रवणता से युक्त है, पाठकों को पूर्णतया साधारणीकृत कर देती है।

बोधा रीतिमुक्त धारा के श्रेष्ठ कवि तो हैं, लेकिन 'इश्कनामा' और 'विरहवारीश' में भावों की तीव्र अनुभूति, भावों की गहनता नहीं है, इस कारण से वह घनानंद के सन्निकट नहीं हैं। घनानंद और बोधा में श्रृंगार वैषम्य इस अर्थ में भी है कि घनानंद जिस स्वछन्द धारा में बहे, बहते ही चले गये. ऊहात्मक वर्णन को छोड़कर रीतिकाल की प्रवृत्ति को पास ही नहीं फटकने दिया. इसी कारण से उन्होंने कहीं भी आचार्यत्व कर्म नहीं किया, पांडित्य प्रर्दशन नहीं किया, लेकिन बोधा स्वछन्द धारा में बहे, लेकिन कहीं–कहीं उनमें एक धारा रीतिकालिक कवियों जैसी बहने लगती है, कई स्थलों पर उन्होंने आचार्यत्व का प्रर्दशन किया है, पांडित्य का वर्णन किया है. उदाहरण के तौर पर श्रृंगार में वियोग दशाओं की परिभाषायें दी, सात्विक अनुभाव की परिभाषा दी, वहीं उनका काव्य पांडित्यपूर्ण बन गया, पाठकों को शुष्क लगने लगा, पाठक ऐसा समझते हैं कि वह कोई लक्षण ग्रन्थ पढ़ने लगे, यही वैषम्य घनानंद और बोधा के श्रृंगार में है।

पंचम – अध्याय

विवेच्य कवियों का वियोग शृंगार वर्णन

घनानंद के काव्य में विरह वर्णन

घनानंद के काव्य में जहाँ एक ओर सुजान से संयोग का वर्णन आशा, हर्ष, उल्लास से, मुखरित हुआ है, वहीं दूसरी ओर सुजान–विरह के कारण कवि व्यथित एवं निराश हताश, कुंठित, दु:खी भी है। संयोग वर्णन में वह भाव कवि नहीं ला पाया जो विरह में प्रस्फुटित हुआ है। इसका कारण यह कि कवि को जीवन में संयोग के सुवसर कम, वियोग में दिन अधिक व्यतीत करने पड़े। इसी कारण वियोग वर्णन में सजीवता, भाव अभिव्यक्त करने की क्षमता अत्यधिक है। वास्तव में विरह, प्रेम की वह सच्ची कसौटी है, जहाँ प्रेम तप कर स्वर्णिम हो जाता है। संयोग में वासना है तो विरह में स्वानुभूति तथा मार्मिक अभिव्यक्ति।

"घनानंद में विरह वर्णन की जो तल्लीनता है, अनुभूति की गहनता तथा अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता है, वह अपेक्षाकृत उनके संयोग वर्णन में नहीं है, इसका कारण स्वयं का जीवन है, जिसका सरल अध्ययन ही उनका विप्रलम्भ काव्य है।"[1]

शास्त्रीय दृष्टि से विप्रलम्भ शृंगार के चार अंग हैं – पूर्व राग, मान, प्रवास, करुण।

<u>पूर्वराग</u> :– इसके अन्तर्गत संयोग से पूर्व गुण श्रवण, चित्र दर्शन आदि के पश्चात् जिस विरह जन्य पीड़ा की अनुभूति होती है, उसी का वर्णन वर्णित रहता है। प्रस्तुत उदाहरण में कवि सारा दोष अपने नेत्रों को देता है कि इन नेत्रों ने ही मुझे सुजान के रूप पर प्रलुब्ध किया है जिसका परिणाम यह मिला कि प्रेम सुख के पूर्व ही विरह के भयंकर दु:ख का सामना करना पड़ा –

"जान के रूप लुभाय कै नैननि, बेंचि करी अध बीच ही लौंड़ी।
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकें भई इन काज कनौंडी।

---

1. घनानंद – डॉ0 गणेश सारस्वत पृ0 सं0 – 49
2. सुजान हित – 171

क्यों करि थाह लहौं घन आनंद चाह–नदी तट ही अति औंड़ी।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु हे जग बाजति नेह की डौंडी।"[1]

मान :– प्रेम के अनन्तर प्रेमी और प्रेमिका का सहज स्वाभाविक रूप से आपस में रूठ जाना ही 'मान' है। इस सन्दर्भ में डॉ0 शशि सहगल का मत है, "घनआनंद ने विप्रलम्भ श्रृंगार के चार अंगो में से प्रथम दो का यानि पूर्वराग और मान का प्रवास और करूण की मात्रा में अपेक्षा कृत कम वर्णन किया है। सुजान दरबार में ही राज–नर्तकी थी और घनानंद, महम्मद शाह रंगीले के खास कलम। इसलिए पूर्वराग के लिए प्रेमी को अधिक समय नहीं गँवाना पड़ा। मान के विषय में भी कहा जा सकता है कि संयोग का अत्यन्त अल्प समय, और यथा–अवसर उनके जीवन में आया था। अपनी प्रिया को किसी भी तरह से वे रूष्ट नहीं करना चाहते थे।"[2]

हुआ यों कि कवि के मुँह से किसी अन्य स्त्री–रूप सौन्दर्य, प्रशंसा हो गयी कि बस मानिनी का मान प्रारम्भ हो गया –

"अनमानि बोई मन मानि रहयौ अरू मौन ही सों कछु बोलति है।
ननिहारनि ओर निहार रही उर–गाँठि–त्यों अन्तर खोलति है।
रिस–संग महा रस रंग बढ़यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है।
घनआनंद जान पिया के हिये कितकौ फिरि कलोलति है।"[3]

प्रवास :– प्रेमिका–प्रिय से बिछुड़ गयी, परिणाम स्वरूप प्रेमी की स्थिति बड़ी विषम और दयनीय हो गयी, अब उसके नेत्र सुजान की बाट जोहते हैं –

"भोर तें सांझ लौं कानन ओर, निहारति बावरी नैकु न हारति।
साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो, तारनि सों इकतार न टारति।

---

1. सुजान हित – 171
2. घनानंद का रचना संसार पृ0 सं0 136
3. सुजान हित – 247

जो कहूँ भावतो दीठि परै, घनआनंद आंसुनि औसर गारति।

मोहन–सोंहन–जोहन की लगियै रहै, आँखिन के उर आरति।"[1]

संयोग के मधुरतम क्षणों में हर भी पहाड़ सम बाधक लगते थे और अब यह स्थिति है कि प्रेमी और प्रिया के बीच पहाड़ों की दूरी पड़ गयी है –

"तब तौ छबि पीवत जीवत है, अब सोचन लोचन जात जरे।

हिय–पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यों दुख दोष भरे।

घनआंनद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख–साज–समाज टरे।

तब हार पहार से लागत हे, अब आनि कै बीच पहार परे।"[2]

<u>करूण</u> :– नायक अथवा नायिका के मृत्यु के पश्चात् भी जहाँ संयोग की आशा बनी रहती है, वहाँ करूण–वियोग होता है। प्रिय का सन्देश पाने की आशा में प्रेमी अपने शरीर को किसी तरह जीवित रखे हुए है, किन्तु प्रियतम का सन्देश न मिलने से उसका हृदय टूट गया, जीने की लालसा भी समाप्त हो गयी, लेकिन प्रेमी के प्राण, प्रियतम का सन्देश प्राप्त करके ही प्रस्थान करना चाहते हैं –

"कहि कहि आवन संदेसो मनभावन को,

गहि गहि राखति ही दै दै सनमान कौ।

झूठी बतियानि की पत्यानि ते उदास है कै,

अब न घिरत घनआनंद निदान कौ।

अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,

चाहत चलन ये संदेसो ले सुजान कौ।।"[3]

घनानंद ने करूण का श्रेष्ठ वर्णन प्रस्तुत किया है।

<u>वियोग की अन्तर्दशाएं</u> :– आचार्यो ने वियोग की दस दशाएं मानी हैं। जब कवि हृदय विरह–विदग्ध है तो विरही भावनाएं सायास ही काव्य में आ जायेंगी।

---

1. प्रेम पत्रिका – 85
2. सुजान हित – 36
3. सुजान हित – 54

घनानंद के काव्य में वियोग की अन्तर्दशाओं का जो वर्णन प्राप्त होता है, उन्हें पढ़कर भावुक पाठक भी विरह–सागर में गोते लगाने लगता है, वैसे कवि ने इन दशाओं का वर्णन सोंच–समझ कर नहीं किया, विरह से विह्वल हृदय से भाव अनायास ही फूट पड़े हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० मनोहर लाल गौड़ ने लिखा है – संयोग और वियोग दोनों के अन्तर्गत भावों की छोटी–छोटी अन्तर्दशाओं का बड़ा सजीव चित्र कवि ने खींचा है – व्यथा में आशा, निराशा, उन्माद, चेतना उत्साह आदि अनेक छोटे–छोटे ऐसे सतरंगी भाव उठते हैं, जिनसे उस इन्द्रधनुषी व्यापकता का पूरा चित्र बन जाता है।"[1]

वियोग–वर्णन में विरह की जिन दस दशाओं का चित्रण शास्त्रों में किया गया है, वे इस प्रकार हें – अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद व्याधि जड़ता एवं मरण। इस सन्दर्भ में शशि सहगल का मत है कि, " घनानंद ने इन अन्तर्दशाओं का चित्रण करने के लिए सायास पद्य–रचना नहीं की, परन्तु उनका विरह इतना तीव्र था कि यह सभी अन्तर्दशाएं स्वयं ही उनमें आ गई हैं। इसी से उनमें अनेक रूपता के दर्शन होते हैं और मानस–मंथन का गहनतम परिचय भी मिलता है। इन अन्तर्दशाओं के वर्णन में अहम् नहीं सन्तोष है तथा वह मनोविज्ञान की बारीकियों से युक्त हैं।"[2]

1. <u>अभिलाषा</u> :– घनानंद के अनेक छन्दों में उनकी यह अभिलाषा मुखरित हुई है कि किसी तरह प्रेयसी के दर्शन हो जायें। सुजान के दर्शन बिना उनका जीवन ही शून्य है –

"दरसन–लालसा–ललक–छलकनि पूरि,
पलकनि लागै लगि आवनि अरबरी।
सुन्दर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकें,
लोचन–चकोर सेवैं आरति–परब री।

---

1. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा
2. घनानंद का रचना संसार – पृ० सं० 139

अंग–अंग अन्तर–उमंग–रंग भरि भारी,

बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरबरी।

बूड़ि बूड़ि तरैं औधि–थाह घनआनंद यौं,

जीव सूक्यौ जाय ज्यौ ज्यों भीजत सरबरी।"[1]

सुजान का लौकिक विरह जब कृष्ण प्रेम में परिवर्तित हो गया तो घनानंद ने श्रीकृष्ण के माधुर्य दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की है –

"दीजियै दिखाई ब्रजमोहन छबीले कहूँ,

परी घर घेरि तुम निधरक ऐसे हौं।

छाये घनआनंद रसीले रहौ, दिन रैन,

दरसौ न दैया देखे उघरि अनैसे हौ।"[2]

2. **चिन्ता** :– प्रेमी, प्रेयसी को सर्व समर्पण किये है, लेकिन उसे कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है, प्रेमी को मात्र चिन्ता ही प्राप्त होती है –

"फल होत दियें सम कै अधिकै बरनैं कबि कोबिद यों सब ही।

बिपरीति लखी यह रीति अहो, परतीति–गही मति मांह बही।

उत कौं घनआनंद गौं है यही, इत की जु सुजान परी सु सही।

दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपें हम चिंत लही।"[3]

3. **स्मृति** :– वियोग में नायिका के साथ बितायी गयी संयोगावस्था की मादक अनुभूति की स्मृति ही 'स्मृति' है, कवि सुजान के साथ बिताए क्षणों को भुला नहीं पाता। सुजान के प्रतिकूल आचरण की स्मृति में भी उसे कुछ शान्ति मिल जाती है। प्रेमिका अनेक प्रकार से आदर किए जाने पर भी झट उनका तिरस्कार कर देती थी। यह बात अब उनके हृदय को शीतलता प्रदान करती है, किन्तु अन्ततः यह स्मृति भी दुःख को बढ़ा देती है। हृदय को अतीत की स्मृतियों में जितना ही बहलाया जाता है, स्मृति भी सजग होकर

---

1. **सुजान हित – 58**
2. **प्रकीर्णक – 34**
3. **सुजान हित – 131**

प्रेमी हृदय को जलाती है।"[1]

"तेरीअनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारें हेरि सोंहें न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तें मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआंनद सुजान प्यारी,
जीव जीति–लाहौ लहै तेरे हठि हारिबो।
रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तें टरै न ये अनखि कर टारिबो।"[2]

4. <u>गुण कथन</u> :– प्रेयसी के रूप, गुण हाव, भाव स्वभावमें जो बातें विद्यमान थीं, विरहावस्था प्रेमी उन्हीं गुणों की चर्चा करता है, साथ ही प्रेयसी से प्रार्थना करता है कि वह उसकी विरह जन्य पीड़ा को शान्त कर दे –

"मिहँदी लगि पायनि रंग लहै सुठि सोंधो सु अंगनि संग बसै।
तरुनाइयै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै।
घनआनंद रूप–अनूप–भरी हित–फंदनि मैं गुन–ग्राम गसै।
सब भाँति सुजान समान न आन कहा कहौं आपु ते आपु लसै।"[3]

5. <u>उद्वेग</u> :– चित्त वृत्ति की अस्थिरता उद्वेग है, मन भ्रमित हो जाता है, और विविध शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति करता है, साथ ही सर्वत्र उस विरही प्रेमी को अपनी प्रेयसी की सत्ता दिखायी देती है –

"घर बन बीथिन मैं जित तित तुम्हैं दिखौं,
इते हू पै जान। भई नई बिरहामई।
बिषम उदेग–आगि लपटैं अंतर लाग,
कैसें कहौं जैसे कछू तचनि महा तई।
फूटि–फूटि टूक टूक है कै उड़ि जाय हियो,
बचिबो अचंभो मीचौ निदर करै गई।
आनन्द के घन नखें अनलखें दुहूँ ओर,
दई मारी हारी हम आप हौ निरदई।"[4]

6. <u>प्रलाप</u> :- विरह का आधिक्य होने के कारण विरही अपनी सुध-बुध खो बैठता है, वह निरन्तर अनर्गल प्रलाप करता रहता है। अनर्गल प्रलाप का सम्बन्ध उसके अवचेतन मस्तिष्क से होता है, कुछ बातें तो लोगों की समझ में आती हैं, कुछ नहीं, सुजान के विरह में कवि की ऐसी ही स्थिति है -

"मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय-गाय।
देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकै आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय।
बिरह-बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन-तवरेन ताय ताय।
ऐसे घनआनंद विहाय न बसाय दाय,
धीरज विलाय बिललाय फरौं हाय-हाय।"[5]

7. <u>उन्माद</u> :- उन्माद की अवस्था में बिरही कभी रोता है, कभी हँसता है। उसकी प्रमत्ता देख कर लोग उसे प्रेत ग्रस्त समझ लेते हैं -

"खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उन्माद जग्यौ है।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहैं तैं न दाह दग्यौ है।
जानि परै नहिं जान। तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।
सोचनि ही पचियै घनआनंद हेत पग्यो किधौं प्रेत लग्यौ है।"[6]

<u>8. व्याधि</u> :- इसके अन्तर्गत प्रेमी के हृदय की पीड़ा का प्रकाशन रहता है, इस पीड़ा के कारण उसका शरीर जर्जर हो जाता है, मुख की कान्ति जाती रहती है, शरीर पीला पड़ जाता है। नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रसित होने के कारण वह असहाय हो जाता है-

---

1. घनानंद की काव्य साधना - पृ0 सं0 -96
2. सुजान हित - 149
3. सुजान हित -88
4. सुजान हित - 280

"लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसों,
जगी है बिकलताई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड़यो सो डोलै हियरा धक्यौई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।
ऊनौ भयौ जीबो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखौ, मोहिं मारत परेखो महा,
जान घनआनंद पै खोयबो लहा लहौं।"[1]

9. <u>जड़ता</u> :– विरह आधिक्य के कारण प्रेमी अपनी सुध बुध तो खो ही बैठता है साथ चेतन–अचेतन मन एक साथ कार्य करने लगते है, वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता हे, इसी का नाम जड़ता है। हृदय, हर समय प्रेयसी के दर्शन करना चाहता है,

वियोग के कारण उसकी स्मृति पंगु हो गयी है, अब साँस लेना भी अच्छा नहीं लग रहा है–

"मुख–चाहनि को चित चाहत है, चख चाहनि ठैरहि पावत ना।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा–मधि, साँस सुहावति ना।
घनआनंद जान तुम्हें बिन यौं गति पंगु भई मति धावति ना।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएं बिना सुधि आवति ना।"[2]

10. <u>मरण</u> :– विरह वेदना के असह्य हो जाने के कारण प्रेमी अपनी मृत्यु की कामना करने लगता है। प्राण देने को वह तत्पर तो है, ऐसी दशा में भी वह प्रेयसी की चिन्ता करता है। उसके मर जाने से प्रेयसी को अपकीर्ति तो मिलेगी ही, प्राण त्यागने वाले प्रेमी की कहानी सारा संसार कहेगा –

---

1. सुजान हित – 242
2. सुजान हित – 357

" राति द्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,

कहा कहौं गति या बियोग वजमारे की।

लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारौ जीव,

कहू न बसाति यौं उपाव–वल–हारे की।

जान प्यारै लागौ न गुहार तौ जुहार करि,

जूझिहै निकसि टेक गहें पनधारे की।

हेत–खेत–धूरि चूर–चूर ह्वै मिलैगो, तब

चलैगी कहानी घनआनंद तिहारे की।"[1]

विरह वर्णन की विशेषताँए

1. <u>आत्मदशा की अभिव्यक्ति</u> :– घनानंद ने अपनी विरह–वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति अन्तस् से प्रगट की, विरह वेदना महान थी। इस सन्दर्भ में शशि सहगल का कथन है, "घनानंद के विरह विर्णन में आत्मदशा का निवेदन करते हुए घनानंद ने तरह–तरह से अपने मर्म की पीड़ा का उद्‌घाटन किया है। असाधारण भावनुभूति के साथ उन्हें असाधारण अभिव्यंजना शक्ति भी प्राप्त थी ऐसी शक्ति जो रीतिकाल के रीतिबद्ध कवि को न मिली थी। घनानंद ने अपनी आत्मा की दशा को असंख्य छन्दों में अभिव्यक्त किय है।"[2]

"कंत रमै उर–अन्तर मैं सुलहै नहीं क्यों सुख–रासि निरंतर।

दंत रहैं गहें आँगुरी ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर।

जो दुख देखति हौं घनआनंद रैन–दिना बिन जान सुतंतर।

जानै वेई दिन–राति, बखानें तें जाय परै दिन–राति को अंतर।"[3]

---

1. सुजान हित – 221
2. घनानंद का रचना संसार – पृ0 सं0 – 152–53
3. सुजान हित – 207

2. **आँखो की बेचैनी** :– सुजान को देखे बिना प्रेमी की आँखों को चैन नहीं है, वे निरन्तर व्यथित रहती हैं, सुजान को न देखने से उसे मर्मान्तिक पीड़ा मिलती है, आँखे बन्द या खुली रखने की स्थिति में मात्र वेदना मिलती है –

"रूप निधान सुजान लखें बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है।
ऊखिल ज्यों खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूदें महा अकुलानिमई है।
बूड़त ज्यौ घनआनंद सोचि, दई विधि व्याधि असाधि नई है।"[1]

3. **प्रेम वैषम्य** :– घनानंद का विरह एक पक्षीय है, दूसरा पक्ष मौन है। उसका प्रेम सम नहीं विषम है, वह बेचारा अकेले ही रोता, कलपता, चीखता चिल्लाता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 मनोहर लाल गौड़ ने प्रेम वैषम्य की मार्मिकता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं – "रीतिमुक्त प्रेम की और विशेषता उसकी विषमता है। उसका निर्वाह कर सकना सबके लिए सुगम नहीं है, प्रेमी, प्रिय में आसक्त उसके वियोग में व्यथा–पीड़ित, आतुर, चिंतित और सकाम है। वह अपने प्रेम का निर्वाह करने में प्राणपण से प्रस्तुत है, पर प्रिय इसके विपरीत उपेक्षक, अन्योमुख सुख–चैन का ग्राहक, भुलक्कड़ और लापरवाह है। उसके सम्बन्ध में प्रेम के निर्वाह का प्रश्न ही नहीं उठता। यह विषमता वैसे तो चारों कवियों के काव्य में विद्यमान है, पर घनानंद में वह अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी है। प्रेम की विषम भावना के कारण ही घनानंद की शैली में विरोध की प्रधानता हो गयी है – उन्हें प्रेम की अनुभूति में पग–पग विषमता और विरोध के दर्शन होते हैं।"[2]

"मोंहि दुख–दोष दोखै तोहि तोखै पोखै सुख,
चिन्ता मोंहि चूरि तोहि राखै निधरक है।

---

1. सुजान हित – 3
2. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा

र्वाय कै जगावै मोहिं विहँसावै स्वावै तोहि,

तेरे भूल भरै मोहिं सालै ज्यौं करक है।

तोहि चैन–चाँदनी मैं सरसै हरण–सुधा,

मोहिं जारै बारै ह्वै विषाद को अरक है।

कहूँ घनआनंद घमँडि उघरत कहूँ,

नेह की विषमता सुजान अतरक है।"[1]

4. <u>स्मृति–जनित वेदना</u> :– विरह की स्थिति में प्रिय की याद आना स्वाभाविक है, प्रेमी की स्मृति ही उद्वेगों को जन्म देती है। घनानंद का काव्य सुजान स्मृति में पगा है। घनानंद का कथन है कि पहिले स्मृति से चैन, सुख मिल जाता था, किन्तु अब स्मृति कष्टदायक है। प्रस्तुत छन्द में घनानंद ने स्मृति जनित वेदना का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है –

"तेरी अनमानिनि ही मेरे मन मानि रही,

लोचन निहारें हेरि सौंहे न निहारिबो।

कोरि–कोरि आदर को करत निरादर है,

सुधा तें मधुर महा झुकि झिझकारिबो।

जीवन की ज्यारी घनआनंद सुजान प्यारी,

जीव जीति लाहौ लहै तेरे हठि हारिबो।

रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,

हिये तें टरै न ये अनखि कर टारिबो।"[2]

5. <u>ऋतु और प्रकृति के कारण विरह</u> :– ऋतु और प्रकृति दोनों ही विरहाग्नि को उत्तेजक रूप प्रदान करती हैं। संयोग के दिनों में सुखदायिनी है तो विरह की स्थिति में कष्टदायिनी। "विरह की व्यथा को जाग्रत करने अथवा उद्दीप्त करने में चारों तरफ की प्रकृति का, ऋतुओं का बड़ा हाथ रहता है। प्रेम

---

1. सुजान हित – 113
2. सुजान हित – 149

में ये ही सुख भी पहुँचाते हैं और अनन्त दुःख भी, ये अक्षय वरदान भी हैं और अनन्त अभिशाप भी– ऐसे ये संयोग और वियोग में प्रतीत हुआ करते हैं। संयोग में ये जितना सुख पहुँचाते हैं, वियोग में उसका चौगुना दुःख।"[1]

'पावस' विरही घनानंद पर कहर ढा रही है –

"लहकि लहकि आवै ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोंके हियौ,
गहकि गहकि गहबरनि गरें मचै।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहें,
कैसे घनआनंद सुजान बिन ज्यौ बचै।
महकि महकि मारै पावस–प्रसून–बास,
त्रासनि उसास दैया कौ लौं रहियै अचै।"[2]

रात्रि में पपीहा की कूक, हूक बनकर कवि को कष्टित करती है –

"बैरी बियोग की ऊकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
बेधत, प्रान, बिना ही कमान सु बान से बोल सों,कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै कित, डोलत मो तन लाएँ महातक।
वे घनआनंद जाय छए उत, पैंड़े परयौ इत पातकी चातक।"[3]

6. <u>प्रेयसी की निष्ठुरता</u> :– घनानंद ने सुजान को अन्तस् से चाहा था। सुजान के प्रेम में परिवर्तन हो गया, परिणाम स्वरूप प्रेमी का हृदय टूट गया। एक ओर कवि ने अपने को निश्च्छल भावुक कहा है तो दूसरी ओर सुजान को निष्ठुर। सुजान के व्यवहार में छल, प्रपंच, कपट एवं विश्वासघात है। पहले सुजान ने स्वीकार किया अब मंझधार में छोड़ रही है –

---

1. घनआनंद – पृ0 सं0 – 167
2. सुजान हित – 76
3. सुजान हित – 270

"पहलें आपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार–मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनंद आपने चातिक कों गुन–बाँध लै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यो विष घोरियै जू।"[1]

7. **प्रेमी की अनन्यता** :– विरह से व्यथित प्रेमी को अब भी विश्वास है कि उसकी प्रेयसी पास आ जायेगी, दिन बीतते जाते हैं, आशा की जगह निराशा ही हाथ लगी; तब भी वह इस बात पर दृढ़ है कि, "मेरा मन तुम्हारे अतिरिक्त किसी से प्रेम कर ही नहीं सकता। तुमको चाहने वाले बहुत लेकिन मेरे लिए तो बस तुम ही हो –

"सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा, जित नित नए हित–फंदनि ग
दुख–तम–पुंजनि पठाय दै चकोरनिपै, सुधाधर जान प्यारे भलें ही लसत हौ।
जीव सोच सूखै गति सुमिरें अनंदघन, कितहूँ उघरि कहूँ धुरि के रसत हौ।
अजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ, सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ।"[2]

8. **उपालम्भ** :– घनानंद के काव्य में सुकुमान उपालम्भ वर्णित है। सुजान की आलोचना करते हुए प्रेमी ने पूछा कि,

"अनीति की पाटी तुमने कहाँ से पढ़ी है?"
अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ सांचे चलैं तजि आपुनपै, झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।"[3]

9. **हित कामना** :– प्रेमी, प्रेयसी से कुछ क्षणों के लिए रूष्ट होता है; खीझने के उपरान्त भी वह प्रेमिका के हित की कामना करता है। उसका

---

1. सुजान हित – 38
2. सुजान हित – 217
3. सुजान हित – 267

अनिष्ट वह स्वप्न में भी नहीं सोचता, बदला लेने की भावना भी उसके मन में नहीं। यही भारतीय प्रेम का उच्च आदर्श तथा उदात्त भाव है –

"चूर भयो चित पूरी परेखनि एहो कठोर। अजौं दुख पीसत।
साँस हियें न समाय सकोचनि हाय इते पर बान कसीसत।
ओटनि चोट करौ घनआनंद नीके रहौ निस द्यौस असीसत।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत।"[1]

10. <u>धिक्कार</u> :– प्रेमी, प्रेयसी की निष्ठुरता पर खीझ उठता है। हित चाहते हुए भी वह प्रेयसी को बार–बार धिक्कारता है –

"नाद को सवाद जानै बापुरो बधिक कहा,
रूप के बिधान को बखान कहा सूर सों।
सरस परस के बिलास जड़ जानै कहा,
नीरस निगोड़ो दिन भरै भखि ऊरसों।
चाह की चटक ते भयौ न हिये खोंप जाके,
प्रेम–पीर–कथा कहै कहा भकभूर सों।
चाहै प्रान–चातक सुजान घनआनंद कों,
दैया कहूँ काहू कों परै न काम कूर सों।"[2]

11. <u>दूत द्वारा सन्देश</u> :– कालिदास के 'मेघदूत' का प्रभाव परवर्ती कवियों पर पड़ा, कवियों ने मेघ, वायु, भ्रमर, हंस, शुक आदि संदेश वाहकों से अपनी विरह व्यथा, प्रिय तक प्रेषित की है। घनानंद ने चार माध्यमों से प्रिया तक सन्देश सम्प्रेषित किया है – वे माध्यम हैं – मेघ, पवन, दूत एवं पत्र। प्रथम दो माध्यम तो प्राकृतिक हैं। प्रस्तुत छन्द में विरही प्रेमी, कवि बादलों से निष्ठुर सुजान के आँगन में बरसने के लिए कहते हैं –

---

1. सुजान हित – 303
2. सुजान हित – 507

"परकाजहि देह कों धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि–नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।
घनआनंद जीवन–दायक हौ कछू मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसारी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ।"[1]

पवन को दूत बना कर कवि ने इस उद्देश्य से सम्प्रेषित किया है कि वह प्रिया की चरण–रज ले आए।

"एरे बीर पौन। तेरो सबै ओर गौन, वारी
तो सो और कौन, मन ढरकौंही बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सों समान घन,
आनंद–निधान, सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन–भारे अंत मोहि प्यारे,
अब है अमोही बैठे, पीठि पहचानि है।
विरह–बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि।
धूरि तिनि पायनि की हा हा! नेकु आनि दै।"[2]

कवि, प्रियतमा को अपनी दुर्दशा का चित्रण पत्र द्वारा प्रेषित करना चाहता है लेकिन आँखों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित होते रहते हैं, अतः पत्र लिखना सम्भव नहीं, बेचारा हताश प्रेमी वर्षा ऋतु के व्यापारों को स्वीकार करता है –

बिरहा–रबि सों घट–ब्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवै इक लौ छतियाँ।
हिय–सागर तें दृग–मेघ भरे उधरे बरसैं दिन औ रतियाँ।
घनआनंद जान अनोखी दसा, न लखौं दई कैसें लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैं टपकैं बरूनी तिहि ओलतियाँ।"[3]

---

1. सुजान हित – 339
2. सुजान हित – 259
3. सुजान हित – 274

12. <u>काम जन्यदाहक वेदना</u> :- "कामदेव श्रृंगार का देवता है। संयोग में जो उपादान सुख प्रदान करते हैं, वे ही वियोग दशा में विरही को तपा-तपाकर मार डालते हैं। विरही के पास कोई उपचार नहीं है कि वह अपने संताप की व्यथा को दूर करे। शीतल उपकरण भी काम देवता की कृपा से अंगारे उगलने लगते हैं। चाँदनी भी अनंग दाह ही बन जाती है। वह अंग-प्रत्यंग को जलाती है।"[1]

"नेह निधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है बिपरीति महा घनआनंद अंबर तें धर कों झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।"[2]

शिव के त्रिनेत्र से कामदेव भस्म नहीं हुआ, उसका अस्तित्व विद्यमान है। यदि वह शंकर-नेत्र से भस्म हो गया होता तो सबको जला देने की, कष्ट देने की क्षमता, उसमें विद्यमान ही न होती, वह तो हमें जलाये दे रहा है, प्रेमी का कष्ट इस प्रकार वर्णित है -

"मुरझाने सबै अंग, रहयौ न तनक रंग,
बैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।
इते पै बसंत सो सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तें जु नयौ ना।
तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
बेधै मन कों कपूत पिता-मोह-मयौ ना।
पवन-गवन-संग प्राननि पठायहौं तौ।
जान घनआनंद को आवन जौ भयौ ना।"[3]

---

1. घनानंद का रचना संसार पृ0 सं0 162
2. सुजान हित - 198
3. सुजान हित - 251

13. <u>आत्म दोष</u> :– प्रेमिका निष्ठुर है, लेकिन प्रेमी उसकी प्रशंसा करता है, उसे निर्दोष बताता है। प्रिय को दोष न देकर अपने भाग्य को ही दोषी माना गया। प्रिय से मिलन नहीं हो पा रहा, इसमें भाग्य और विधाता का बहुत बड़ा हाथ है, भाग्य साथ देता तो मिलन न जाने कब का हो गया होता –

"रावरे गुननि बाँध लियौ हियौ जान प्यारे,
इतै पै अचम्भो छोरि दीनी जु-सुरति है।
उधरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है।
तुम हूँ तें न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हूँ परे तें गरें गाँठि सी घुरति है।
कैसे घनआनंद अदोषनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिलार की परेखनि मुरति है।"[1]

14. <u>दैन्य भाव</u> :– कवि ने असंख्य बार प्रिय से याचना की है कि वह आकर उसके विरह संताप को दूर कर दे। इस दैन्यता में जहाँ एक ओर आत्मनिवेदन है तो दूसरी ओर प्रिय के गुणों का गायन भी है। वह सुजान के चरणों में अपना सर्वस्व न्यौछावर किये हैं –

"सीस लाय, दृग छवाय, हिये पै बसाय राखौं,
इते मान मान आवै प्राननि मैं लै धरौं।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपोलनि सों मंजन कियौ करौं।
केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर ये,
इन ही के बल हौं मनोज-सिन्धु कों तरौं।
यातें घनआनंद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं।"[2]

---

1. सुजान हित = 69
2. सुजान हित – 205

15. <u>घनानंद के विरह में फारसी का प्रभाव</u> :-

घनानंद के विरह वर्णन पर फारसी पद्धति के विरह-वर्णन का प्रभाव पड़ा, इसका प्रमुख कारण है कि मुहम्मद शाह रंगीले के खास कलम थे, इससे उनकी काव्य रचना फारसी प्रभावित हो गयी। "फारसी काव्य शास्त्र के अनुसार विरह की जिन अवस्थाओं का प्रभाव कवि के काव्य पर पड़ा है, वे इस प्रकार हैं – 1. ठंडी साँस लेना (आहे सर्दी) 2. प्रतीक्षा करना (इन्तजारी) 3. अश्रु प्रवाह (चश्मेतर) 4. रंग पीला पड़ जाना (रंग जर्दी) 5. व्याकुल होना (बेकरारी) 6. अशान्ति और धैर्य हीनता (बेसब्री) 7. अल्पाहारी होना (कम खुर्दनी) 8. बहुत कम बोलना (कम गुफ्तगो) 9. नींद न आना (नींद हराम)"[1]

इस सन्दर्भ में शशि सहगल का मन्तव्य है कि, "फारसी और सूफियों का वियोग-वर्णन ऊहात्मक होता है, जिसमें रक्त का बहना, नसों का सूख जाना, अंगो का कट कर गिरना, आरे का सिर पर चलना और छाती का फटना आदि व्यंजित होता है। लगभग इसी तरह के भाव घनानंद के कुछ छन्दों में मिलते हैं। ऐसा करने से उनके काव्य में हल्कापन आ गया है और वीभत्सता भी जो हमारे यहाँ वर्जित है और फारसी काव्य पद्धति की एक विशेषता है।"[2] फारसी पद्धति से प्रभावित निम्न छन्द प्रस्तुत है –

"पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिं,
काती लै बिरह घाती कीने जैस हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।
जान प्यारे जोऽब कहू दीजिए संदेसो तोऽब,
अवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।

---

1. घनआनंद की काव्य साधना – पृ0 सं0 – 102

नेह भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागें,

जागैं घनआनंद ज्यौं पुंजनि-मसाल है।"[1]

सूफी और फारसी दोनों ही कवि वियोग को प्रमुखता देते हैं। सूफियों का वियोग तो उनकी निष्ठा है। यह विरह शाश्वत है। कभी-कभी चेतनावस्था में क्षणभर के लिए संयोग-सुख मिलता है। फारसी के कवि भी प्रेम की एकनिष्ठता और अनन्यता दिखाने के लिए प्रिय को कठोर तथा निर्मोही दिखाते हैं। इसीलिए विरह की प्रधानता आ जाती है। स्वच्छन्द धारा के कवियों विशेषतः घनानंद ने फारसी काव्य पद्धति से प्रिय की कठोरता और सूफी कवियों से प्रेम की पीर की प्रेरणा ली है। फलतः उनकी रचनाओं में वियोग का प्राधान्य स्वाभाविक है।"[2]

फारसी शायरी में एक पक्षीय प्रेम का वर्णन रहता। एक पक्ष प्रेम सर्वस्व समर्पित कर देता है, दूसरा पक्ष उदासीन रहता है, इसी फारसी शायरी का प्रभाव घनानंद में पड़ा –

"लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।

देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।

कैसो संजोग बियोग धौं आहि। फिरौ घनआनंद ह्वै मतवारे।

मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हूँ आप ते न्यारे।"[3]

फारसी शैली का प्रभाव केवल 'सुजान-हित' तक सीमित नहीं होते हैं – वियोग बेलि की भाषा ब्रज है, छन्द पर फारसी प्रभाव द्रष्टव्य है –

रंगीले हौ छबीले हौ रसीले। न जू अपनीन सों हूजै गसीले।।

तुम्हैं बिन क्यौं जियै तुम ही बिचारौ। बचैं कैसे कहौ तुम ही जु मारौ।।

लगौ नीके सबै बिधि प्रान संगी। तिहारी मीन हैं प्यारे तरंगी।।

---

1. सुजान हित – 206
2. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा
3. सुजान हित – 177

चढ़ाई मूड़ अब पायनि परैंगी। कहौ जोई अजू सोई करैगी।।

तिहारी ह्वै कछू क्यौं हू जियैंगी। विरह घायल हियो ज्यौं–त्यौं सियैंगी।।

छबीले छैल तुमको पीर काकी। बिथा की कथा ते छतियाँ जु पाकी।।

सजीवन सांवरे कबधौं ढ़रौगे। मरै साधा विरह बाधा हरौगे।"[1]

'इश्कलता' में घनानंद ने कृष्ण को अपना 'यार' बतलाया है –

"दिल पसंद दिलदार यार तू मजनूँ की तरसाँदा है।

रत्ति–दिहाड़े तलब सुसाडी अक्कल इलम उडाँदा है।

मैंनूँ ध्यान आन नहि जानी तू घन–कुंज–विहारी है।

महर–लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है।'[2]

"रहौ खुसी महबूब नंद दे मनमाने तित जावौ जू।

कदी–कदी घनआनंद जानी इन गलियन भी आवौ जू।

आस लगी अँखिया नूँ यारौं दीजे झाँकी प्यारी है।

महर–लहर ब्रजचंद याद दी जिंद असाड़ी ज्यारी है।"[3]

16. <u>विरह का आध्यात्मिक पक्ष</u> :– घनानंद के विरह का एक पक्ष आध्यात्मिक भी है, वे सुजान से विलग होकर परम सत्ता से जुड़ना चाहते थे। इस सन्दर्भ में डॉ0 गौड़ का कथन है कि, "ध्यान के कारण ही विरह के वर्णन में आध्यात्मिक भागों का रहस्यवाद की शैली से यत्र–तत्र आभास मिलता है। ध्यान–प्रवण वियोगी अपने हृदय देश में जब प्रिय के दर्शन करता है, तो पूज्य बुद्धि के सहारे प्रिय में परमेश्वर की अन्तर्यामिता तथा व्यापकता का वर्णन समासोक्ति पद्धति से हो जाता है। प्रिय प्रस्तुत है, परमेश्वर की भावना अप्रस्तुत। वस्तु मर्यादा भी विरही भावना के लोग में इतनी ऊँची चढ़ जाती है कि उसे प्रिय तथा परमेश्वर अभेद होने लगता है।"[4]

---

1. वियोग बेलि – 39–41
2. इश्कलता – 19
3. इश्कलता – 21
4. घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा

"अंतर मैं वासी पै प्रबासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।
लोचननि तारे ह्वै सुझावै सब सूझै नाहिं,
बूझी न परति, ऐसे सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यातें,
आनंद के घन छाय छाय उघरै रहौ।
मूरति मया की हा हा सूरति दिखैयै नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ।"[1]

सुजान से जुड़ा कवि का लौकिक प्रेम, पारलौकिक प्रेम में परिणित हो गया। सुजान न मिली तो राधा-कृष्ण की माधुर्य मूर्ति ने उन्हें नया नया जीवन दिया। कृष्ण के प्रति इतना अनुराग हो गया कि प्रेमी कवि, उन्हीं की भक्ति में तल्लीन हो गया –

"लहाछेह कहा धौं मचाय रहे, ब्रजमोहन हौ उख-नींद भरे हौ।
मिलि होति न भेंट, दुरे उघरौ, ठहरें ठहरानि के लाले परे हौ।
बिछुरें मिलि जात मिलें बिछुरै यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनंद छाय रहौ नित ही नित प्यासनि चातक जात मरे हौ।"[2]

घनानंद ने अपने काव्य में आध्यात्मिक विरह को अत्यधिक महत्व दिया है –

इस तरह से घनानंद के काव्य का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि संयोग वर्णन के साथ ही वियोग वर्णन में उन्हें महारत हासिल थी। आचार्य शुक्ल तो घनानंद को वियोग का कवि माना है। यह बात तो निर्विवाद कही जा सकती है कि घनानंद का मन संयोग वर्णन की अपेक्षा वियोग वर्णन में अधिक रमा है। इस सम्बन्ध में डॉ0 परशुराम चतुर्वेदी का विचार है कि, "घनानंद ने विरह के महत्त्व को भली-भाँति समझा था, इसलिए प्रेमी के विरह-विदग्ध दृश्य तथा उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अनिर्वचनीय मानसिक व्यापारों का जैसा सुन्दर वर्णन अपनी कविता द्वारा इन लोगो ने किया है, वैसा बहुत कम कवि कर पाये हैं। घनानंद की यह विशेषता है कि प्रेमी की दशा अथवा उसकी परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते

समय वे बहुत से अन्य कवियों की भाँति केवल शब्दाडम्बर का आश्रय नहीं लेते और न अत्युक्तियों का गाढ़ा रस चढ़ाकर किसी कोमल भाव को भद्दा बना देते हैं। वे स्वच्छन्दता वादी प्रेमी कवि थे। वियोग ही उनकी एक मात्र प्रेम साधना थी। वे वेदना में जीते रहना चाहते हैं। मरना नहीं यही उनकी भक्ति है।"[3]

बोधा के काव्य में विरह वर्णन

'सुभान' नामक दरबार की यमनी वेश्या से प्रेम किया, दरबार से छह महीने के लिए देश निकाले का दण्ड मिलने पर बोधा ने 'सुभान' के वियोगानल में अपना तन–मन जलाते जंगल, पहाड़, दरिया तथा अनेक शहरों की खाक छानी, 'इश्कनामा' तथा 'माधवानल' का आश्रय लेकर 'विरहवारीश' की रचना की। बोधा ने अपने विरह को कामकन्दला, लीलावती, माधव के माध्यम से व्यक्त किया है, विरह की चरम स्थिति, चरम परिणति प्रस्तुत की है, विरह की जितनी भी स्थितियां, दशाएं हो सकती हैं, वे सभी दर्शाई गयी हैं। संयोग में कामवासना ही दिखा पाए, लेकिन विरह में भोगा हुआ कष्ट तथा मार्मिक अभिव्यक्ति का चित्रांकन हुआ है। बोधा के विरह वर्णन में स्व की अनुभूति जुड़ी है, इसकी पृष्ठभूमि उनके मन–मस्तिष्क में तैयार थी, इसी कारण उसमें सरलता, स्वाभाविकता है।

पूर्वराग :– माधव वीणा बजाने में प्रवीण है, काम कन्दला तथा उसकी सखियाँ उससे प्रेम करने लगती हैं, उसकी चर्चा मात्र से प्रेम–मस्त हो जाती हैं – दर्शन न मिल पाने के कारण व्यथित होती हैं –

> "काहू सों का कहिबो अब हैं यह बात अनैसी कहे ते कहावत।
> कोऊ कहा कहिहै सुनि है कही काहू की कौन मनै नहिं भावत।
> बोधा कहै को परखो कहा दुनिया सब माँस की जीभ चलावत।
> जाहि जो जाके हितू ने दई वह छोड़े बनै नहिं ओढ़ने आवत।"[4]

---

1. सुजान हित – 271
2. प्रकीर्णक – 70
3. घनानंद का रचना संसार – से साभार पृ0 सं0 172
4. विरहवारीश – 57/12

माधव से कब भेंट होगी, काम कन्दला विरह से व्यथित है। यह ऐसा रोग है न तो सहते बनता है न किसी से कहते बनता है –

"कबहूँ मिलिहौ कबहूँ मिलिहौ यह धीरज जी में धराबो करै।
उरते कढ़ि आवैगरे ते फिरै मन की मन ही में सिराबो करै।
कवि बोधा न चाड़ि सरै कबहूँ नितहूँ हरषा सो हिराबो करै।।
सहते ही बनै कहते न बनै तन में यह पीर पिराबो करै।"[1]

<u>मान</u> :– माधव, काम कन्दला में प्रगाढ़ प्रेम हो जाता है, प्रेम अपनत्व में परिवर्तित हो जाता है, कामकन्दला सर्वस्व समर्पण कर देती है, लेकिन प्रेमी को सन्तुष्टि नहीं, काम कन्दला, मानिनी नारी तो थी, उसका मान प्रारम्भ हो जाता है –

"कहि न बाल वालम की मानी। चली रूसि अतिहि खिसियानी।।
तब द्विज माधौ बीना लीना। चल्यो रिसाय हिये रस भीना।।"[2]

<u>प्रवास</u> :– लीलावती को छोड़, माधव भ्रमण करने निकल पड़ा, लीलावती निरन्तर उसके विरह से विकल रहने लगी –

"रोवत बाल बिरह मद माती। ताके रोवत बिहरत छाती।।
तिय भवन जाय सखि कों बुलाय। गहि कंठ कियो रोदन बनाय।।"[3]

'बोधा' ने सुभान से प्रवास के सिद्धांत पक्ष को 'माधव काम कन्दला' की कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रेमी या प्रेयसी कोई भी अगर परदेश में है तो जीवन जीना बेकार है, विछोह देखने से अच्छा है कि आँख फूट जाये, उन कानों को धिक्कार है जो प्रीतम चले गये हैं ऐसा सुनते हैं। वे प्राण ही बेकार हैं, जो प्रिय के बिना संसार में अपना अस्तित्व बनाये हैं –

---

1. विरहवारीश – 57/13
2. विरहवारीश – 197/44
3. विरहवारीश – 78/21

"हे दिलवर सुन बात निज जिय की जुवती कही।
पियविदेस कहँ जात ते पसु जे सुनिकै जियत।
बोधा धृक वह जीव जात प्रीतम विछुरत जियत।
बिछुरत देखे पीव ऐसे दृग फूटे भले।
बधिर भले वे कान जे प्रीतम विछुरत सुनैं।
बोधा धृक वे प्रान प्राननाथ विछुरत रहैं।
रसना किन जरि जाय जान कहै दिलजान सों।
गेह लगै किन जाय भाव विना भाकसी सम।
नेह करे का जात सब कोऊ सब सों करै।
अरे कठिन यह बात करिबो ओर निवाहिबो।"[1]

प्रीतम के प्रवास के समय प्रकृति भी उस कष्ट को और बढ़ा देती है जबकि वे कह गये हों कि मैं शीघ्र आकर भेंट करूँगा। माधव, काम कन्दला के प्रेमपाश में आबद्ध है, उसने लीलावती को विस्मृत कर दिया है, लीलावती विरह से व्यथित रात–दिन रोती तड़पती है और अब तो ग्रीष्म ऋतु आ गई, अपने उत्ताप ताप से शरीर को भस्म ही कर देगी –

"बड़ी ज्वाल जग्गै जरी जात देही। बुझै ना बिना विप्र माधौ सनेही।
चढ़ी चौखटा नौखटा लौं निहारै। दिसा चार हेरै कि हाहा पुकारै।
कहूँ धूरिया धूरिया लोग गावै। जरे पै मनो भीड़ लोनै लगावै।
जरै चन्द्रिका चंद्र पापी धरै री। बिना माधवा प्रान मेरे हरैरी।
निसा साँवरी प्रेत की जोय जैसी। जरै जोगिनी जामनी जोत ऐसी।
करैं प्रेम संग्राम यो जान नीके। चढ़ि चौखटा जे त्रिया साथ पी के।
कहौं टेर कापै न कोऊ सुनै री। बिना जान वा पीर को धौ गुनै री।
अहे माधवा माधवा यों पुकारै। बिना माधवा साधवा को सँभारै।

---

1. विरहवारीश – 126/51–55

सुन सुभान लीलावति नारी। विरहदवाग जरत सुकुमारी।

ग्रीषमतपन भोर अति होई। पिय बिछुरे सहाय नहिं कोई।"[1]

ग्रीष्म ऋतु और भी दग्धकारक हो जाती है जब संदेश वाहक प्रीतम का संदेश लेकर लौटते ही नहीं।

"सुन हे सुभान दिनमान की निकाई अब,
लीजै कहा ग्रीष्म की तपन तनु ताइयै।
फेरि द्विज माधौ को संदेसहू न पायो भारी,
नौरतनवारे नौ ते नंद सरसाइयै।
बोधा कवि संग की सहेली कहैं बार बार,
पूजा कीजै वर की वियोग बिसराइयै।
पूजियै कहा री जो पै वर घर नाहीं आली,
तब कहौ कैसे बरसात हौं मनाइयै।"[2]

धीरे धीरे काली घटायें दक्षिण दिशा को घेरने लगीं, लीलावती का हृदय, उमड़ते घुमड़ते बादलों को देखकर दुःख से काला पड़ने लगा जिसका कि उपचार वैद्यों के पास भी नहीं है –

"कारी घटा दिसि दक्षिन देखि भयो री हितू हियरा जरि कारो।
ताही घरी कहि हाय वहै गिरिगै भुव पै लहि प्रेमतमारो।
केते न आय लगाय थके कवि बोधा हकीमन को उपचारो।
पै ना धरै वह धीर अरी न मिलै वह पीर को जाननहारो।"[3]

अभी उस प्रीतम से दो चार बोल बातचीत हो भी न पायी थी कि इस नयी प्रेम रीति में विछोह हो गया, प्रेम की पीड़ा किसी से न तो कहते बनती है और न ही कुछ सुनते बनती है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ नायिका न तो रोने की स्थिति में है, न तो गाने की; वह सोच नहीं पा रही है कि विषम स्थिति का सामना

---

1. विरहवारीश – 199/5–9
2. विरहवारीश – 200/18
3. विरहवारीश – 201/25

कैसे किया जाये –

"नइ प्रीति में प्रीतम तो बिछुरो बनै काहू न पीर सुनावत री।
बिरही चकचौधि रही बनिता वै असाढ़ी घटा लखि आवत री।
सुनि भूली सुभान सबै मुखा धुरवान को धावन धावत री।
हफासेट लौं बाये फिरै मुख को बनै रोवत ही नहिं गावत री।"[1]

प्रियतम निर्मोही होकर परदेश अपना निवास बनाए बैठा है, एक तो युवावस्था का नशा दूसरे पानी की पड़ती फुहार, काम ज्वाला को उद्दीप्त करती है, प्रीतम ही आकर काम के वाणों से बचा सकते हैं–

"प्यारो हमारो प्रबासी भयो तब सों सहिये बिरहानल तापन।
एतै पै पावस की जो निसा हियरा हहरै सुनि केकी कलापन।
चातक याते करौं बिनती बिन काम क्षमौ अपनी या अलापन।
तैं अपने पिय कों सुमिरै पै मरैं हम तेरी जुबान के दापन।"[2]

<u>करुण</u> :– लीलावती जाने कब अपने प्राणों का त्यागन कर देती, उसके प्राण इस आशा में कि सम्भवतः प्रस्थान करते समय माधव का सन्देश आ जाये, इस कारण से शरीर को नहीं छोड़ रहे हैं, लेकिन यदि शीघ्र नहीं आया तो उसका शरीर छूटना सुनिश्चित है–

गिरि ते गिरौं मरौं बिष खाई। तनु तजि मिलौं माधवै जाई।।
मरौं मिटै दुख मेरो प्यारी। कैसहु प्रान कढ़ै इहि बारी।।"[3]

प्रीतम माधव, आँखों से दूर है, एक एक पल वर्ष के समान लगता है बहुत मन को समझाने का प्रयास किया कि उस निर्मोही की याद न आये लेकिन याद तो हाथ धोकर पीछे पड़ गई है, आठों प्रहर बस यही कामना रहती है कि प्रीतम के दर्शन हो जायें लेकिन कभी–कभी दर्शन की लालसा पर खीझ होने लगती है–

---

1. **विरहवारीश** – 202/33
2. **विरहवारीश** –208/70
3. **विरहवारीश**–79/22

"भाल में लिखत को भुलाने मेरी बेर कहूँ,
माखन के बीच फटकार चहियतु है।
सो ना चूक तेरी बोधा भावतो मिलो ना फिर,
बिछुरन जानि याते खुसी रहियतु है।
जाके बड़े नैनन सामने मेरे नैन तासो,
बीचि परि दीन्हों कैसे धीर गहियतु है।
भई नाहि रंच तोहि करूना कसाई तूँ तौं,
ऐसो निरदई तासों दई कहियतु है।"[1]

प्रसूता की पीड़ा बाँझ स्त्री नहीं जान सकती, कामी व्यक्ति ज्ञान की सुनता सुन्दर स्त्रीं नपुँसक पुरूष को पसन्द नहीं करती, मूर्ख व्यक्ति कविता के भाव को भी नहीं समझ सकता ठीक ऐसे ही विरह की करूण दशा से विरही व्यक्ति ही परिचित है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई इस पीड़ा को नहीं समझ सकता, जो व्यक्ति कामवाणों से विद्ध नहीं हुआ है वह कभी भी प्रेम की भावना को नहीं समझ सकता और जो कभी प्रिय जनों से विलग नहीं हुआ वह विरह की करूण गाथा को नहीं पहचान सकता–

ब्याउर की पीर कैसे बाँझ पहिचानै कैसे,
ज्ञानिन की बात कोऊ कामी नर मानि है।
कैसे कोऊ ज्ञानी कामकथन प्रमान करै,
गुर को सवाद कैसे बाउरो बखानि है।
कैसे मृगनैनी भावै पुरूष नपुंसक कों,
कवि को कवित्त कैसे सठ पहिचानि है।
जानै कहा कोऊ जापै बीत्यो न वियोग बोधा,
बिरही की पीर क्वौ बिरही पहिचानि है।

---

1. विरहवारीश – 87/11

जिन्हें न बिछुरें भाउते लगें न मनमथतीर।

सो का जानै बापुरो बिरहीजन की पीर।"[1]

कवि का विचार है कि विरह ऐसी करुण कथा है कि सहृदय सुनकर व्यथित हो जायेगा, अतः उसे दुःख देने से कोई लाभ नहीं, अरसिक लोग विरही का उपहास करेंगे, करुणा करने के बजाय तालियाँ बजाकर ठिठोली करेंगे, ऐसे अनाड़ियों के बीच विरह की चर्चा करना तो बिल्कुल व्यर्थ है, अब प्रश्न उठता है कि सम दुःखी किसे बनाया जाये –

"बोधा किसू सों कहा कहिये जो विथा सुनि फेर रहै अरगाइकै।

याते भलो मुख मौन धरौ कै करौ उपचार हिये थिर धाइकै।

ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहूँ जो कहै हितू रंच दया उर लाइकै।

आवत है मुख लौं बढ़िकै पुनि पीर रहे हिय में ही समाइकै।"[2]

काम कन्दला को माधव का पत्र तो मिला, लेकिन उस पत्र में आने की कोई चर्चा नहीं थी। अत. कन्दला छाती पीटने लगी, सिर पटकने लगी, उसने प्राणों से निवेदन किया कि वे शीघ्र ही शरीर छोड़ दें –

"चिठि बाँचिकै भूमि सों लाय सीसं।

कही माधवा माधवा बार बीसं।

हनै हाथ छाती समाती न स्वासं।

रहे पिंड में प्रान होके निरासं।

कढ़यो काढ़िने क्यों मढ़यो दुख्ख मोही।

हितू साथ क्यों ना कढ़े प्रान द्रोही।

भई ब्रज की क्यों फटै नाहिं छाती।

अजौं माधवा प्रेम अनुरागमाती।"[3]

माधव, अन्त समय तक नहीं आया, काम कन्दला के प्राण, शरीर को इस आशा में नहीं छोड़ रहे थे कि सम्भवत. माधव आ जाय, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया, परिणामस्वरूप कामकन्दला स्वर्गस्थ हो गयी, सखियाँ शोक से भर गयीं, राजा

---

1. विरहवारीश – 90/33–34
2. विरहवारीश – 94/37
3. विरहवारीश – 130/92–93

को ग्लानि हुई कि व्यर्थ ही उसने पाप मोल ले लिया –

"मुई लखी जब बाम हाहाकार पुकारि कै।
सखियाँ गिरीं तमाम कहि बिरंचि का निर्मई।
क्षितिपति निज डेरे चल्यो चित में करत गलानि।
जस करि तन अपजस लग्यो धनि कलिजुग बलवान।।"[1]

विरह सिद्धांत पक्ष

बोधा ने आचार्य कर्म का अच्छा खासा प्रदर्शन किया है, कई जगह सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। वियोग की दसों अन्तर्दशाओं का सिद्धांत पक्ष स्थापित किया है। अन्तर्दशाओं के उदाहरण कथा के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं –

"प्रथम लाख अभिलाख बहुरि गुन कथन गुनन गनि।
पुनि सुमिरन उद्वेग प्रगट उनमाद तहाँ मनि।।
चिंता ब्यापै चित्त ब्याधि पुनि ब्याधि बढ़ावै।
जड़ि जड़ता को अंग असंग प्रलाप सुझावै।
कवि कहहिं दसा दस मारसर बातगमन बरनन कहाँ।
बिरही जिअत दिन बर्ष दस बिरह जि दिन कोपत महाँ।
जब ते तजौ वनिता पास। तब ते चित्त बिप्र उदास।
बिधि पै चलत न कोइ उपाव। है जिहि हन्यौ बिरहा घाव।
कल नहिं परत निसिहू भारे। बेसक इस्क को भयो जोर।
कर गहि बीन यह चित चाह। कैसे लहै चित्त मजाह।
यह रूचि भई उर में आय। अब यहु नगर देखिय जाय।
जाके बीच मेरो मित्र। ताके बसत निसि दिन चित्त।
यौं अभिलाष बीत्यो जान। अब गुनकथन कहत बखान।

---

1. विरहवारीश – 169/80–85

तरस्सत नैन ये मेरं। बिना दीदार पिय केरे।

हितू के नैन हैं जैसे। नहीं बरबाम में तैसे।

सुमिरन की कही यह रीति। हिय घट की कठिन की प्रीति।

धांती स्वेत छूटे बार। औ पुनि आड़ लसत लिलार।

अंजन अधर नैन तमोल। दिलबर ज्यों कहो मृदु बोल।

चोली कसतउ कसत बार। सो छबि बसी चित्त मँझार।

है उद्बेग की यह रीति। पानी पान सों नहिं प्रीति।

गली हेरत दिवाने की। गई सुध भूल खाने की।

इसी मजकूर है उनमाद। जो कीजे सही न संबाद।

बिछुरन तेरी अनेरी यार। दिल को भयो दरद अपार।

बूझो ब्याधि को यह अंग। पीरा हरा फीका रंग।

तेरे दरस बिन यह बाल। मेरा भया ऐसा हाल।

कधी दिलदार जो आवै। अजब रंग सुरंग सरसावै।

चिंता तेरीयै साई। कभी तू हेत मो ताई।

तरनी निकट चित मिल बाम। हिल मिल किये बहुत विश्राम।

तौ लौं तरस ताही ला। इसा किम राखिये जी ला।

जड़ हो रहे जड़ता सोय। जैसा चित्र पक्षी होय।

यारन यों कह्यो परलाप। बेअबकूफ हिय कछु दाप।

हँसी नहीं बरनत कोय। निरस निधन जानब सोय।"[1]

वियोग की अन्तर्दशायें

1. <u>अभिलाषा</u> :- लीलावती की अभिलाषा है कि माधव के शीघ्र दर्शन हो जायें, इसके लिए वह ईश्वर से, दूत से, प्रार्थना करती है कि उसकी इस अभिलाषा की पूर्ति शीघ्र करें।

---

1. विरहवारीश - 53-54/23-36

जब मिलिबो नहिं होत लगायके दृगन में।
तब असिक की जोत जारत नेह नसीठ को।
पिय प्यारी अरु पीय दूती को देखत जियै।
ज्यौं रोगी को जीय रहत समानो वैद्य में।
आन मिलावै मोहिं जो तू माधव मीत कों।
और देहुँ का तोहिं मेरो सिर तुव वेठका।"[1]

काम कन्दला, माधव के विरह से व्यथित हैं, उसकी हार्दिक अभिलाषा है कि प्रीतम के शीघ्र दर्शन हों –

साँकर लौं बरूनी कसिकै अंसुआन मई तसबी कर राखें।
डोरे रहे बनि बास सुरंग तहाँ कफनी पल टारिके झाखे।
बोधा निबुद्धि हो मौन रहें मग माधवा साधवा को अभिलाखें।
त्यागि के भोग संजोग सवे रहीं जोगिन होय वियागिनी आँखें।"[2]

2. <u>चिन्ता</u> :– लीलावती को रात दिन इस बात की चिन्ता है कि माधव परदेश में है पता नहीं वो किस स्थिति में होंगे। पँच वाणों से सुसज्जित बसंत का आगमन हो चुका है, इन शर फलक से वह कैसे बचेगी? उसे इस बात की चिन्ता व्यथित कर रही है–

"ऐ स्वामी मन सोच यह आवत अग्र बसंत।
पिय बिदेस हिय विरहजुत कहि जीबै को तंत।
बटपारन बैठि रसालन पै दुखदायक कोयली रे ररिहै।
वन फूलिहैं फूल पलासन के तिनको लखि धीरज को धरिहै।
कवि बोधा मनोज के ओजन सों बिरहीतन तूल भयो जरिहै।
कछु तंत नहीं बिनु कंत भटू अबकी धौं बसंत कहा करि है।"[3]

---

1. विरहवारीश – 56/1–4
2. विरहवारीश – 141/26
3. विरहवारीश – 33/42–43

लीलावती को माधव दर्शन के अतिरिक्त कोई चाह नहीं, कामना नहीं, चिन्ता है तो बस माधव की –

"चिन्ता मेरे चित्त माधव तेरे दरस की।
फुलवारी तक मित्त बनै तो मोहित आउने।।"[1]

3. <u>स्मृति</u> :– प्रियतम, परदेश में प्रवासी बनकर ही रह गये हैं उसकी मादक स्मृति हृदय को शाल रही है, तभी पावस की रात्रि ने जोर आजमाइश प्रारम्भ कर दी, प्रियतमा ने प्रार्थना की, "मैं प्रिय की स्मृति से व्यथित हूँ, अतः कष्ट देना बन्द कर दें –

"प्यारो हमारो प्रबासी भयो तवतें जरियै बिरहानल तापन।
एते में पावस की या निसा हियरा हहरै सुनि केकी कलापन।
चात्रिक एते करैं बिनती कवि बोधा छके अपनी यै अलापन।
तू अपने पिय कों सुमिरै सुमिरैं हम तेरी जुबान की दापन।"[2]

पपीहे की आवाज, प्रियतम की स्मृति जन्य भावनाओं को हवा दे रही है, विरह की आग ज्वलनशील होती हुई शरीर जला देने के लिए प्रयत्नशील है –

"प्रिय प्यारे की बानि पपीहै परी अधराति कुलाहल गावतु है।
रजनेरी सुभान सों आयो पढ़ैं कहि दूसरो आँकु न आवतु है।
कलकानि न बोधा हमारी लखै इन्हें आपनोई सुख भावतु है।
लखि पायो उसे सदा जानि पर्‌यो करि ताउ सो ती घन तावतु है।"[3]

चुनरीदार घाँघरा अब भी मन मस्तिष्क को मथ रहा है अंग राग की भीनी–भीनी सुगंध माधव की नासिका में बसी हुई है। भादों की घटा देखकर

---

1. विरहवारीश – 58/14
2. इश्कनामा – 9/51
3. इश्कनामा – 9/52

कही ऐसा न हो कि दुर्भाग्य वश भादों के महीने में रोना पड़े–

"चुनरी चुनावदार पहिरें मृगाक्षी वनी,
ठनी झुंड झुंडन तड़ागतीर आवहीं।
केसर से अंग अंगराग करैं केसर को,
नीवी कसि नीके म्हारी जान ललचावहीं।
बोधा कवि जो पै नहीं चैन चित्त आपने में,
तौ ये सबै झूठे झूठे ख्याल कों बनावहीं।
ताउदो वियोग मनभाउदो न देखो यातें।
सावनदी खबौहीं तौ हमकों न भावहीं।"[1]

4. <u>गुण कथन</u> :– हिरणाक्षी लीलावती, आँखो ही आँखों में बात कर, भावनाओं से भर देती थी, रूपगर्विता हस्तिनी सदृश चलकर मदहोश कर देती थी, कोकिल कंठ की मादक ध्वनि आज भी मेरे कानों को गुंजरित कर रही हे –

"आवती ती हिरनाक्षी इतैवा झकोर के आँखैं हितै भरि देत ती।
चौधा लागवत चंदमुखी गजगामिन सो मगरूरी समेत ती।
बोधा वियोग करै सबको पिकबैनी कठोर हिये न सचेत ती।
जानती पीर गरीबन की अहे पीन कुचान हियो हरि लेत ती।"[2]

वह मेरी प्रियतमा, नवयौवन से भरी पता नहीं कहाँ होगी? सहेलियों के साथ खेलती हुई मेरी याद कभी करती भी होगी पता नहीं, मादक उस रूप से कब भेंट होगी?

"कैसे कहाँ होयगी प्यारी।। नवजोवन बाला सुकुमारी।।
खेलत कहूँ सखिन के माहीं। मेरी याद करै कै नाहीं।।
ऐसी छबि कब देखन पाऊँ। किहि उपाय पुहुपावति जाऊँ।।"[3]

---

1. विरहवारीश – 86/4
2. विरहवारीश – 89/25
3. विरहवारीश – 91/1–3

हमेशा प्रियवाणी बोलने वाली, हस्तिनी सदृश चाल है, जिसकी, चन्द्रमा की कान्ति तथा सुन्दर ग्रीवा से सुशोभित, मीनाक्षी लीलावती पता नहीं उससे कब भेंट होगी –

"बल्लभा बाल प्रिया बनिता मनभावदी बाम हितू गजगैनी।
चंद्रमुखी रवनी हे नितंबिनी पीनकुचा सुजनी पिकबैनी।
बोधा बखानत माधवा यों तरुनी घरनी गबड़ी सुखदैनी।
कामिनी कामदा प्यारी तिया अये लीलावती है कि तू मृगनैनी।"[1]

5. **उद्वेग** :– माधव, कन्दला के वियोग में उद्विग्न रहता है, कहीं तो उसे चित्त भ्रम के कारण चतुर्दिक कन्दला दिखाई पड़ती है तो कभी उसकी भूख–प्यास नींद सब कुछ गायब हो जाती है –

"छोड़यो अन्नपान ब्रहमज्ञान यों नध्यो है जाके, कामनाई जो है एक इष्ट अवराधवा।
सोवत जागत सपनेहू चिंता मित्र ही की, करत कलोले मिटै रंचक न साध वा।
बोधा कवि नगर उजैन चैन चाहैं टिक्यो, संभू के दिवाले लागी दृगन समाध वा।
कंदला के दरद में दिलदार घूम घूम, जोगी भयो डोलत वियोगी मित्र माधवा।"[2]

तोता उसकी दशा का वर्णन करते हुए कहता है –
"छिना छिना छिन दीनं। बुद्धि रटत माधवा जोगी।
त्वं बियोग दिलजानं हिय हनंत मकरध्वज द्विजद्रोही।।"[3]

6. **प्रलाप** :– माधव लीलावती के वियोग में अतिशय व्याकुल हैं कभी–कभी वह अनर्गल प्रलाप करने लगता है, कभी दीवालों से बात करता हुआ दिखाई देता है –

"कछु पूरो प्रापत द्विज चीती। वहै प्रलाप अवस्था बीती।
कहै वहै जाई मन आवै। जाको मजा न कोउ पावै।

---

1. विरहवारीश – 92/11
2. विरहवारीश – 140/7
3. विरहवारीश – 139/3–4

घटै दरद मेरे हिय जातें। कहु वे मीत मीत की बातें।

इस्कपंथ नहीं चीन्हत क्यों ही। बरगद भये बड़े तुन यों ही।

बस्तु वहै जो औरै दीजै। बोवै काटे देर न कीजै।

सुनहु बृषभ तालिब दी बातै। खांयो जन्म बिनौला खातैं।

बूझत ये दिवाल तुम बोलो। कारन उर अंतर को खोलो।

इस्कहकीकी हैं फुरमाया। विना मजाजी किसी न पाया।"[1]

7. <u>उन्माद</u> :- माधव के वियोग में लीलावती और उसकी सखियाँ उन्मादित हो गयी हैं, कोई हँसती है, कोई रोती है, उनमें किसी भी तरह की लज्जा नहीं रह गयी। एक तो एक ही आँख में काजल लगाकर घूमती है तो दूसरी एक पैर में महावर लगाये बैठी है –

रोवैं हँसे चहूँ दिसि धावें। एकै खड़ी गलिन में गावै।

उनमादी सब बाम लाज तजे ब्याकुल फिरैं।

भूलो सुत पति धाम किय माधव जादूगरी।

दृग एक अंजन आँजिकै एकै चलीं अकुलाय।

एकै महाबर देत बिसरयो दयो एकइ पाय

एकै अन्हात उमाह बाढ़ी चलीं बसन चुँचात।

एकै लिये कर में कसोंनी सो कसी नहिं जाय।

उढ़नी लपेटे सीस सों अरू कंचुकी लिपटाय।

सिसु तौ पुकारै द्वार में भरतार खोरन माहिं।

द्विजनंद की पइरिंदगी सरमिंदगी नहिं खाहिं।

एकै नदी तीर जो नारी। बसन त्यागि उठि चलीं उघारी।।"[2]

माधव के वियोग में यदि लीलावती व्यथित है तो, लीलावती के वियोग में माधव और अधिक विमोहित, उन्माद स्थिति को प्राप्त है –

---

1. विरहवारीश – 54/34,40
2. विरहवारीश – 65/39–42

"पगनि परां री प्रान काहू सां पगं जो चूर,

हांत मगरूरी मगरूरियै जगी रहै।

हंरनि हँसनि बतरैबे को कौन स्वाद,

उन्माद तें और पीर तन में पगी रहै।

बोधा कवि जो है मेरे हितू कां सुहाती जीव,

ताही में खगो रहै सांई जी में खगी रहै।

केसी करौं कहाँ जाउँ कासों कहों दई कहूँ,

मन तौ लगै ना चित मन में लगी रहै।"[1]

8. <u>व्याधि</u> :– प्रीतम के विरह में प्रेयसी रोती है कलपती है, सिर पीटती है और धीरे–धीरे रोगिणी बन जाती है। मुख की कान्ति पीली पड़ जाती है, सारा शरीर सूख कर काँटा हो जाता है, अत्यधिक वियोग की अवस्था में मूर्च्छित हो जाती है –

"निसिवासर वे करूना करतीं। मुरछा लहि हा कहि भू परतीं।

कबहूँ बन कुंजन में बिहरें। लखि केलि सहेट बिलाप करें।"[2]

उनका मन विरह से भरा हुआ है तो शरीर व्याधियों से ग्रसित है, अतः बार–बार मूर्च्छित हो जाती हैं, नदी के तट पर ही डूब जाती हैं –

"तन मन बूड़े विरह में मूर्च्छित ह्वै गिरि जायँ।

सरिता के तट कामिनी बिन जल गोता खायँ।"[3]

थोड़ा सा चैतन्य होने पर पुनः दौड़ने लगती हैं और हमेशा बेचेन दिखाई देती हैं –

"माधो माधो सोवत कहतीं। स्वप्नहुँ बाल बिकल जो रहतीं।

मूर्छा खाय गिरैं पुनि धावैं। असन बसन तजि तो हित आवैं।"[4]

---

1. विरहवारीश – 84/38
2. विरहवारीश – 31/27–28
3. विरहवारीश – 65/46
4. विरहवारीश – 69/23

"मूर्छित पड़ी सेज पर कामिनि। विष सो वासर जम सी जामिनि।
बूड़त उछलत दिवस बितावत। विरहसिंधु को पार न पावत।"[1]

कन्दला अतिशय क्षीण हो गयी है, उपचार हेतु वैद्य को बुलाया गया, असाध्य रोग बताते हैं –

"घरीकन माहिं हरी ह्वै जात। परी पियरी पल माहिं लखात।
घरी सियरी अति दीरघ स्वास। नहीं तिय के कर में बिस्वास।
नहीं कफ पित्त सुवात बखान। नहीं अस्लेष हिये अस जान।
नहीं तन रक्तविकार लखाय। नहीं तिय के तन प्रेत बलाय।
अद्भुत रोग तिय के अंग। जाको समुझ परत ना रंग।
सहसक लखे रोगी सोय। ऐसो रोगिया नहिं कोय।"[2]

9\. <u>जड़ता</u> :– लीलावती को माधव के दर्शन नहीं हो पाते परिणाम स्वरूप चेतन और अचेतन मस्तिष्क एक ही जैसा कार्य करने लगते हैं। चतुर्दिक प्रेमी की ही छवि दिखायी देती है और कभी बार–बार ऐसा लगता है कि प्रेमी ने उसको धोखा दिया है –

"वा दिन की वह बान सँधा सनधान पै बोधा महा बिष सी भई।
बातें कहीं बगध्यान सबै पर मीनसी बावरी बुद्धि फिंदै लई।
हौं तौ दिवानी भई सो भई उनसों न करी जड़ता बजिकै दई।"[3]

लीलावती और उसकी सहेलियाँ सभी जड़ता से युक्त हैं आश्चर्य से इधर–उधर देखती हैं; मौन होकर किसी से कुछ नहीं कहतीं –

जा जहाँ सा तहाँ चकचौधि रहयो। अचरज्ज कछू नहिं जात कह्यो।
सबकों लखतीं सब मौन गह्यो। यहि बेदन भेदन कछू न कह्यो।"[4]

---

1. विरहवारीश – 199/10
2. विरहवारीश – 164–166/41,42,55
3. विरहवारीश – 57/11
4. विरहवारीश – 66/48

10. <u>मरण</u> :- माधव के वियोग से व्यथित लीलावती सोचती है कि पहाड़ से गिर कर प्राण त्याग दूँ, या विषपान करके जीवन लीला समाप्त कर दूँ, जिससे विरह कष्ट से मुक्ति मिल जाय –

"गिरि ते गिरौं मरौं बिष खाई। तनु तजि मिलौं माधवै जाई।
मरों मिटै दुख मेरो प्यारी। कैसहु प्रान कढ़ै इहि बारी।"[1]

काम कन्दला ने माधव के वियोग में प्राण त्याग दिये, राजा ने मरी हुई कन्दला को देख, प्रायश्चित किया कि इतना बड़ा अनर्थ उनसे हो गया –

"मरी निहार कंदला हरी हरी नरेस कीन्ह।
गयो नसाय चौकचाय हौं बिसाह पाप लीन्ह।"[2]

काम कन्दला इस नश्वर संसार से प्रस्थान कर, प्रेममय संसार में लीन हो गयी ऐसा देखकर चारों तरफ हा हा कार मच गया, सखियाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ी, कुछ लोग ब्रह्मा को निष्ठुर कहने लगे –

"मुई लखी जब बाम हाहाकार पुकारि कै।
सखियाँ गिरीं तमाम कहि बिरंचि का निर्मई।
हा हा कहि सोर सखीन कर्‌यो। काहू पल एक न धीर धर्‌यो।
राजा इक बात कही तबहीं। जीहै यह बाल लखौ अबहीं।"[3]

सच्चा प्रेमी वही है, जो प्रेयसी का साथ जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक दे। काम कन्दला ने माधव से प्रेम किया, विरह को सहन न कर सकी, अतः प्राण दे दिये, कन्दला इस संसार में नहीं रही, ऐसा सुनकर माधव ने सच्चे प्रेमी होने का प्रमाण प्रस्तुत किया; उसने भी तत्काल प्राण त्याग दिए। इस प्रेम को देखकर देवताओं ने पुष्प वर्षा की –

---

1. विरहवारीश – 79/22
2. विरहवारीश – 168/79
3. विरहवारीश – 169/80–82

"मरी नारि यह स्रवन सुनि माधो तन तजि दीन।
हाय कंदला कंदला कहँ कंदला प्रवीन।
संखनाद देवन कियो छाए व्योम विमान।
इत तन त्याग्यो माधवा उत कंदला सुजान।"[1]

विरह वर्णन की विशेषताएं

1. **आत्मदशा की अभिव्यक्ति** :– बोधा ने सुभान के प्रति अपने विरह को मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्त किया है। उनके विरह में अन्तस् की गहराई है क्योकि वह उनका भोगा हुआ यथार्थ था –

"लखि नीर बहे औ दवागि दहे जनराज गह कबहूँ निबहे।
पुनि सेर लथेरे बिछू के उसे बहुतेरे विथा पुनि ओर सहे।
कवि बोधा अनोखी किसा या लखो दुई टूक ह्वे फेरि न धीर गहें।
तिरछी तरवारि लौ हैं तिरछे दृग लागे जिन्हें त लगे न रहें।"[2]

बोधा ने अपनी आत्मअभिव्यक्ति को माधव की कथा के माध्यम से भी प्रस्तुत किया है। प्रेयसी के विरह में उनकी नींद और भूख सभी कुछ गायब हो गयी है –

"निसिवासर नींद औ भूख नहीं जबते हिय में मेरे आन बसी।
मिलते न बनै जग की भय ते बरहू न रहै हिय की हुलसी।
कवि बोधा सुनै हे सुभान हितू उर अंतर प्रेम की गाँस गसी।
तिनकों कल कैसे परे निरदै जिनकी है कुजागर आँख फँसी।"[3]

---

1. विरहवारीश – 171/11–12
2. इश्कनामा – 7/38
3. विरहवारीश – 156/59

2. <u>आँखों की बेचैनी</u> :- सुभान के देखे बिना आँखे बेचैन रहती हैं, हर प्रकार से मन को समझाने का प्रयास किया, लेकिन असफलता ही हाथ लगी–

"बोधा सुभान हितू सों कही या दिलंदर की को सही करि मानत।
ता मृगनैनी की चारू चितौनि चुभी चित में चि सो पहचानत।
तासों बिछाह दई ने कर्‌यो तो कहौ अब कैसे मैं धीरज आनत।
जानत हैं सबही समझाय पै भावती के गुन कों नहिं जानत।"[1]

माधव की आँखे काम–कन्दला के दर्शन के लिए व्यग्र हैं –

"बात नहीं समुझावै सबै वह पीर हमारी न पावत कोई।
का करै मान सिखापन सो जिय जाही को आपने हाथ न होई।
बोधा कदाचित जानै वहै यह मो हिय में जिन बेदन बोई।
चाव कचोट कटाक्षन की तन जाके लगी मन जानत सोई।"[2]

प्रेयसी के कटाक्ष यदि हृदय में चुभ जाते हैं तो कटाक्ष को सहन करने वाला ही उस कष्ट को जान सकता है, यह तो अनिर्वचनीय कष्ट है।

<u>3.</u> <u>स्मृति जनित वेदना</u> :- लीलावती को माधव का सम्मोहक रूप बार–बार याद आता है, पहले तो इस याद से एक विचित्र प्रकार का सुख मिलता था, लेकिन अब वही स्मृति कष्ट दायक लगने लगी है –

"सुमुखी कहै सुनु मम नाथ। जब सों छुटो तेरो साथ।
निसिदिन माधवा की टेक। कारन करत रहत अनेक।
त्यागे बसन पानी पान। नैनन नीर नदिन समान।
ग्रीष्म तपन तेरी प्रीत। बिछुरन जान या बस रीत।
नैना भए बादल स्याम। बरखत रहत आठौ जाम।"[3]

---

1. विरहवारीश – 157/61
2. विरहवारीश – 157/60
3. विरहवारीश – 58/18–19

माधव भी इस समृति जन्य वेदना से व्यथित हैं –

"मो सम अधम न आन प्रान प्रिया बिछुरे जियत।
हियो ब्रज भया न्यान बिरह घाव बिहरत नहीं।"[1]

4. **ऋतु और प्रकृति के कारण विरह** :– प्रकृति और ऋतु दोनों ही भावनाओं को उद्दीप्त करती हैं। प्रेमी और प्रेयसी साथ में हैं तो यह ऋतुएं सुहावनी और सुखद लगती हैं। वियोग होने पर यह कष्टदायी, दुःखदायी प्रतीत होने लगती हैं –

"वटपारन बेठि रसालन पै दुखदायक कोयली रे ररिहै।
बन फूलिहैं फूल पलासन के तिनकों लखि धीरज को धरिहै।
कवि बोधा मनोज के आंजन सों विरहीतन तूल भयो जरि है।
कछु तँत नहीं बिनु कंत भटू अबकी धों बसंत कहा करिहै।
जग में अब आय बसंत बस्यो। तब कंद्रप मूरतिवंत लस्यो।
नव पल्लव पात नए हुल हैं। मदनद्रम बीच धुजा सु लहैं।
नव फूलन पुंज पलासन के। नित साजत बेस हुतासन के।
नव कुजकली जल में लसिहैं। विरहीजन के मन कों कसिहैं।
पिक चातक सोर खरे करिहैं। बिरहीजन प्रानन ते हरिहैं।
कुसमाकर फूल निषंग भरे। अमलान सु धीरन मौर धरे।
जग माँहि आय साज्यो बसंत। जब प्रलयकाल संसार अंत।
जिन धाम नहीं भा उनहिं साज। तिनकों विसेष दुख भव समाज।
सुनि कठिन कोकिला कूक बीर। अस कौर प्रबल जो धरै धीर।
लखिकै रसाल को मौरू बाल। अस को न भयो बिरही बिहाल।"[2]

रीतिमुक्त कवियों में बोधा ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने विरह का सुन्दर 'बारहमासा' सहृदय पाठकों को समर्पित किया है। माधव के विरह में कंदला

---

1. विरहवारीश – 143/40
2. विरहवारीश – 33–34/43–48

व्यथित है तो दूसरी तरफ लीलावती माधव के विरह से पीड़ित है। इन दोनों के ऊपर ऋतु और प्रकृति का प्रभाव पड़ा, हर महीने में इन दोनों की शारीरिक और मानसिक स्थितियों में जो-जो परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं उसको प्रस्तुत किया गया है। ज्येष्ठ माह से लेकर बैसाख माह तक की सुन्दर बारहमासी दृष्टव्य है -

"ज्यों ज्यों जेठ मास ऋतु आई। जीवत रही प्रीतमहिं छाई।
सजल घटा दिसि पूरब देखी। काल सरूप वियोगि न लेखि।
सुन सुभान लीलावति नारी। या माधौ माधौ रूरकारी।
सुमुखिय ध्याय गई गिरि ऐसे। बेधिय बाकि कुरंगितिन जैसे।"

(ज्येष्ठ)"[1]

"कहौं कौन पै को सुनै पीर माई। बुरी आय आषाढ़ ने लाय लाई।
घटा मध्य पापी बकापाँत जोरै। मनो मैन के बान बिरहीन छोरै।"

(आषाढ़)"[2]

सखी सुन सावन आवन कीन्ह। भई बिन भावन हौं अति दीन।
खरी यह कोकिल कूकत बीर। लगे बिन भावन मो हियं तीर।
चपै चपला छहरै घन माँह। चलै चमकाय बियोगिन काँह।
महाघन घोरत फोरत कान। ररै मुर वा न हरै मम प्रान।"

(श्रावन)"[3]

"झकझोरत पौन प्रचंड चलै। बिरही द्रुम मूल समेत हलै।
घहरै घन घोर घटा छहरै। नव पल्लव लौं बनिता थहरै।
निसि वासर भेद कछू न रहयो। चकहा चकहीन वियोग दयो।
बरहीगन सों बिरहीय जरै। जुगनू गन जोर परै सुपरै।"

(भादौं)"[4]

---

1. विरहवारीश - 201/23-24
2. विरहवारीश - 202/31
3. विरहवारीश - 204/43-44
4. विरहवारीश - 207/62-63

"अहे सुनो ब्रजनाथ बिन संजोग प्रिय नाथ के।
लखि अद्भुत यह गाथ सरद चाँदनी देत दुख।।"

(कुँवार)"[1]

"कातिक अमल मास जग जानत। नर नारी हरि सों हित मानत।
मोहिं न हरि के हित सुख होई। मेरो हरि माधवनल कोई।।"

(कार्तिक)"[2]

"यह मारग यह सीत मोहिं आन हो तो रुचिर।
हो तो माधौ मीत हियरे पर हिय हार ज्यौं।"

(मार्गमास)"[3]

"लाग्यो पूस सीत सरसानो। बनिता फिर निजु हाल बखाना।
निसि दिन सीत लहै नर नारी। तूलन तपी प्रतमहि प्यारी।
जिनके गेह न प्रीतम प्यारो। तिनहिं ज्वालसम लगत हिमारो।"

(पूस)"[4]

"अब सुन सखी माघ हित आयो। सबरे गत मोद मद छायो।
ऊंचे महल झरोखन झाँखैं। जिनकी लगी जिन्हों से आँखें।"

(माह)"[5]

"गोबर कीच सने ये बने अरू कीनहे कुसुंभै सराब के नस्ता।
हाथ मैं लट्ठ लटै बिथिरी उनमाती सी नारि किये रसमस्ता।
घूरन पै लपटैं झपटैं सने इल्लत गावैं खसूर फफस्सा।
को बरनै जो लख्यो इन आँखिन फागुन मास को धूमर धस्सा।"

(फागुन मास)"[6]

---

1. विरहवारीश – 210/3
2. विरहवारीश – 211/9
3. विरहवारीश – 211/15
4. विरहवारीश – 212/21
5. विरहवारीश – 212/27
6. विरहवारीश – 213/36

"कोकिल या तो कुठार सो वान लगे पर कौन को धीरज रैहे।
याते मैं तोसों करों बिनती कवि बोधा तुहीं फिरिकै पछितैहै।
स्वारथ औ परमारथ को फल तेरे कछू सुन हाथ न ऐहे।
ठौर कुठौर वियोगिन के कहूँ दूबरी देहन में लगि जैहै।"

(चैत मास)"[1]

"कठोर कोकिला ररै। पपीहरा हियो हरै।
प्रचंड पौन ज्यों चलै। लतादि बृक्ष त्यों हलै।
सखी कहा बिथा कहों। दई दई सोई सहों।
न मित्र इत्त आवहीं। न चित्त चैन पावहीं।"

(वैसाख)"[2]

"सुनि सुमुखी यह पीर बालापन बेधत दई।
कयों करि धरिये धीर सुधि नहिं माधो ने लई।
बीते बारह मास मास मास गलि माँस गो।
रही निगोड़ी साँस माधो के स्वासन लगी।
माधो मेरे यार यारी में ख्वारी करी।
बीती अवधि अधार अब जीवों आधार किहि।"[3]

5. **<u>प्रेमी की अनन्यता</u>** :— बोधा को विश्वास हे कि सुभान से बिछड़ने की अवधि शीघ्र समाप्त होगी। क्योंकि सुभान के अतिरिक्त इस संसार में उसका कोई नहीं है, सुभान के प्रिय तो कई हो सकते हैं, लेकिन बोधा की तो बस सुभान ही है –

"एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतव्रतु की पदवी लुटियै लखिकै मुसकाहट ताको।

---

1. विरहवारीश – 214/38
2. विरहवारीश – 215/49–50
3. विरहवारीश – 215/51–53

"सो कजरा गुजरान जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरान तहाँ को।
जान मिलैं तौ जहान मिलै नहिं जान मिलै तो जहान कहाँ को।"[1]

जिस तरह से सावन के अन्धे व्यक्ति को हमेशा चतुर्दिक हरियाली ही हरियाली दिखती है, ठीक ऐसे बोधा को चारो तरफ सुभान का ही सौन्दर्य विराजमान दिखता है, कवि की अनन्यता उच्च कोटि की है –

"कोटिक देखि फिरौं छबि मैं पै न कोउ छवै सम वा छवि जूझै।
आँखिन देखी जो वानि तिन्हें बिन आँखिन सों तौ जु वाहियै बूझै।
बोधा सुभान को आनन छोड़ि न आनन मो मन आन अरूझै।
जैसे भए लखि सावन के अँधरे नर को सु हरो हरो सूझै।"[2]

6. **उपालम्भ** :– प्रेमी को प्रेयसी से इस बात की शिकायत है कि उसने तो अपना प्रेम, सर्वस्व समर्पित कर दिया लेकिन प्रेयसी है कि प्रेम का प्रतिदान देने में भी कंजूसी बरत रही है –

"ब्याहु ब्याहु बोधा सुकवि करी निहायत खूब।
बरद बंदि दी आसिका बेदरदी महबूब।"[3]

7. **धिक्कार** :– बोधा, सुभान से प्रेम करते हैं, निरन्तर उसकी हित कामना करते हैं, लेकिन प्रेयसी द्वारा बेवफाई दिखाने पर खीझ उठते हैं, उनकी यह खीझ धिक्कार का रूप ले लेती है –

"तुम और को आदर का करिहौ नि पातन सों हियरा न हिलौ।
पुनि नाहिन छाँह दिगंबर सो फल स्वादबिहीन न जात गिलौ।
इत जानतो तोहि तौ आवतो ना हिय जानि इहाँ टुक एक झिलौ।
मति होते करील मथौं हीं पर्‌यौ या चमेली नवेली के धोखें मिलौ।"[4]

---

1. इश्कनामा – 6/31
2. इश्कनामा – 10/54
3. विरहवारीश – 35/4
4. इश्कनामा – 18/104

8. <u>दूत द्वारा सन्देश</u> :- बोधा ने रीति परिपाटी का अनुसरण करते हुए दूत द्वारा संदेश के कई दृश्यों को दक्षता पूर्वक प्रस्तुत किया है, ये दूत कहीं बादल हैं तो कहीं पवन और कहीं शुक। विरहआधिक्य जब सहन नहीं होता तो बादल को दूत बना कर लीलावती संदेश भेजती है साथ ही उनसे यह जानने का प्रयास करती है कि मेरे प्रीतम कब तक आयेंगे, क्योंकि तुम तो सभी दिशाओं को आच्छादित किये रहते हो, मेरे विरह संदेशों को मेरे प्रियतम तक शीघ्र पहुँचाओ क्योंकि तुम परमार्थ करने वाले, जीवन देने वाले हो –

"सजल सरूप परमारथ सनेही बार,
वेगि बलवान आयो गैन चढ़ि धाय है।
हौं तो परपीरक बिसेष तोहिं जान्यौ करि,
बृष्टि कै कै छाया म्हारी तपन बुझायहै।
उत्तर सुनाऊँ आयो उत्तर दिसा तें जो पे,
कौन देस कौन गाँव बसती बतायहै।
मौन मत होय एरे मेघा हे हमारे बीर,
साँची कहु बालम बिदेसी कब आयहै।"[1]

माधव प्रेयसी के बिरह में भस्मीभूत होता अनुभूत करता है, अपना विरह बादलों को सुनाता है और बादलों से निवेदन करता है कि तुम इच्छाधारी हो अतः मेरे संदेश को प्रियतमा तक अवश्य पहुँचा दो –

"हो पयोद बिरहिनि दुखदायक। मेरो दरद सुनो तुम नायक।
पुहुपावती पुरी मम प्यारी। नवजौबन बाला सुकुमारी।
हरिनाक्षी गजगामिनि गोरी। ससिवदनी सुंदर मतिभोरी।
यह संदेस प्रिय लौं पहुँचावौ। मेरे दिल का दरद मिटावौ।
जौ तुम कहौ दास नहिं तेरे। ये ही गुन उपकारिन केरे।

---

1. विरहवारीश – 209/80

जौ तुम कहौ मनुज हम नाहीं। सो प्रभु इच्छारूपी माहीं।
जौ तुम कहौ वचन नहिं मोहीं। तौ गरजन यह कैसे हो हीं।"[1]

जब किसी दूत से काम नहीं चला तो पीड़ा से ही निवेदन किया गया कि वह अधिक कष्ट न दे –

"सुन हे प्रबीन पीर कौन पै जनैयै जौ पै, देखत ना निकट सलोनी नोनी धन कों।
ध्यान के धरत ही धड़ाको ऐसो लागो बिना, प्यारी के सँजोग समझाऊँ कैसे मन कों।
बोधा कबि भवन में कैसे हूँ रहयो न जाय, बिरहदवागि ते न जायो जाय बन कों।
सरद निसा में चंद निसिचर ऐसो ताकी, चाँदनी चुरैल सो चबाए लेत तन को।"[2]

9. <u>काम जन्य वेदना</u> :– संयोग के समय जो ऋतुयें सुखदायक थीं आनन्ददायक थीं, उत्साहसम्बर्धक थी बियोग की स्थिति में विषम कार्य करने लगीं। बसन्त ऋतु में सारी प्रकृति धानी चुनरिया पहन कर मन को हर्षित करती है। यही सुखदायक ऋतु पीड़ाकारक बनी हुई है। प्रचंड कामग्नि शरीर को जलाये दे रही है –

"मारन मंत्र पढ़ै भ्रमरा जनु आवत है बिरहीन कँपाते।
कूकि उठी कल कोयलिया मनो या ऋतुराज के बान ससाते।
बोधा नये नये पत्रन ये लखि चैत चमू की ध्वजा फहराते।
भूले हुलास बिलास सबै जब फूले पलास लखे चहुँघा ते।"[3]

"बाँध हैं सुभट अमलन के ये माथे मौर,
भ्रमरसमूह मिलि मारू राग गायो रे।
कोकिल नकीब नये पत्रन पताक तंबू,
चंद्रिका निहारि क्षितिमंडल में छायो रे।

---

1. विरहवारीश – 82/12,18
2. विरहवारीश – 88/19
3. विरहवारीश – 135/32

बोधा कवि पवन दमामो दीह घहरात,

सुमन सुगंध सोई जस बगरायो रे।

बिरहीसमाज बंधिबे के काज लाज त्यागि,

साजि ऋतुराज रतिराज पठवायो रे।"[1]

10. <u>आत्मदोष</u> :– माधव भले ही निष्ठुर हो, लेकिन कन्दला के लिए वह प्रशंसनीय है, संयोग तो हो जाता, लेकिन भाग्य की विडम्बना कि विरह की स्थिति आ गयी, सम्भव भाग्य में ऐसा लिखा था, या ईश्वर इस गति को देना चाहते थे –

"बिरही जन की पीर कों अब जग जानै कौन।

अवधनाथ जानत हते तिन सो साधो मौन।।

तिन सो साधो, मौन जिन्हें बिछुरी ती सीता।

अब कहिये कित जाय कठिन बिछुरन को गीता।

बहुत भूत किहि हेत सुनत निजु दुख नहिं थिरही।

या कलि में करतार करै काहू जिन बिरही।"[2]

11. <u>दैन्य भाव</u> :– बोधा ने रूप गर्विता 'सुभान' से कई बार प्रार्थना की अभिमान को छोड़ वे सच्चे प्रेमी से गले मिलें। गले लगने के लिए वे कुछ भी करने के लिए तैयार हैं, वे तो यहाँ तक कहते हैं, यदि सुभान नहीं मिली तो प्राण प्रस्थानित हो जायेंगे –

"द्वार में प्यारो खरो कब को लखती हियरा सों लगाइ न लीजै।

तू तौ सयानी अनोखी करी अब फेरि कै ऐसी न चित्त धरीजै।

बोधा सोहाग औ सोभा सबै उड़ि जैबे के पंथ पै पॉउ न दीजै।

मानि लै मेरी कही तैं लली अहे नाह के नेह मथाह न कीजै।"[3]

---

1. विरहवारीश – 135/33
2. विरहवारीश – 145/56
3. इश्कनामा – 19/113

लीलावती कोयल से प्रार्थना करती है कि मेरे ऊपर दया करके मीठी तान मत छेड़ो नहीं तो मेरे शरीर में आग लग जायेगी –

"कोकिल या तो कुठार सो बान लगे पर कौन को धीरज रैहै।
याते मैं तोसों करों बिनती कबि बोधा तुहीं फिरिकें पछितैहै।
स्वारथ औ परमारथ को फल तेरे कछू सुन हाथ न ऐहे।
ठौर कुठौर वियोगिन के कहूँ दूबरी देहन में लगि जैहै।"[1]

वह चातक से प्रार्थना करती है कि उसके विरह को दूर करे उसको कष्ट न दे –

"प्यारो हमारो प्रबासी भयो तब सों सहिये बिरहानलतापन।
एते पै पावस की जो निसा हियरा हहरै सुनि केकीकलापन।
चातक याते करौं बिनती बिन काम क्षमो अपनी या अलापन।
तें अपने पिय कों सुमिरे पै मरें हम तेरी जुवान के दापन।"[2]

कोयल, बसन्त का सम्बल पाकर और अधिक कष्ट देती है। बोधा ने प्रार्थना की है कि वे कष्ट देना बन्द कर दें --

"बैठि रसालन के बन में अधराति कहूँ रन सो ललकारति।
नाहक बैर परी बिरहीन के कूक वियोग के लूकन जारति।
बोधा अनेक कियो बिनती रति कौ न कहूँ करूना उर धारति।
बाल मरै मधुमास छकी यह बन्वैलिया पापिनि पीसेई डारति।"[3]

<u>बोधा के विरह में फारसी का प्रभाव</u> :– बोधा ने राज्य से निष्कासित होने पर दर दर की खाक छानी परिणामस्वरूप उनके विरह में 'फारसी' का प्रभाव आ गया –

---

1. विरहवारीश – 214/38
2. विरहवारीश – 208/70
3. इश्कनामा – 7/37

"महिरम जान मालहम बेचो नेह नफा ठहराई।
सो आसिक को देन न भावै मजा न दिल की पाई।
फिरै माल कीमति घटि जावै त्यागै कथा रहाई।
कठिन पीर कहिबे की नाहीं सहिबे ही बनि आई।
कसक लगी जाके हिय में ताही हिय में कसकी री।
सहर तमासा देखत सबहीं तिनकी होत हँसी री।
प्रसुतपीर बंध्या का जानै झलकन पहिरी पीरी।
दिल जानै कै दिलवर जानै दिल की दरद लगी री।"[1]

विरह का आध्यात्मिक पक्ष

बोधा के विरह की विशेशता यह है कि वे लौकिक संसार से पारलौकिक सत्ता तक पहुँचे हैं –

"तिहारी दीद हम पावें। दिलंदर दर्द बिसरावें।
उन्हों का रूप नीमाना। भयो दिल देख दीवाना।"[2]

"निमिष में वरष में चौकड़ी मन्वंतर में,
कल्प में प्रलै में जब आवेगी जिसी गली।
संधि पाय सबकौं चवाय लैहै बोधा कवि,
जनमैबो पारन सँहारन वही छली।
तीनों लोक तीनों गुन पाँचो तत्व सृष्टिवान,
काहु कों न छोड़िहै अदृष्ट सब तम बली।
त्रिगुनी बचै न ओर जीव की कहानी कौन,
देबीहू कों मारी तौ पुजेरी की कहा चली।"[3]

---

1. इश्कनामा – 15/89–90
2. विरहवारीश – 94/33
3. विरहवारीश – 174/36

विरह वर्णन में साम्य

घनानंद और बोधा के विरह का अनुशीलन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि विरह ही वह धारा हे जिसमें समान रूप से एक ही विचार को लेकर दोनों महाकवि साहित्योदधि में उतरे। घनानन्द ने सुजान से प्रेम किया, राज्यनिष्कासित हुए तो यही घटना बोधा के साथ भी घटी। दोनों अपनी-अपनी प्रेयसियों के विरहानल में जले।

घनानन्द ने पूर्वराग में सारा दोष अपने नेत्रों को दिया है, ये नेत्र सुजान को न देखते न प्रेम होता और न विरह सहन करना पड़ता। बोधा का पूर्वराग ऐसा ही है, उन्होंने माधव-कन्दला की कथा में माधव की वीणा बजाने की कला को पूर्वराग में रखा है।

मान के अर्न्तगत कई जगह घनानन्द ने दिखाया है कि उनके मुँह से अन्य किसी रूप सुन्दरी की प्रशंसा हो गयी, परिणामस्वरूप सुजान का मान प्रारम्भ हो गया। कन्दला, माननीय स्त्री है, बोधा ने सहज मान का चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रेमी, प्रिया से बिछड़ गया, परिणाम स्वरूप प्रवास की दारूण स्थिति सहन करनी पड़ी, ऐसा चित्रण घनानन्द और बोधा दोनो ने ही प्रस्तुत किया है। कन्दला और लीलावती दोनों को ही माधव के कारण प्रचण्डतम प्रवास के दुःख को भोगना पड़ा।

प्राण इस आशा में शरीर को नहीं छोड़ पा रहे कि पता नहीं किस घड़ी प्रीतम के दर्शन हो जायें 'बिना प्रान प्यारे दरस तिहारी हाय, मरहू पै आँखी खुली कि खुली रह जायेंगी। इस भावना को दोनों कवियों ने प्रस्तुत किया है। घनानन्द ने प्रत्यक्ष रूप से तो बोधा ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही रूपों में। जहाँ तक वियोग की दस अन्तर्दशाओं का प्रश्न है, घनानन्द और बोधा ने छोटी से छोटी अन्तर्दशा

का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। घनानन्द के अनेक छन्दों में यह अभिलाषा मुखरित हुई है कि ऐन केन प्रकारेण प्रेयसी के दर्शन हो जायें, यही कामना बोधा के मन में है तो 'विरहवारीश' के पात्र लीलावती कन्दला एवं माधव में यही अभिलाषा है।

प्रेमी, प्रेयसी को सर्व समर्पण किये है, लेकिन प्रेयसी की उदासीनता उसे चिन्ता में डाल देती है, चिन्ता अन्तर्दशा का स्वाभाविक चित्रण घनानंद ने प्रस्तुत किया तो लीलावती, कन्दला, माधव की बेरूखी से अत्यन्त चिन्तित रहती हैं। बोधा ने चिन्ता का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है।

संयोग अवस्था की मादक अनुभूति ही वियोग अवस्था में स्मृति बन जाती है। हृदय को अतीत की स्मृतियों में जितना बहलाया जाता है, स्मृति भी सजग होकर प्रेमी के हृदय को जलाती है, इस दशा का बड़ा ही हृदयद्रावक चित्रण घनानंद ने प्रस्तुत किया तो बोधा ने सुभान स्मृति के साथ ही साथ माधव की स्मृति के दृश्य प्रस्तुत किये हैं।

प्रेमी या प्रेयसी के रूप, गुण, हाव, भाव, स्वभाव, में जो बातें विद्यमान थीं, विरह अवस्था में वे गुण कथन का रूप ले लेती हैं। घनानंद ने सुजान के हर गुण की प्रशंसा की तो बोधा ने सुभान की, माधव ने लीलावती काम कन्दला की एवं कन्दला लीलावती ने माधव की।

चित्त वृत्ति अस्थिरता ही उद्वेग को जन्म देती है, परिणामस्वरूप मन भ्रमित हो जाता है, प्रेमी को प्रियतमा की और प्रियतमा को प्रेमी की सत्ता ही सर्वत्र दिखाई देती है, इस उद्वेग मानसिक क्रिया–व्यापार का सहज चित्रण घनानंद बोधा ने प्रस्तुत किया।

विरह का आधिक्य होने के कारण विरही अनर्गल प्रलाप करने लगता है, सुजान के विरह में घनानंद की यही स्थिति है। माधव के विरह में लीलावती और कन्दला निरन्तर प्रलाप करती हैं, कई बार तो दोनों दीवालों से बात करती दिखाई गयी हैं।

'उन्माद' की अवस्था विकट अवस्था होती है घनानंद, सुजान, सुजान कह कर रोते और हंसते हैं, लोग उन्हें प्रेत ग्रस्त समझ लेते हैं, माधव के विरह से उन्मादित कन्दला एक पैर में महावर लगाये है, एक आँख में काजल लगाये हुए रोती और चीखती है।

विरह की पीड़ा के कारण विरही का शरीर जर्जर हो जाता है। मुख की कान्ति गायब हो जाती है। नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित शरीर असहाय हो जाता है। सुजान के विरह से पीड़ित घनानंद का शरीर अब जवाब देने लगा है तो माधव के विरह में लीलावती और कन्दला दोनों ही सूख कर कंकाल मात्र रह गयी हैं।

विरह की अधिकता होने से चेतन अचेतन मन एक साथ काम करने लगते हैं तो जड़ता की स्थिति आ जाती है। घनानंद को सुजान के दर्शन के अतिरिक्त साँस लेना भी अच्छा नहीं लगता तो लीलावती और कन्दला, माधव के विरह से जड़ हो गयी हें उनकी स्मृति पंगु हो गयी है।

प्रेमी जब चारों तरफ से हताश, निराश हो जाता है तो उसे अपने शरीर का मोह नहीं रह जाता और वह मृत्यु की कामना करने लगता है, घनानंद के प्राण संसार से प्रस्थानित तो होना चाहते हैं लेकिन सुजान का संदेशा लेकर।

मरण दशा का बहुत ही स्वाभाविक चित्रण बोधा ने प्रस्तुत किया है; कन्दला, माधव के विरह को सहन नहीं कर पाती और उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। ऐसा सन्देशा जब माधव सुनता है वह भी अपने प्राणों को त्यागन कर देता हैं, इस तरह से घनानंद बोधा में विरह की अन्तंर्दशा को लेकर एकरूपता है, विचार साम्य है जहाँ तक विरह वर्णन की विशेषता का प्रश्न है दोनों ही कवि एक ही भाव को लेकर चले हैं।

घनानंद के विरह में आत्मदशा का प्रधान रूप, दृष्टिगत होता है; घनानंद ने तरह-तरह से अपने मर्म की पीड़ा का उद्घाटन किया है तो बोधा ने प्रत्यक्ष अपनी दशा का, परोक्ष माधव की कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

सुजान को देखे बिना घनानंद की आँखों को आराम नहीं, वे खुली हों या बन्द, दोनों स्थितियों मे उन्हें पीड़ा मिलती है, बोधा ने अपनी आँखों को समझाया है कि आँखें सुभान को याद करना बन्द कर दें।

घनानंद को सुजान की स्मृति से क्षणिक सुख मिल जाता था लेकिन यह क्षणिक सुख धीरे-धीरे उद्वेग को जन्म देने लगा, अतः स्थिति कष्टसाध्य हो गयी, लीलावती को माधव का सम्मोहक रूप बार-बार याद आता था, अब यह स्मृति हृदय और मन को शालने लगी।

विरह की व्यथा और कथा को जाग्रत, उद्दीप्त एवं प्रदीप्त करने में प्रकृति और ऋतु का बहुत बड़ा हाथ रहता है; घनानंद ने वियोग के कारक तत्वों का सहज रूप प्रस्तुत किया है। बोधा की नायिकाओं – लीलावती और कन्दला के ऊपर प्रकृति का हर महीने जो प्रभाव पड़ा वह बारहमासा के रूप में सहृदय पाठकों को समर्पित किया गया।

घनानंद सुजान के एक नैष्ठिक प्रेमी हैं वे कहते हैं कि उसके अलावा इस संसार में उनका कोई नहीं है इसी बात को बोधा ने भी दृढ़ता के साथ दर्शायी है।

घनानंद का उपालम्भ भी कितना सरल है कि निश्छलता वश वह पूंछ बैठते हैं कि तुमने मेरा मन तो ले लिया लेकिन अपने दर्शनलाभ से मुझे वंचित किये हो ऐसी चालाकी का पाठ तुमने कहाँ पढ़ा है? बोधा, सुभान से सुकुमार भावनाओं से युक्त उपालम्भ प्रस्तुत करते हैं।

प्रेम करते-करते प्रेमी जब थक जाता है तो उसका सारा प्रेम खीझ में बदल जाता है न चाहते हुए भी उसे अपने प्रेयसी की निन्दा करनी पड़ती है

घनानंद और बोधा दोनों कवियों ने अपनी प्रेयसियों को कई जगह धिक्कारा भी है।

घनानंद ने पवन को दूत बनाकर प्रिया के पास भेजा है कि वह प्रिया की चरण रज ले आये, बोधा की नायिकाओं ने बादल, पवन को दूत बनाकर भेजा है कि वे माधव की खोज खबर कर उनके पास पहुँचने का संदेश दें।

विरही व्यक्ति को चाँदनी भी अनंगदाह बन जाती है, वह अंग प्रत्यंग को जलाती है, काम जन्य दाहक वेदना का सुन्दर चित्रण दोनों कवियों ने प्रस्तुत किया है।

सुजान तो घनानंद को मिल गयी थी लेकिन ईश्वर ने उनके साथ अन्याय किया कि सारा सौभाग्य दुर्भाग्य में परिवर्तित हो गया और उन्हें विरह का सामना करना पड़ा। कन्दला भी इसी भावना को स्वीकार करती है। घनानंद ने सुजान के गुणों का गायन कर अपनी दैन्यता प्रस्तुत की है कि वह आकर विरह संताप को दूर करे। बोधा ने स्वयं अपना दैन्य भाव सुभान के प्रति प्रस्तुत किया है, साथ ही उनकी नयिकाएं भी इसी भावना से ओत-प्रोत हैं। जहाँ तक घनानंद और बोधा के विरह में फारसी प्रभाव का प्रश्न है, दोनों ने आहे सर्दो, रंग जर्दो, चश्मेतर, इन्तजारी, बेकरारी, बेसबरी, कम खुर्दनी, कम गुफ्तगो, नींद हराम, जैसे भावों को अपने विरह में स्वीकार किया। घनानंद और बोधा दोनों ही लौकिक विरह से पारलौकिक सत्ता तक जुड़ गये। एक रूपता एकरसता का भाव दोनों ही कवियों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

विरह वर्णन में वैषम्य

जहाँ तक घनानंद और बोधा के विरह में वैषम्य विचारधारा का प्रश्न है, ऊपरी भावनाओं पर तो वे एक दिखाई देते हैं लेकिन गहन आलोड़न, विलोड़न, करने पर दोनों की विरह भावनाओं में पर्याप्त वैषम्य भाव परिलक्षित होता है।

बोधा ने विरह में सिद्धांत पक्ष की स्थापना की है कि अभिलाषा या गुण कथन किसे कहा जायेगा विरह की सभी अन्तर्दशाओं के लक्षण और उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किये हैं; जबकि घनानंद ने किसी प्रकार का लक्षण नहीं लिखा।

पूर्वराग के अन्तर्गत बोधा और घनानंद में पर्याप्त वैषम्य है, पूर्वराग का जितना स्वाभाविक चित्रण घनानंद ने किया, बोधा नहीं कर सके।

मान में यह कहा जा सकता है कि घनानंद के जीवन में संयोग का अल्प अवसर आया अतः वह किसी तरह से अपनी प्रिया को रूष्ट नहीं करना चाहते थे, जहाँ तक व्यक्तिगत बोधा के विरह का प्रश्न है वे कुछ ही समय तक सुभान से अलग रहे अतः इस भावना को ज्यादा स्वाभाविकता नहीं दे पाये।

प्रवास में राज्य निष्कासित होने पर घनानंद, सुजान से जीवन भर के लिए बिछड़ गये अतः वे रोते–कलपते रहे और यही रोना कलपना उनको पारलौकिकता से जोड़ गया जबकि बोधा को मात्र छः महीने का देश निकाला मिला अतः प्रवास की भावना को करूणा का आवरण नहीं दे पाये।

घनानंद ने 'चाहत चलन ये संदेसो लै सुजान कौ' लिख कर करूण का श्रेष्ठ वर्णन प्रस्तुत किया है, बोधा इस तरह की गहनतम भाव भूमि को नहीं स्थापित कर सके।

विरह की अन्तर्दशाओं में पर्याप्त वैषम्य परिलक्षित होता है; घनानंद ने अन्तर्दशाओं का चित्रण करने में प्रयासित पद्य रचना नहीं की लेकिन बोधा को इन अन्तर्दशाओं में मानस मंथन करना पड़ा।

अभिलाषा की पूर्ति न होने पर सुजान का लौकिक विरह अन्त में कृष्ण प्रेम में परिवर्तित हो गया, बोधा के जीवन में मात्र छ. मास का ही विरह रहा, अन्त में सुभान के साथ वह रहने लगे, कथानक के पात्र माधव, लीलावती

एवं कन्दला की अभिलाषा भी अन्त में पूरी हो जाती है, यही मूल अन्तर घनानंद बोधा में है।

स्मृति, में हृदय की अतीत स्मृतियों को सहज रूप प्रस्तुत किया है घनानंद ने, क्योंकि उनके पास स्मृति के अलावा कोई धरोहर थी भी नहीं जबकि माधव, कन्दला, लीलावती, की स्मृति मनोदशा में वह गहराई आ ही नहीं पाई।

'उद्वेग' और 'प्रलाप' का सहज, दृश्यात्मक रूप स्थापित करने में घनानंद को महारत हासिल हुई, पाठक को उस भाव भूमि तक वे सरलता से ले गये जो उन्होंने भोगा था, अनुभव किया था, बोधा के उद्वेग, प्रलाप भाव में कई जगह कृत्रिमता दिखाई देती है, पाठक सहजता न होने कारण रसानुभूति नहीं प्राप्त कर पाता।

घनानंद मरण दशा में कारुणिकता नहीं उत्पन्न कर पाये, बोधा ने स्वयं और कथा दोनों में मरण दशा का स्वाभाविक रूप प्रस्तुत किया है।

कन्दला के मरते हीं माधव के प्राण–पखेरू उड़ जाना, पाठकों को अनुभूति का चरम रूप प्रदान करता है।

घनानंद और बोधा के विरह वर्णन की विशेषताओं में पर्याप्त वैषम्य है, घनानंद ने आत्मदशा की अभिव्यक्ति के असंख्य छन्द लिखे ऐसी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की जो बोधा क्या रीतिकाल का कोई भी कवि नहीं प्रस्तुत कर सका।

प्रेम वैषम्य में घनानंद दक्षता हासिल किये हैं, प्रेम निर्वाहण में वे प्राण–पण से प्रस्तुत हैं जबकि उनकी प्रेयसी सुजना लापरवाह है ऐसे विरोध के पदों की संख्या बहुतायत है, जबकि बोधा प्रेम वैषम्य में अपनी लेखनी नहीं चला सके।

ऋतु और प्रकृति विरह की व्यथा को बढ़ा देती है। घनानंद ने ऐसे उद्दीपक रूप को प्रस्तुत किया लेकिन बोधा ने रीतिबद्ध कवियों की भांति सुन्दर

'बारहमासा' प्रस्तुत किया जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। प्रकृति का इतना सुन्दर प्रभाव विरही लोगों पर दिखाया है कि वह स्तुत्य है, घनानंद ऐसा करने में अक्षम रहे हैं। घनानंद का हृदय जब विदीर्ण हो गया तो उन्होंने कई जगह सुजान के विश्वासघात की निष्ठुरता को चित्रित किया है, बोधा ऐसी कोई विशेषता अपने साहित्य में प्रस्तुत नहीं कर सके।

कामजन्य दाहक वेदना के अन्तर्गत घनानंद और बोधा दोनों ने लेखनी चलायी। घनानंद ने चाँदनी को, शरीर को भस्म कर देने की क्षमता वाला बताया, बोधा ने चन्द्रिका की शीतल किरणों को चुड़ैल कहा। जिस तरह चुड़ैल एकान्त पाकर मानव की एक–एक हड्डी चबाती है मानव को मरणान्तक पीड़ा पहुँचाती है ऐसी भावना उकेरने में बोधा सफल हुए, घनानंद इस तरह के भावपूर्ण दृश्य नहीं दे सके।

घनानंद और बोधा दोनों के विरह में फारसी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। घनानंद ने आहे सर्दो, रंग जर्दो, चश्मेतर, इन्तजारी, बेकरारी, बेसब्री, कम खुर्दनी, नींद हराम, जैसी भावनओं के अतिरिक्त रक्त बहना नसों का सूख जाना, आरे का सिर पर चलना, छाती फटना आदि भाव व्यंजित किये हैं, जिससे कि उनके काव्य में हल्कापन आ गया है, कहीं–कहीं तो वीभत्स भाव उत्पन्न हो गया है, जबकि बोधा ने इस तरह के वीभत्स भावों को अपने साहित्य में स्थान नहीं दिया, मात्र प्रारम्भिक अवस्थाओं को ही चित्रित किया है।

घनानंद के विरह का एक आध्यात्मिक पक्ष भी है। सुजान रटते रटते वे कृष्ण भक्ति से जुड़े, राधा और कृष्ण की भक्ति ने उनके जीवन को नया मोड़ दिया, फिर उन्होंने सुजान की तरफ मुड़कर देखा भी नहीं; काव्य में आध्यात्मिक विरह का इतना सुन्दर चित्रण कम ही कवि दे पाये हैं वे वेदना में जीते रहना चाहते हैं, मरना नहीं यही उनकी भक्ति है; जबकि

बोधा ने दो जगह अपने विरह को आध्यात्मिक जामा पहनाने का प्रयास किया, लेकिन वे वहाँ भी सफल नहीं हो सके।

मैं निष्कर्षतः कह सकती हूँ कि विरह वर्णन में घनानन्द श्रेष्ठ हैं बोधा तो उनके अनुधावक मात्र हैं, हाँ, ऋतु चित्रण में, 'बारहमासा' वर्णन में सूक्ष्म क्रिया व्यापारों का, मानवीय परिवर्तनों का सुन्दर दृश्यात्मक रूप बोधा ने प्रस्तुत किया जो घनानंद नहीं कर सके।

षष्ठ – अध्याय

समीक्ष्य काव्य में प्रेमाभिव्यंजना

: घनांनद के काव्य में प्रेमाभिव्यंजना :

कविता का जनक प्रेम है, चाहे प्रकृति के प्रति प्रेम हो, या नारी के प्रति अथवा ईश्वर से। घनानंद की कविता बहुआयामी विस्तार लिए हुए है, मूलतः उसको दो रूपों में देखा जा सकता है – एक सुजान से प्रेम दूसरा कृष्ण प्रेम। सुजान के रूप सौन्दर्य, अंगदीप्ति, यौवनान्माद का चित्रण अनेक छन्दों में अभिव्यक्त किया, यह उनका लौकिक प्रेम था। उस अप्रितम सौन्दर्य के प्रति आसक्ति थी, इसी कारण मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार से अपमानित होना पड़ा। भावुक प्रेमी इस बात से सुनिश्चित था कि सुजान साथ है तो किस बात की चिन्ता, लेकिन सुजान ने अपना धर्म निभाया, कवि के भावुक हृदय को ठेस लगी, मर्माहत कवि वृन्दावन जा पहुॅंचा; सुजान की याद वहॉं भी व्यथित किये रही। लौकिक प्रेम तथा वासना धीरे–धीरे कृष्ण प्रेम में परिणित हो गयी, लौकिक के स्थान पर वह अलौकिक प्रेम में परिणित हो गयी, लौकिक के स्थान पर वह अलौकिक प्रेम बन गया – कवि का यह दूसरा प्रेम था। इस सम्बन्ध में डॉ0 कृष्ण चन्द्र वर्मा का मन्तव्य है कि, "घनआनंद की समस्त काव्य राशि में दो प्रकार की भावनाएं देखी जा सकती हैं – प्रेम और भक्ति। प्रेम अपनी प्रेमिका सुजान के प्रति, भक्ति अपने आराध्य श्री कृष्ण के प्रति। रस शास्त्र की भाषा में हम चाहें तो कह सकते हैं कि घनआनंद की प्रेम–भावना के दो आलंबन थे – एक सुजान और दूसरे श्रीकृष्ण। एक लौकिक आलम्बन था, दूसरा अलौकिक। घनआनंद मूलतः लौकिक प्रेम – पात्र के रसिक थे इसी से हृदयगत प्रेम की जो लहर उनकी कविता में है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। अपनी लौकिक प्रेयसी, मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार की नर्तकी, सुजान नामी वेश्या के प्रति घन आनंद ने जो प्रणय निवेदन किया है, वह हिन्दी काव्य की स्थायी सम्पदा है। वैसा आत्म निवेदन, वैसी पीड़ा, वैसी विरहानुभूति, वैसी आत्माभिव्यंजना वाला काव्य मध्ययुग में लिखा ही

नहीं गया। इतना ही नहीं, समूचे हिन्दी काव्य में सहस्राधिक वर्षों के इतिहास में भी ऐसा प्रेम छाया का चितेरा दूसरा न मिलेगा। आत्म पीड़ा का ही दूसरा नाम घनआनंद का काव्य है।"[1]

हिन्दी साहित्य की काव्य परम्परा में घनआनंद जैसा प्रेमी कवि शायद ही दूसरा मिले। कुछ आलोचकों ने जायसी, मीरा एवं सूर में ऐसी अनुभूति के दर्शन किये हैं, लेकिन भावुक कवि घनानंद जैसी वेदना, तड़प, शायद ही किसी कवि में प्राप्त हो। प्रेम की सर्वोव्कृष्टता इसी से सिद्ध हो जाती है कि अपनी प्राण–प्रिया को श्री कृष्ण का नाम दे दिया, भक्ति भी की तो अपनी प्रेयसी की; मात्र आलम्बन बदल दिया।

"कृष्ण भक्ति को अपना कर भी घनआनंद की भावना में प्रेम की मधुर वृत्ति ही प्रधान रही, श्रद्धा–भाव–समन्वित पूज्य भावना कम। इसी से घनआनंद की भक्ति कॉंता भाव की भक्ति या मधुरा भक्ति ही कही जायेगी। इस प्रेम लक्षणा भक्ति के अनुधावन से उनके भक्ति काव्य में भी सुजान के प्रेम की झलक मिलती या आती रही। उनका 'सुजान' शब्द कृष्ण वाची भी है। इस प्रकार उनके सुजान प्रेम के काव्य में कृष्ण प्रेम की भावना और कृष्ण–प्रेम–परक काव्य में सुजान प्रेम की प्रतीति होती चलती है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि वर्ण्य विषय की दृष्टि से उनके काव्य के दो स्पष्ट विभाग हो जाते हैं – एक सुजान प्रेम का (लौकिक प्रेम का) काव्य, दूसरे कृष्ण भक्ति की कविता। सुजान प्रेम का काव्य, कृष्ण प्रेम के काव्य से परिमाण में बहुत कम है। उनके समस्त काव्य–साहित्य का चतुर्थांश या उससे भी कुछ कम अंश सुजान प्रेम से सम्बन्धित है, शेष तीन चौथाई अंश कृष्ण प्रेम और कृष्ण–भक्ति की भावना से ओत–प्रोत है। 'सुजान हित' मूलतः उनके सुजान प्रेम का स्मारक है, यद्यपि इसका भी एक अंश कृष्ण प्रेम से संबद्ध है।"[2]

---

1. घनआनंद – पृ0 सं0 125
2. घनआनंद – पृ0 सं0 – 126

घनानंद की प्रेम विषयक दृष्टि :-

रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि घनानंद के प्रेम को जानने से पूर्व यदि हम ध्यान दें तो पायेंगे वह 'रीतिकाल' का युग था। साहित्य रीति की सीमाओं से आबद्ध था, रीति कालिक कवियों ने प्रेम के ऊपर खूब लेखनी चलायी, लेकिन वह प्रेम अन्तस् से नहीं उछला था, स्व की अनुभूति नहीं थी, मात्र राजाओं को प्रेम रंग में डुबोने के लिए ही प्रेम–काव्य का प्रणयन हुआ, वास्तव में वह प्रेम उधार का था। जब भाव ही उधार के होंगे तो भाव ग्रह्यता कितनी होगी, समझ लेना आसान है। रीतिबद्ध कवियों ने विरह में आँसू तक उधार लिये थे, इसीकारण घनानंद के सामने वे प्रभावहीन हो गये। इसका कारण यह घनानंद ने उस प्रेम को स्वयं ही भोगा था, प्रेम की अनुभूति उनकी स्वयं की थी, वह प्रेम में इस कदर डूब गया कि उसे अपनी ही सुध–बुध नहीं रही, वह संयोग की अवस्था में ही वियोग की आशंका से व्यथित हो उठता है, इसी कारण घनानंद को 'रीति' की परिपाटी, मार्ग, परम्परा नियम, बन्धन का ध्यान ही नहीं रहा।

प्रेम का मार्ग, अत्यन्त सीधा मार्ग है, इसमें छल–प्रपंच का काम नहीं, इस प्रेम मार्ग में चलने के लिए आत्मोसर्ग करना पड़ता है –

> "अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
> तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ झझकें कपटी जे निसाँक नहीं।
> घनआँनद प्यारे सुजान सुनौ इत एक ते दूसरो आँक नहीं।
> तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।"[1]

घनानंद के काव्य का गहन विवेचन करने से पता चलता है कि प्रेम सम्बन्धी छन्द उनकी कविता में सयास ही आ गये हैं, इसके लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ी।

---

1. सुजान हित – 267

एक बात ओर स्पष्ट होती है कि विधिवत प्रेम तत्व का आख्यान विवेचन करने की किसी कृति में नहीं उपलब्ध होता है, जिस प्रकार 'रसखान' ने प्रेम को स्पष्ट करने के लिए 'प्रेमवाटिका' की रचना की, घनानंद की कृति 'प्रेम पद्धति' कृति इस दृष्टि से धोखे में डालने वाली है, पाठकों को शीर्षक पढ़कर ऐसा प्रतीत होगा कि इस कृति में प्रेम सम्बन्धी कवित्त मिलेंगे, जबकि ऐसा कुछ नहीं है। प्रेम सम्बन्धी कतिपय सैद्धान्तिक कथन घनानंद के 'सुजान हित' नामक सुजान प्रेम के काव्य में अनायास ही आ गये हैं। इस कृति में 507 कवित्त हैं, उसमें आठ-दस प्रेम तात्विक कथनों का आ जाना स्वाभाविक है। जिसका सार है कि संसार में जो प्रेम है, उसका मूल उत्स ने ही हरि और राधा में देखा जा सकता है। संसार में सच्चा प्रेमी दुर्लभ है, यदि सच्चा स्नेही हो भी तो उसका जीवन भीषण संकटों से आपन्न हुआ करता है –

"प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै विचार,
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यो कन,
पूरी लोकलोकनि उमंजि उफनायौ है।
सोई घनआनंद सुजान लागि हेत हेत,
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।
ताहि एक रस है बिबस अवगाहें दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हें हेर सरसायौ है।"[1]

प्रेम रहित व्यक्ति का संसर्ग नहीं करना चाहिए, क्योकि वह संसर्ग के योग्य होता ही नहीं है, वह दोष ही देखता है, गुण नहीं –

"मही-दूध सम गनै, हंस बग भेन न जानैं।
कोकिल-काक न ज्ञान, काँच-मनि एक प्रमान।
चन्दन-ढाक समान, राँग-रूपौ संग तो लैं।

---

1. सुजान हित – 116

बिन बिबेक गुन–दोष, मूढ़ कवि ब्यौरि न बोलैं।

प्रेम–नेम, हित–चतुराइ, जे न बिचारत नेकु मन।

सपनेहूँ न बिलंलियै छिन तिन ढिग आनंदघन।।"[1]

उसका हृदय मलिन होता है, परन्तु प्रेमी ऐसे लोगों की परवाह नहीं किया करता, वह तो अपनी टेक पर डटा रहता है –

"कोऊ मुँह मोरौ जोरौ कोरिक चवाई क्यों न

तोरौ सब कोऊ करि सोरौ मेरे को सुनै।

नेह–रस–हीन दीन अंतर मलीन–लीन,

दोष ही मैं रहै गहै कोन भाँति वे गुनै।

रूप उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,

आँखिन के तारे–न्यारै केसें धों करों उनो

टरे नहि टेक एक यहै घनआनंद जो,

निंदक अनेक सीस खीसनि परै धुनै।"[2]

<u>प्रेम का महत्त्व</u> :– आचार्य शांडिल्य ने प्रेम की परिभाषा करते हुए लिखा है संयोग में भी वियोग सा बने रहने की वृत्ति को प्रेम कहते है। घनानंद की प्रेमानुभूति उक्त परिभाषा को पूर्णतः चरितार्थ करती है, क्योकि घनानन्द का प्रेम ऐसा है जिसके संयोग में भी वियोग व्याप्त है साथ ही घनानंद का प्रेम तत्त्व महान लगता है, उसके बिना सारा जीवन व्यर्थ है। भक्ति और प्रेम में सूक्ष्म अन्तर यह भी कि भक्ति में साधक और साध्य दो होते है जबकि प्रेम में प्रेयसी भले ही शारीरिक रूप से दो हों, परन्तु वे एक ही होते हैं। प्रेम एक निर्मल वृत्ति है, जिसे धारण करते ही वासना का लोप हो जाता है, प्रेमी के हृदय में ऐसी भवनाएं जन्म लेने लगती हैं–

चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,

मनसा हू ररै, एक देखिबे को रहै द्वै।

---

1. सुजान हित – 285
2. सुजान हित – 80

ज्ञान हूँ ते आगें जाकी पदवी परम ऊँची,

रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।

जान घनआनंद अनोखो यह प्रेम पंथ,

भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।

बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,

रसना कै छाले परै प्यारे नेह–नाँव छवै।"[1]

घनानंद ने अनेक प्रकार से प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया है, प्रेम–विहीन मनुष्य को सांसारिक बातों का ज्ञान रहता है, वह जय–पराजय, लाभ–हानि, यश–अपयश की चिन्ता में निमग्न रहता है। प्रेम का रोग लगते ही व्यक्ति सुध–बुध खो देता है, प्रियतमा के अतिरिक्त उसे किसी की चिन्ता नहीं रहती है–

खोय गई बुधि खोय गई सुधि, रोय हंसै उनमाद जग्यौ है।

मौन गहै, चकि चाकि रहे, चलि बात कहैं तें न दाग दग्यो है।

जानि परै नहिं जान! तुम्है लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।

सोचनि ही पचियै घनआनंद हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है।"[2]

प्रेम के महत्त्व को लेकर कवि दो विचारधाराओं में बहा है, एक सुजान से सम्बन्धित लौकिक प्रेम, दूसरा कवि विचार है कि इस संसार में यदि प्रेम है तो श्रीकृष्ण और राधा के पुण्य प्रताप के कारण, उन्हीं के प्रेम प्रकाश से विश्व में प्रकाशित है--

"रसिक रंगीले भले भोतिनि छबीले घन,

आनंद रसीले भरे महासुख–सार हैं।

कृपा–धन–धाम स्याम सुन्दर सुजान मोद,

मूरति सनेही बिना बूझे रिझवार हैं।

---

1. सुजान हित -- 296
2. सुजान हित – 178

चाह–अलबाल औ अचाह के कलपतरू,

कीरति–मयंक प्रेम–सागर अपार हैं।

नित हित–संगी, मनमोहन त्रिभंगी मेरे,

प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं।"[1]

<u>प्रेम का उद्भव</u> :– प्रेमी कवि के हृदय में प्रेम करा स्फुरण उस समय हुआ, जब प्रथम बार उसने सुजान के दर्शन किये । प्रथम दर्शन से ही सुजान उसके हृदय में समा गयी–

"जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सों धौं,

को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की।

धूम को न धरै, गात सीरो परै ज्यौं जयौं बरै,

ढरै नैन नीर बीर। हरै अति आह की।

जतन बुझे हैं सब जाकी झर अंगि अब,

कबहुँ न दबै भरी भभक उमाह की।

जब ते निहारे घनआनंद सुजान प्यारे,

तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की।"[2]

घनआनंद के हृदय, मन मस्तिष्क में सुजान ने अधिकार जमा लिया, सुजान से प्रेम होने के बाद जो कुछ लिखा गया, प्रेमी कवि होने के नाते लिखा गया। कवि का समस्त काव्य सुजान–प्रेम की कहानी बनकर रह गया। काव्य में कहीं सुजान के गौर वर्ण की चर्चा, कहीं तिरछी चितवन की, कहीं कजरारी ऑखों की। सुजान का सौन्दर्य रूपी सौन्दर्य समुद्र कवि के हृदय में निरन्तर हिचकोले लेता है। जब से उन्होंनें सुजान को देखा है, उसके अतिरिक्त किसी की भी चर्चा करना और सुनना पंसद नहीं करते–

"जब ते निहारे इन ऑखिन सुजान प्यारे,

तब तें गही है उर आन देखिबे की आन।

---

1. सुजान हित -- 427

रस-भीजे बेननि लुभाय कै रचे हैं तहीं,

मधु-मकरंद-सुधा नावै न सुनत कान।

प्रान प्यारी ज्यारी घनआनंद गुननि कथा,

रसना रसीली निसि बासर करत गान।

अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रंगे,

मन-सिंहासन पै विराजै तिन ही को ध्यान।"[1]

प्रेमी कवि को सुजान से इतना प्रेम था कि उस प्रेम की अभिव्यक्ति की ही नहीं जा सकती, सुजान, उनसें कितना प्रेम करती थी, यह भी नही कहा जा सकता। सुजान के निष्ठुर होने की चर्चा कवि ने कई छन्दो में व्यक्त की है, इस पर वे सुजान को नहीं अपने दुर्भाग्य को दोषी ठहराते हैं। सारा भाग्य का दोष है, इसी कारण इतनी गहन पीड़ा सहन कर रहे हैं--

"रावरे गुननि बाँधि हियो जान प्यारे,

इतै पै अचम्भो छोरि दीनी जु सुरति है।

उघरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाय,

क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है।

तुम हूँ ते न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,

ढीले हू परे तें गरें गाँठि सी घुरति है।

कैसे घनआनंद अदोषनि लगैये खोरि,

लेखनि लिलार की परंखनि मुरति है।"[2]

अपनी प्रेयसी की निन्दा कवि को सह्य नहीं है, वे अपने प्रेम को चातक तुल्य प्रेम बतलाते हैं। प्रियतमा सुजान मेघ के समान असीम आनन्द को देने वाली है, इसी कारण अहर्निशि उसी की ओर की ओर ताकता रहता है-

"चातकि लौं चाहें घनआनंद तिहारी ओर,

आठों जाम नाम लै, बिसारि दीनौं मौन ह्वै।"[3]

---

1. सुजान हित - 101
2. सुजान हित - 69
3.

घनानंद के हृदय में प्रेम का उद्‌भव और उसका अनोखा विकास हुआ। उनका प्रेम रीझ से उत्पन्न हुआ था, वे रीझ के हाथ बिना मोल बिक गये। इस रीझ ने निरन्तर प्रियतमा दर्शन की उत्कृष्ट लालसा को जन्म दे दिया, जब प्रेयसी से साक्षात्कार हुआ तो उसे जी भर कर देख भी न पाए थे कि आँखो से आँसुओं की झड़ी लग गई–

"मेरी मति बावरी ह्वै जाय जनराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय।
देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकै आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय–धाय।
विरह–विषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन–तावरेन ताय ताय।
ऐसे घनानंद बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय फिरौं हाय–हाय।"[1]

उसकी यह दुर्दशा मात्र रीझ के कारण ही हुई है, प्रेमी को स्वयं अपने ऊपर से ही विश्वास उठ गया है, सर्वत्र प्रेमी की दुहाई देता फिरता है. रीझ पटरानी बन गई है, और बुद्धि उसकी दासी–

"रूप–चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर–मवासी।
नैन मिलें उर के पुर पैठते लाज लुटी न छुटी तिनका सी।
प्रेम दुहाई फिरी घनानंद बाँधि लिए कुल–नेम गढासी।
रीझ सुजान सजी पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।"[2]

<u>प्रेम पंथ</u> :– समस्त रीतिमुक्त कवियों को प्रेम–मार्ग में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, रीतिबद्ध कवि इस जंजाल से मुक्त रहे। प्रेम का मार्ग का अत्यन्त सीधा है, सीधा इस दृष्टि से है कि उसमें ज्ञान और कर्म मार्गो के समान भीषण बौद्धिक श्रम और खटराग नहीं, वह हृदय का निश्छल व्यापार है,

---

1. सुजान हित – 125
2. सुजान हित – 48

सर्वात्म भाव से प्रिय को आत्मसमर्पण कर दो. प्रिय तुम्हारा हो जाएगा। इसमें अनन्यता पहली शर्त है, छल-छन्द के लिए प्रेम-पंथ नहीं है, निर्विकार भाव से पूरी निष्ठा के साथ अशेष रूप से बिना कुछ चाहे हुए अपने आप को अपने सर्वस्व को अर्पित कर देने का नाम ही प्रेम है। इतनी बातों में यदि कहीं भी कोई कोताही हुयी या कमीं आयी तो प्रेमी की तैयारी में खोंट मान ली जाएगी। इसीलिए यह मार्ग निश्छल प्राणियों के लिए ही है, जो कपटी लोग हैं वे इस मार्ग पर नहीं चल सकते।[1] -

घनानंद ने इस तरह के भाव अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त किए हैं। इस ससार में सच्चा प्रेमी दुर्लभ हैं, प्रेम की वेदना कौन सहन करे। फसली प्रेमी अवसर मिलते ही दूसरा प्रेमी खोज लेते है, वियोग सहन करने की आवश्यकता ही क्या है? परन्तु हाय रे दुर्भाग्य घनानंद ने तो अपनी प्रेयसी से सच्चा प्रम किया लेकिन प्रेयसी ने प्रेम समुचित प्रतिदान नहीं दिया, परिणामस्वरूप कवि को विरह की तीव्र वेदना सहन करनी पड़ी, प्रेमी इस स्थिति को भी सहन करने के लिए तत्पर है--

इक तौ जग-मॉझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै।
तिहि देखि सकै न बड़ो विधि कूर, बियोग-समाजहि साजि पिलै।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै।
अमिले रहिबो लै मिले तें कहा, यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै।"[2]

रीतिबद्ध धारा में प्रेम का सीधा वर्णन वर्जित था, परन्तु रीति मुक्त कवियों ने अपने प्रेम का खुला वर्णन प्रस्तुत किया। संयोग में अठखेलियां की वियोग दाह को भी सहन किया। रीति मुक्त कवि नही चाहते थे कि किसी को भी उनके प्रेम का पता चले, साथ ही वियोग की स्थिति में दुःख को स्वयं ही सहन करने की सामर्थ्य भी रखते थे। वियोग दाह को बताकर वे उपहास के पात्र नहीं बनना चाहते थे। कवि घनानंद की स्थिति ऐसी ही थी, उन्होनें कितनी

---

1. घनानंद - पृ0 सं0 - 130-31

2. सुजान हित - 414

सादगी से अपने प्रेम की निश्छलता अभिव्यक्त की है–

"अंक भरौं, चकि चौंकि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ।
देखि रहौं, अनदेखे दहौं सुख सोंच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ।
जान। तिहारी सौं मेरी दसा यह को समझै अरू काहि सुनाऊँ।
यौं घनआनंद रैन दिना नहि बीतत, जानियै कैसें बिताऊँ।"[1]

प्रेम पंथ में वही सफलता पूर्वक चल सकता है, जिसमें कष्ट सहन करने की क्षमता हो, मार्ग में आने वाली कठिनाइयों से डरे नहीं साथ ही सर्वस्व समर्पण की भावना हो तथा प्रेयसी के प्रति अनन्य निष्ठा हो–

"अन्तर उदेग–दाह, आखिँन प्रबाह–आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हंसिबो न रोयबो हो,
खोय–खोय आप ही मैं चेटक–लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,
बिरह–विषम–दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन विधि रचो नेही की रहनि है।"[2]

प्रेम की पीड़ा कवि को व्यथित किए दे रही है, वह अपने को सभाँलना चाहता है, लेकिन भावनाएँ सम्भलने नहीं दे रही–

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौ दृग आँसुनि ढारत।
चाहनि चोप उमाह उमंग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत।
हौ घनआनंद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिं सम्हारत।
एजू सुजान जनाऊँ कहा बिन आरति हौ, अति या विधि आरत।"[3]

---

1. सुजान हित –333
2. सुजान हित–196
3. सुजान हित–431

प्रेम से जिसका सामना हो जाता है, वह बेचैन हो उठता है, उसे एक क्षण के लिए भी आराम नहीं मिल पाता, मतवाला होकर वह घूमता रहता है–

> प्रेम के पाले परै, जिय जाको धरै कल क्यों अकुल निमई है।
> दीसत देखौ दसौ दिसि प्रीतम कौन अनूठियै ठान ठई है।
> यौं घनआनंद छाय रह्यौ तब लाज सम्हारै सु बीति गई है।
> जाहुँ कहाँ अहो नाहीं नहीं तुम ही सों जहाँ तहाँ भेट गई है।[1]

प्रेम करने वाला ही प्रेम को समझ सकता है, कायर लोग तो प्राण ही छोड़ देते है–

> "हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
> नीर सनेही कों लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
> प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़, मति के पानि परे कों प्रमानै।
> या मन की जू दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।[2]

प्रेम का संयोग पक्ष :-- घनानंद के काव्य में प्रेम ही प्रेम के दर्शन होते हैं, प्रेयसी सुजान से प्रेम हुआ, उस प्रेम का जी भर उपभोग किया, आनंद लिया। सुजान के प्रेम ने बहुत दिनों तक साथ नहीं दिया, परिणामतः सौभाग्य, दुर्भाग्य में परिवर्तित हो गया। सुजान से विलग होकर भी कवि उससे अलग नहीं हो पाया, उसकी स्मृति ने मानसिक रूप से प्रेयसी के समीप रखा। घनानंद काव्य की विवेचना करने से स्पष्ट पता चलता है कि संयोग कवित्तों की संख्या अल्प है, फिर भी जितने छन्द हैं उन्हें पढ़कर स्पष्ट होता है कि कवि को प्रेयसी सुजान के शारीरिक सामीप्य का सुख भी मिला था। कवि ने इस अल्प सुख का खुलासा चित्रण प्रस्तुत किया है। डॉ0 द्वारका प्रसाद सक्सेना का इस

---

1. सुजान हित--478
2. सुजान हित–4

सन्दर्भ में विचार है कि "घनानंद की प्रेमानुभूति में श्रृंगार के संयोग या सम्भोग का हर्ष उल्लास एवं सुख भी भरा हुआ है। यद्यपि घनानंद ने थोड़े शब्दों में ही प्रेम श्रृंगार के संयोग पक्ष का निरूपण किया है, जिसमें सम्भोग-सुख की उमंग, मिलन का उल्लास, आनन्द-क्रीड़ा की आतुरता, रति सुख का उत्साह, सामीप्य लाभ का हर्ष तथा संसर्ग की लालसा का उद्दाम वेग भरा हुआ है।" घनानंद ने प्रेम के संयोग वर्णन में उत्सुकता, रोम-रोम में आनंद भर जाना, इन शताधिक भावनाओं का चित्रण प्रस्तुत किया है-

"ललित उमंग-बेली आल बाल-अंतर तें,
आनंद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम--उमाह--चाह छायौ सु उछाह--रंग,
अंग अंग फूलनि ढुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग
दसा सुभ सुगनौती नीकें इन है पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी।"[1]

घनानंद ने संयोग प्रेम वर्णन में सम्भोग सुख के खुले चित्र चित्रित किए हैं, किसी भी भाव को गुप्त नहीं रखा। प्रियतमा के साथ संयोग सुख की चरम परिणति है, लेकिन ऐसी स्थिति में भी कवि द्वन्द्व से ग्रसित है-

"पौढ़े घन आनंद सुजान प्यारी पर जंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है।
भूषन अंग अंगहि सम्हारि, नाना,
रूचि के विचार सों समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है।
मोद-मद छाके घूमैं रीझि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है।"[2]

---

1. सुजान हित - 77

घनानंद ने सुजान के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते समय उसके प्रति अपने तीव्र अनुराग को व्यक्त किया है। सुजान का रूपयौवनोन्माद कवि को मस्त कर देता है, परिणामत. सामीप्य की लालसा का जन्म होता है, सामीप्य की लालसा कामजन्य है। काम के जगते ही, कॉंपते करों से कवि प्रेयसी को आलिंगनबद्ध कर लेते हैं। सुजान अपने प्रेम से प्रेमी को सींच देती है–

''रति–सुख–स्वेदओप्यौ आनन बिलोकि प्यारो,
प्राननि सिहाय मोह–मादिक महा छकै।
पीत–पट छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चायनि लुभाय रहि ना सकै।
परसि सरस बिधि रूचिर चिबुक त्यौं ही,
कंपति करनि केलि–चॉंव–दॉंव ही तकै।
लाजनि लसौंहीं चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अंनद घन हॉंसी सो भरीन कै।''[1]

घनानंद ने संयोग के चित्र दो प्रकार से चित्रित किए हैं। एक रीति बद्ध शैली में अर्थात् नायक व नायिका की कामोत्तेजक चेष्टाओं, संकेतो, रति क्रीड़ाओं आदि का वर्णन और दूसरे प्रकार के चित्रों में संयोग वर्णन रीति मुक्त है। परन्तु रीति मुक्त होते हुए भी वर्णन लगभग रीतिबद्ध कवियों सा है। प्रथम प्रकार के वर्णनों में पूर्व सम्भोग दशा, सम्भोग दशा, सम्भोग पश्चात् दशाओं का वर्णन लिया जा सकता है। रति क्रीड़ा से पूर्व की समस्त तैयारी, जैसे नेत्रों का मिलना, दृष्टि में चंचलता, ऑंखों में काम का निमन्त्रण, स्पर्श आलिंगन, चुम्बन, मस्तक पद स्वेद कणों का आना और सम्भोग के समय हृदय की आतुरता, व्याकुलता, आनन्दतिरेक, सुध का खोना तथा सम्भोग उपरान्त शैथिल्य, विश्रान्ति आदि का वर्णन मिलता है। इन समस्त वर्णनों में कथ्य में किसी भी प्रकार की नवीनता नहीं है। सम्पूर्ण चित्रण परम्परागत है। इस दृष्टि से घनानंद में

---

1. सुजान हित – 231

और रीतिवद्ध कवियों में कोई अन्तर नहीं। यदि कुछ भेद देखना हो तो वर्णन शैली में देखा जा सकता है।"[1]

रीतिवद्ध कवियों को कवि-कर्म पूरा करने के साथ ही साथ आचार्यत्व की पदवी भी प्राप्त करनी थी, इसी कारण से उन्होंने यह वर्णन लक्षण उदाहरण शैली में प्रस्तुत किए। घनानंद इस झंझट से मुक्त थे, इसी कारण सम्भोग सम्वन्धी आत्माभिव्यक्त के चित्रण कवि ने बखूबी चित्रित किए, इस वर्णन में उनकी अपनी शैली है-

"केलि की कला निधान सुंदरि महा सुजान,
आन न समान छवि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल विसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि।
पिय-अंग-संग घनआनंद उमंग हिय,
सुरति-तरंग रस-विबस उर--मिलौनि।
झुलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल होनि।"[2]

<u>संयोग में वियोग</u> :- हिन्दी साहित्य में शायद ही ऐसा कोई कवि हुआ हो जिसे संयोग अवस्था में वियोग दिखता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का इसी सन्दर्भ में मन्तव्य है कि "घनानंद की प्रेम साधना इसलिए चरम साधना के रूप में प्रतिष्ठित है। उसकी चरम साधना सामान्य प्रेम प्रवाह में बहुत आगे है। विरह में मंजिष्ठा रोग हो जाता है, प्रेम का पूरा परिपाक हो जाता है या प्रेम का योग न होने से वह राशिभूत हो जाता है, यह साहित्य परम्परा कहती चली आ रही है, पर वहाँ प्रेम की वह चरम साधना नहीं दिखायी देती जहाँ वियोग में ही नहीं संयोग में वियोग का अनुभव होता रहता है। प्रिय के वियोग में ही नहीं

---

1. घनानंद का रचना संसार पृ0 सं0 58
2. सुजान हित - 31

संयोग में भी अशान्ति साथ नहीं छोड़ती। प्रिय के वियोग की आशंका संयोग में भी बनी रहती है। संयोग में भी वियोग का अनुभव।"[1]

संयोग में भी वियोग की आशंका प्रेमी को हर समय अधीर करती रहती है–

"हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर–पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग–बाढ़ि,
चित चटपटी मति चिंता पागयै रहै।
ज्यौं ज्यौं बहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौंउर अनुरागी दुःख–दाह दागियै रहै।"[2]

घनानंद को अपने आँसुओं से बड़ी शिकायत है, जब भी प्रिया मिलन का अवसर आता है, वे पहले से ही निकलने लगते हैं, जिससे प्रिया दर्शनों में बाधा पहुँचती हे, ऐसा प्रतीत होता है कि आँसू पहले भागकर प्रिया के दर्शन कर लेना चाहते हें–

"साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गन छावत।
देखैं कहाँ? सपने हू न देखत नैन यौं रैन दिना झर लावत।
जौं कहूँ जान लखैं घन आनन्द तौ तन नेकु न ओसर पावत।
कौन बियोग–भरे अँसुवा, जु संजोग मैं आगेई देखन धावत।"[3]

---

1. घनआनंद की भूमिका से
2. प्रकीर्णक -- 9
3. सुजान हित – 214

संयोग कभी–कभी स्वप्न में भी हो जाया करता है, पर उस स्वप्न संयोग से लाभ ही क्या? नींद टूटी दु.ख चार गुना ज्यादा बढ़ गया–

जोरि कै कोरिक प्राननि भावते संग लियें अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछन सों घनआनंद छाय महारस कों बरसावत।
ओंट भएँ फिरि या जिय की गति जानत जीवनि ह्वै जु जनावत।
मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय के मारत मारि जिवावत।"[1]

संयोग में वियोग की चर्चा कवि ने अनेक स्थानों पर की है, कई स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कृष्ण की भक्ति के वशीभूत होकर वे अपने आराध्य के दर्शन करना चाहते हैं। कवि हृदय की इस विचित्र दशा पर चकित है कि प्रेयसी से मिलने पर भी वह संयोग —सुख को नहीं उठा पा रहे है विछोह की आशंका उसे मारे डाल रहा है–

"मोहन अनूप रूप सुन्दर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोह दसा महा मोह की ।
अनोखी हिलग दैया। बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।
कैसें धरौं धीर बीर। अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की।
देखें अनदेखें तहीं अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लौह की।"[2]

घनानंद वास्तव में प्रेम के पीर हैं, संयोग सुख को भोगा या तो विरह दाह से दग्धित भी हुए हैं। ऊपर के छन्दों में संयोग में वियोग की स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया गया है, लेकिन घनानंद ने कुछ कवित्त ऐसे भी लिखे जिसमें वियोग में भी संयोग की विद्यमानता वर्णित की गयी है। प्रिय भले ही पार्थिव रूप

---

1. सुजान हित–55
2. सुजान हित – 276

से दूर हो, लेकिनवह हमेशा हृदय में विद्यमान रहता है–

घेरयो घट आय अंतराय–पटनि–पट पै,

ता मधि उजारे प्यारे पानुस के दीप हौ।

लोचन–पतंग संग तजै न तौऊ सुजान,

प्रान हंस राखिबै कौं भरे ध्यान–सीप हौ।

ऐसें कहौं कैसें घनआनंद बताऊँ दूरि,

मन–सिंघासन बैठे सुरत–महीप हौ।

दीठि–आगै डोलौ जौ न बोलौ कहा बस लागै,

मोहिं तौ वियोग हू मैं दीसत समीप हौ।"[1]

<u>प्रेम में वियोग</u> :– प्रेम के दो पक्ष होते हैं -- संयोग और वियोग। संयोग में प्रेमी–प्रेयसी साथ–साथ रहकर अठखेलियाँ करते हैं। प्रेम में ऐसी भी स्थिति आती है कि परिस्थितवश दोनों को अलग होना पड़ता है, वियोग ही सच्चे प्रेम की कसौटी है। घनानंद ने सुजान से प्रेम किया, सुजान ने भी घनानंद से प्रेम किया, पर उतना नहीं। यदि सुजान ने प्रेमी से प्रेम किया होता तो, उसका साथ नहीं छोड़ती। मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार से निष्कासित होने के पश्चात् प्रेयसी स्मृति हृदय में संजोये वे मथुरा चल दिये। जीवन पर्यन्त सुजान स्मृति से जुड़े रहे, काव्य का अधिकांश भाग सुजान--विरह में लिखा गया, इसी कारण इनको 'प्रेम का पीर' कहा गया। घनानंद की कविता में रीतिबद्ध कवियों जैसा आडम्बर नहीं है कि विरहणी नायिका पूरी रातें जाग–जाग कर ही पूरा करती है। विरह की अधिकता के कारण हमेशा उच्छवास लेती रहती है, कमल की पंखुड़ी तक से उसे खरोंच लग जाती है। विरहणी नायिका के ऊपर इत्र की शीतल जल धार छोड़ी जाती है, लेकिन विरह ऊष्मता के कारणवह रास्ते में सूख जाती है– इस तरह के वर्णन घनानंद ने नहीं किए हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कथन है कि

---

1. सुजान हित – 94

"यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया हैं, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही इनकी दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग सम्वन्धी पद प्रसिद्ध हैं। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तर्वृत्ति निरूपक है, वाह्यार्थ निरूपक नहीं, घनानंद ने न तो विहारी-तरह विरहताप को बिहारी माप से मापा है, न बाहरी उछल कूद दिखायी है। जो कुछ हलचल है वह भीतर है – वाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना, न सेज की आग की तरह से तपना है, न उछल–उछल कर भागना है। उनकी 'मौनमधि--पुकार' है।"[1]

दु:ख पड़ने पर सामान्य व्यक्ति रोता, चीखता, चिल्लाता है, पर इनकी पुकार मौन है। व्यक्ति के ऊपर जब दु:ख या विपत्ति आती है तो वह येन–केन प्रकारेण उससे छुटकारा चाहता है। लेकिन घनानंद की विशेषता है कि सुजान की स्मृति से उत्पन्न पीड़ा को हमेशा हृदय से लगाये रखना चाहते है–

विरहा–रवि सों घट ब्योम तच्यौ विजुरी सी खिवें इक लौं छतियाँ।

हिय–सागर तें दृग–मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ।

घनआनंद जान अनोखी दसा, न लखौं दई कैसें लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक में टपकैं बरूनी तिहि ओलतियाँ[2]

सुजान को देखे बिना ऑखो की क्या दशा है? उनकी दशा यह है कि उनको बन्द रखने से भी कष्ट मिलता है। विरह दु:ख ने इन ऑखो को शक्ति से ओत–प्रोत कर दिया है–

"आड़ न मानत चाड़ भरी उघरी ही रहै अति लाग लपेटी।

ढीठि भई मिलि ईठि सुजान न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी।

मेरी ह्वै मोहिं कुचैन करै घनआनंद रोगिनि लौं रहै लेटी।

ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह नेकौ अघाति न ऑखि निपेटी।"[3]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. सुजान हित – 274
3. सुजान हित – 35

ये आँखे संयोग दशा में रूप लुब्ध हो सुजान से लग गयी थी, अब तो इनकी पलकें भी नहीं लगती हैं, आँसुओ से भीगकर ये आँखें वैसी ही जल उठती हैं जैसे घृत की धारा पड़ने पर अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। सुजान की स्मृति के कारण आये ये आँसू विरह की दावाग्नि सी धधका देते है–

"पीर की भीर अधीर भई अँखियाँ दुखिया उमगी झरना लौं।

रोकि रही उर–मैड़बही इन टेक यही जु गही सु दही हौं।

भीजि बरें घिय–धार परें हिय आँसुनि यौं पजरैं बिरहा दौं।

आनंद के घन मीत सुजान ह्वै प्रीति मैं कोनी अनीति कहा गौं।"[1]

घंनानंद का प्रेम लौकिक था, रूप सौन्दर्य से उत्पन्न था, एक सांसारिक रमणी की छबि पर वो फिदा थे, उसी का अर्दशन उनके प्राणों की पीड़ा और अनन्त व्यथा का कारण हो गया था।"[2]

सुजान के प्रति कवि मन की रीझ, उसके सुधाधर समान मुख तथा अन्यान्य अंगो पर रीझे हुए मन की विरह में जो दशा है उसका चित्रण देखिए–

"चोप चाह चावनि चकोर भयी चाहत ही,

सुषमा–प्रकास मुख–सुधाधर पूरे को।

कहा कहौं कौन–कौन बिधि की बँधनि बँध्यौ,

सुकस्यो न उकस्यौ बनाव लखि जूरे को।

जाही जाही अंग परयौ ताही गरि गरि सरयौ,

हरयौ बल बापुरे अनंग--दल--चूरे को।

अब बिन देखें जान प्यारे यौं अनंदघन,

मेरो मन भँवै भटू। पात ह्वै बघूरै को।"[3]

---

1. सुजान हित–43
2. घनआनंद – पृ0 सं0 161
3. सुजान हित–190

सुजान का सामीप्य क्षण भंगुर था, जो अचानक ही समाप्त हो गया, अब तो विरह वेदना रूपी ढेला निरन्तर सहन करना है–

"विष लै विषारयौ तन, कै बिसासी आपचारयौ,
जान्यौ हुतौ मन! तैं सनेह कछु खेल सो,
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति.
नीके सहि, असह–उदेग–दुख सेल सो।
गए उड़ तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
परयौ आय औचक बियोग बैरी डेल सो।
रूचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन
होत कहा होरे रंक। मानि लीनौ नेल सो।"[1]

एक जगह कवि घनानंद ने व्यथा के इस आतिशयय की व्यंजना भिन्न पद्धति से प्रस्तुत की है–

"विकल बिषाद–भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यों जरयो करे।
जीवन–अधार--पन पूरति पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि करयो करै।
अथिर उदेग–गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडरयौ सो बन–बीथिनि ररयौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरे जान जान प्यारी। तेरे,
बिरही कों हेरि मेघ आँसुनि झरयौ करै।"[2]

<u>प्रेम वैषम्य</u> :– घनानंद के प्रेम वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है, वैषम्य। कवि ने स्वतः अपने प्रेम मार्ग की विषमता का उल्लेख किया है। कवि का निजी जीवन भी विषमताओं से घिरा रहा। जीवन के पूर्वाद्ध में उन्हें प्रेम मिला ही नहीं,

---

1. **सुजान** हित – 194
2. **सुजान** हित – 226

यदि मिला भी तो क्षण भर के लिए। जीवन के उत्तरार्द्ध में जो प्रेम–सुख उन्हें प्राप्त हुआ वह आध्यात्मिक था। मुहम्मद शाह रंगीले के खास कलम को भौतिक सुख सुविधाओं की भला क्या कमी हो सकती है? हर तरह की भौतिक सुख सामग्री उपलब्ध थी, लेकिन दरबारियों की ईर्ष्या के शिकार बनें, दरबार से निष्कासित होना पड़ा, अन्त में कृपाण की धार पर ये प्रेम विरही सीधे उतार दिये गये।

रीतिकालिक कवियों ने प्रिय की उपेक्षा वर्णन में भी अतिशयोक्ति का सहारा लिया, परन्तु प्रेम विषमता का जितना साफ सुथरा वर्णन और गम्भीर चित्रण घनानंद ने किया, अन्य कवि नहीं कर सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "प्रेम की अनिवर्चनीयता का आभास घनानन्द ने विरोधाभासों द्वारा दिया है। उनके विरोधामूलक वैचित्र्य की प्रवृत्ति का कारण यही समझना चाहिएं।"[1] घनानंद जी का जीवन ही वैषम्यों का अक्षय भण्डार रहा है, इसी कारण उनका समस्त काव्य इस वैषम्य से प्रभावित है। सुजान से प्रेम किया लेकिन समुचित प्रतिदान नहीं मिला, निष्कासन मिलने पर, सुजान से चलने के लिए कहा, उसने मना कर दिया, हृदय से सुजान को भूलने के लिए कहा, लेकिन ऐसा नहीं हो सका, परिणाम उन्हें स्वयं वैषम्य से प्रेम हो गया –

"चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कों,
सूरे पन–पूरे जिन्हैं बिष सम अभी है।
प्रफल्लित होत भान के उदोत कंज–पुंज,
ता बिन बिचारनि ही जोति–जाल तभी है।
चाहौ अनचाहौं जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति–रीति बिषम सु रोम–रोम रमी है।
मोहिं तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछु चंदहि चकोरन की कमी है।"[2]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. सुजान हित – 187

घनानंद के समस्त काव्य में जो सर्वाधिक भाव मिलता है, वह है प्रेम वैषम्य। सुजान की बेवफाई, निर्मोहिता, उदासीनता को कवि ने स्वीकार किया और उसी विषमता को अपने जीवन में समाहित कर लिया, इसी कारण सम्पूर्ण भावना वैषम्य परक हो गयी। घनानंद ने अपने काव्य में प्रेम–वैषम्य दिखाने के लिए कई स्थानों पर विरोधाभास तथा निदर्शना अलंकारों का प्रयोग किया है। डॉ0 मनोहर लाल गौड़ का मन्तव्य है कि, "वह विशुद्ध भारतीय नहीं है, अपितु फारसी कवियों की देन है, क्योकि फारसी कवियों का दृष्टिकोण पीड़ा परक था– इसी कारण प्रेम की पीर उनके काव्य में उमड़ पड़ी है।" वास्तव में डॉ0 गौड़ के कथन से मैं पूर्णतया सहमत हूँ क्योंकि सूफी–दर्शन में प्रेमी सम्पूर्ण सृष्टि में विरह का दर्शन करता है, समग्र सृष्टि को विरह वाणों से विद्ध मानता है, सूफियों की इसी भावना को स्वच्छन्द काव्यधारा के कवियों ने स्वीकार किया। घनानंद ने भी सूफी कवियों से प्रेम की पीर की प्रेरणा ली।

"बात अनोखी कहा कहिये सुनि बेठे सरै न करे कछु कीवो।
देखत देखत सूझि परे नहि बूझत बूझत बौरई लीवो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत छीवो।
है घनानंद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीवो।"[1]

कवि ने विरह से व्यथित हृदय की तुलना 'भसमी विथा' से की है। यह ऐसा रोग है कि जिसको लग जाता है, उसकी सुधा कभी शान्त नहीं होती है, कवि की आँखों को यही रोग लग गया है –

"घेर--घबरानी उबरानी ही रहति घन –
आनंद आरति – राती साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान–रूप के अधार बिन–
व्याकुल बिकार–भरी खरी सु जरति हैं।

---

1. सुजान हित – 148

कहूँ घनआनँद घमँड़ि उघरत कहूँ,

नेह की विषमता सुजान अतरक है।"[1]

"प्रेम की पीर और 'प्रेम विषमता' ये मानो घनआनंद के विरह काव्य की मूल्यवान भाव संपदायें हैं, इन्हें निकाल देने पर फिर उसमें कुछ रह नहीं जाता ।"[2]

प्रेम का उदात्तीकरण :— हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में 'छायावाद' जिस प्रकार रहस्यमयता से प्रभावित था, उसी प्रकार घनानंद का समस्त काव्य लौकिक प्रेम परक अनुभूतियों को पार कर अलौकिकता से जुड़ गया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि पहले मुहम्मदशाह रंगीले की वेश्या 'सुजान' से जुड़े, दरवार से निकाले जाने पर कवि का मन इस संसार की स्वार्थपरता से भर गया, परिणाम वे सु + ज्ञान से जुड़कर अलोकिक हो गये। कवि का अन्तिम समय कृष्ण–राधा की भक्ति करने में ही व्यतीत हुआ, सुजान के लौकिक प्रेम को राधा–कृष्ण की भक्ति में परिवर्तित कर देना ही उनके प्रेम का उदात्तीकरण है। भक्तिकाल के लगभग सभी भक्त संस्कारवश भक्त वनें, लेकिन घनानंद के साथ ऐसा नहीं हुआ, वे लौकिक प्रेम के धरातल से जुड़कर ही पारलौकिक प्रेम में आसक्त हुए थे।

घनानंद के हृदय में ब्रज प्रदेश के प्रति भी असीम अनुराग था, दिल्ली से आकर वे वृन्दावन में बसे, जीवन पर्यन्त वहीं रहे। 'ब्रज–प्रसाद', ब्रज स्वरूप, धाम–चमत्कार, ब्रज विलास, वृन्दावन–मुद्रा, यमुना–यश, गोकुल–गीत, गिरिपूजन आदि कृतियों में उनके उदात्त प्रेम का वर्णन है –

"ब्रजरस पियत पियत न अघाऊँ। बहकि एक ब्रजरस बरराऊँ।।

रात द्यौस एकै ब्रज दीसै। ब्रजरस परसि नवाऊँ सीसै।।

ब्रज गोरिन की हिलग हिय बसी। मति गति अति ब्रजरति गुनगसी।।

ब्रजस्वरूप बरनै ब्रज बानी। और कौन की बुद्धि अयानी।।

चित चढ़ि रहै चुहल ब्रज जन की। ह्वै जु रही ऐसी गति मन की।

या ब्रज ही सों बान बनयौ है। ब्रज जीवन रसरीति–सन्यो है।"[3]

घनानंद की कुछ रचनाएं उन्हें निर्गुण सन्त सिद्ध करती हैं, ऐसी रचनाओं में चिन्तन–पद्धति प्रधान हो उठी है –

"आयु जौ वायु तौ धूरि सबै सुख जीवन–मूरि सम्हारत क्यौं नहीं।
ताहि महागति तोहि कह गति वैठे बनैंगी विचारत क्यौं नहीं।
नेमनि संग फिरै भटक्यौ पल मूंदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम–सुजान कृपा घनआनंद प्रान–पपीहनि पारत क्यौं नहीं।"[1]

सूफी सन्तों की विरह व्याकुलता घनानंद की 'इश्कलता' में दर्शनीय है। सूफियों ने साधक को प्रेमिका तथा ईश्वर को प्रिय माना है। घनानंद ने इस विपर्यय को स्वीकार नहीं किया, हॉं शैली के क्षेत्र में सूफी प्रेम–पद्धति की तड़प को स्वीकारा है, वस्तव में यही उनके प्रेम का उदात्तीकरण है –

"मन जैसें कछू तुम्हें चाहत है सु वखानिये कैसें सुजान ही हो।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौ लगिये नित लो ।
वुधि और सुधि नैननि वैननि में करि वास निरंतर अंतर गो।
उधरौ जग छाय रहे घनआनंद चातिक त्यौं तकिये अव तो।"[2]

हर्ष का अर्थात् आनंद का पूर्ण अनुभव विना विषाद की अनुभूति के नहीं हो सकता, इसलिए विषाद भी आनंद की साधना का अंग बन जाया करता है –

"बरसैं आनन्दघन अनत, इत नित नित ही छाय।
प्रान पपीहा की दसा, कहै कौन अब जाय।।
आनंद के घन तुम बिना, तलफत नेही दीन।
पल हू कल नहिं परत है, जैसे जल बिन मीन।।
आनंद के घन तुम बिना, मुजनूँ नहिं भावै।
नयन असाडे लागनै तुजही नूँ धावै।

---

1. कृपाकन्द – 12
2. सुजान हित – 265

हुण क्या कीजै लाडिले, बेरवन नहिं पावैं।

जुलम करैं ये बावरे मुजनूँ तरसावैं।"[1]

घनानंद में जहाँ–जहाँ रहस्यवाद आया है, वह सूफी प्रभाव के कारण ही यह उनके का उदात्तीकरण ही है –

"कंत रमै उर–अन्तर मैं सु लहै नहाँ क्यौं सुख–रासि निरंतर।

दंत रहैं गहें आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।

जो दुख देखति हौं घनआनंद रैन–दिना बिन जान सुतंतर।

जानै बेई दिन–राति, बखानें तें जाय परै दिन–राति को अंतर।"[2]

प्रेम साधना करते समय प्रेमी के समस्त ज्ञान का लोप हो जाता है, वास्तव में ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं रहती, क्योकि ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से और प्रेम का सीधा सम्बन्ध हृदय से है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद का मत है, "इस प्रेम की साधना के लिए ज्ञान का दृष्टि अपेक्षित नहीं है। प्रेम की साधना से पीड़ा भी मधुर हो जाती है। माधुर्य का कारण यह है प्रेम की चरम अवस्था पर पहुँचने पर जगत के द्वन्द्व भाव का विनाश हो जाता है। ज्ञान भेद कराने वाला है और प्रेम या राग अभेद उत्पन्न करने वाला।"[3]

वास्तव में उनका प्रेम अलौकिक, विरह, असाधारण था तथा प्रेम का उदात्तीकरण अलौकिक था।

<u>काम एवं प्रेम के विविध चित्र</u> :–

काम ज्वर, विरही के अंगो को तपा–तपाकर मार डालता है, उसके प्राण मूर्च्छित हो जाते हैं, अतन रंग में डूबा हुआ शरीर अतन उपचार के बिना विवर्ण हो जाता है, मतवाला होकर कामदेव अंग–अंग में दहक

---

1. इश्कलता – 33–35
2. सुजान हित – 207
3. घन आनंद – भूमिका

उठता है, रोम-रोम में उसके विजय की दुन्दभी बजने लगती है, विल्कुल ऐसी स्थिति घनानंद की है -

"मुरझाने सबै अंग, रहयौ न तनक रंग,

बैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।

इते प बसन्त सो सहायक समीप याके,

महा मतवारो कहूँ काहू तें जु नयौ ना।

तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,

बेधै मन कों कपूत पिता-मोह-मयौ ना।

पवन-गवन-संग प्राननि पठायहौं तौ,

जान घन आनन्द को आवन जौ भयौ ना।"[1]

उपचार रहित विरही को मनोजन्मा देवता जो पीड़ा पहुँचाता है, उसे उस विरही के सिवा और कोई नहीं जानता। इस अनंग संताप-जन्य व्यथा का भी अपने विरह निवेदन के अन्तर्गत घनानंद ने बार-बार उल्लेख किया है -

(क) बिरह बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,

मारै मुरझाय मैन-तावरेन ताय-ताय।"[2]

(ख) पीरी परि देह छीनी राजत सनेह-भीनी,

कीनी है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी।"[3]

(ग) मातो फिरै न घिरै अबलानि पै जान मनोज यौ डारत मारे।"[4]

(घ) रोम ही रोम परी घन आनंद काम की रोर न जाति निबेरी।"[5]

---

1. सुजान हित - 251
2. सुजान हित - 125
3. सुजान हित - 136
4. सुजान हित - 292
5. सुजान हित - 343

(ङ.) अंग भए पियरे पट लौं मुरझे विन ढंग अनंग सरौटनि।" 1

घनानंद की प्रेमाभिव्यक्ति अत्यन्त गम्भीर है, उसकी थाह पाना साधारण सहृदय के बस के वाहर की वात है, इसी कारण हम रीतिवद्ध कवियों की भीड़ से पृथक् कर स्वच्छन्द प्रेमी के रूप में देखते हैं। घनानंद का प्रेम वर्णन–अनवरूद्ध और अकुण्ठ है, उनके भाव वेगवती धारा की तरह प्रवाहित हुए, लेकिन उनमें संस्कार जनित संयम है।

बोधा के काव्य में प्रेमाभिव्यंजना :–

घनानंद की भाँति बोधा ने सुभान से प्रेम किया, परिणाम स्वरूप राज दरवार से निष्कासित किए गये, सुभान के विरह से तप्त होकर 'विरहवारीश' की रचना की। बोधा का प्रेम उधार का प्रेम न था, प्रेम की अनुभूति उनकी अपनी थी, इसी कारण 'रीति' की परिपाटी से अलग हट कर चले।

प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन है, उसमें चलना, तलवार की धार पर चलना है –

"अति छीन मृनाल के तारहु तें तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह तें द्वार सकीन तहाँ परतीत को टाँड़ो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पै धावनो है।"2

प्रेम करना सरल है, लेकिन उसका निर्वहण अत्यन्त कठिन है –

नेहा सब कोऊ करै, कहा करे में जात।
करिबो ओर निबाहिबो बड़ी कठिन यह बात।।"3

---

1. सुजान हित – 386
2. इश्कनामा – 1/7
3. इश्कनामा – 4/19

इसी बात को स्पष्ट करते हुए उनका विचार है कि–

"सहल बाहिबो सिंह सिर बोधा कवि किरवान।

प्रीति रीति निरबाहिबो महरिम मुसकिल जान।।"[1]

इस संसार में सारे कार्य करना सरल है, कठिन यदि कोई कार्य है तो प्रेम का निर्वहण –

"है न मुसक्किल एक रती नरसिंह के सीस पै सांग उबाहिबो।

दैबे कौं कोटि लौ दान अनके महेस लौ जोग खरे अवगाहिबो।

बोधा मुसक्किल सोऊ नहीं जौ सती है सम्हारै सिखीन कों दहिबो।

एकहि ठौर अनेक मुसक्किल यारी के प्यारी सौं प्रीति निबाहिबो।"[2]

प्रेम का महत्त्व :–

बोधा ने प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। प्रेम का तत्व पशु पक्षियों से लेकर मनुष्य तक में विद्यमान है, प्रेम करने वाला परम तत्व को प्राप्त होता है –

"घर में नर में सर में तरू में गजराज में बाज में जानि परै।

सुक सारो मयूर कपोतन में मग के हरि और चित्त अरै।

कवि बोधा बजाइकै प्रीति करै यह आतमज्ञान हिये में धरै।

हम रामदोहाई न झूठी कहैं यहि प्रीति सों मीति तरै पै तरै।[3]

कुछ लोग प्रेम के महत्त्व को नहीं जानते इसी कारण से वे प्रेम को विष के समान मानते हैं, कवि बोधा की मान्यता है कि प्रेम के महत्व को वेदों में पुराणों में वर्णित किया गया है, यह ऐसा तत्व है कि इससे व्यक्ति योग–अवस्था को प्राप्त हो जाता है, समग्र संसार का सार प्रेम ही है, अरसिक लोग इसके विषय में अज्ञानी बने रहते हैं –

"यह प्रेम को पंथ हलाहल है सु तौ बेद पुरानऊ गावत हैं।

पुनि आँखिन देखौ सरोजन लै नर संभु के सीस चढ़ावत हैं।

---

1. विरहीसुभान – दंपति – विलास–(इश्कनामा) 19/112
2. विरहवारीश – 24/29
3. इश्कनामा – 2/8

बरही पर माथ चढ़ै हरि के फल जाग ते एतं न पावत हैं।
तुम्हें नीकी लगै न लगै तो भल हम जान अजान जनावत हैं।[1]

सैकड़ों यज्ञ करने से, तप करने से, समस्त सम्पत्ति दान करन स वह पुण्य प्राप्त नहीं होता है, जो प्रेम करने से प्राप्त हाता है। यज्ञ करने से वहुत कुछ प्राप्त होगा तो इन्द्र की पदवी तपस्या करने स राज्य, लकिन सच्चा प्रेमी इन सबको छोड़कर, प्रेम के महत्व को स्वीकार करता है –

"सत जज्ञ करे ते सुरेस भए करे जाग ते जीव जियावत हैं।
दिय दान के दौलति होति धनी तप के किये राज का पावत हैं,
कवि बोधा सु तो हम चाहत ना परतीति कै प्रेम बढ़ावत हैं,
तुम्हें नीकी लगे न लगे ता भल हम जान अजान जनावत हैं।[2]

घनानंद की भाँति प्रेम के महत्व को लेकर बाधा भी दा विचार धाराओं में वह हैं, एक तरफ सुभान से प्रेम, दूसरी ओर कृष्ण से अनुराग -

"बरही करी प्रीति पयोधर सों पर ले व्रजराज के माथे मढे।
पुनि राग सों प्रीति कुरंग करी वह राग कुरंग के स्रिंग कढ़े।
कबि बोधा न कोल अनोखी करी यह प्रीति की रीति बिरंचि रढ़े।
जब आसकी तेरी सई की करे तव काहे न संभु के सीस चढ़े।"[3]

प्रेम इतना महान है कि इसके लिए लोक की मर्यादा को न्यौछावर किया जा सकता है मानवीय सम्बन्धों को सूत्र में पिरोने वाला प्रम ही है। मर्मज्ञ लोग ही प्रम के महत्व को जान सकते हैं। बहुधा यह देखा गया है कि सीमाओं से आवद्ध लोग प्रेम नहीं कर पाते। लोक लज्जा से भयभीत लोग भी प्रेम के महत्व को नहीं समझ सकते हैं –

---

1. इश्कनामा – 3/14
2. इश्कनामा -- 3/15
3. इश्कनामा – 2/11

"लाक की लाज औ सोच अलोक को वारिये प्रीति क ऊपर दोऊ।
गाँव का गेह को देह को नातो सनेह में हातो करै पुनि सोऊ।
बोधा सु नीति निवाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जौ मीत तौ प्रीति के पैड़ परै जनि कोऊ।"[1]

कमलिनी की सदृश प्रेम करने वाले ही प्रम-पयाधि में डूब कर उसका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं, संसार उन्हीं के प्रेम का जानता और समझता है, जो स्वार्थ रहित होकर प्रेम करते हैं। उनका प्रेम पूज्य बन जाता है –

"प्रीति करै कमलनि कसि तनु मनु पीस।
तब कस चढ़े न मितवा सिव के सीस।"[2]

प्रेम को जानने वाले उसमें अन्तर्निहित 'प्रम की पीडा' स भी भली- भाँति परिचित हांगे। प्रम करने का आन्मद तो तभी है "जब आग लगी हा बराबार दानों तरफ"। प्रम एक पक्षीय नहीं उभय पक्षीय होता है प्रम की महत्ता तब है जब प्रमिका–प्रेमी पर कृपालु हाती है --

पहिचाने प्रेम रकाने जे बेपरद दरद दरियाब हिले।
मगरूर दिखाते आखिर या दिलसूर प्रेम को पंथ पिले।
तकि तबियेदार उदार वाहि अरू गनै न धक दै नैन झिले।
तब खूब इस्क बोधा आसिक जब महिरबान महबूब मिले।"[3]

<u>**प्रेम का उद्भव**</u> :– प्रेमी के हृदय में प्रयसी को देखकर प्रेम का स्फुरण होने लगता है। प्रियतमा की छवि कुछ ऐसी ही है, कि बस दर्शन हुए और प्रेम का उद्भव हो गया। प्रेम तो ऐसा व्यापार है कि प्रथम परिचय हुआ, परिचय. घनिष्ठता के कारण प्रेमी

---

1. इश्कनामा –3/18
2. इश्कनामा -- 2/12
3. इश्कनामा –6/33

अपना सब कुछ लुटा बैठा। बोधा का मन बिका नहीं लूट लिया गया–

"तव नेह नफा दिल मोल कियो छबि आपनी लैके वयानो दई।
पुनि माल लै दाम चुकायो नहीं मुलाकात चिन्हारिऊ भूलि गई।
घटै कीमति बोधा जौ माल फिरै बजिकै बेवपार में टूट ठई।
उनकी पै बनै हम यों समुझै मनु बेच्यो न जानी कि लुटि भई।"[1]

बोधा का प्रेम–एक निष्ठता का प्रेम है, 'सुभान' के सौन्दर्य पर सारा संसार न्यौछावर है, ऐसा प्रतीत होता है कि सुभान से ही समग्र संसार ने सौन्दर्य प्राप्त किया है। प्रेयसी, समीपस्थ है तो सब कुछ ठीक लगता है, बिना उसके तो समग्र संसार की अथाह सम्पत्ति भी बेकार है–

"एक सुभान के आनन पै कुरवान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतऋतु की पदवी लुटियै लखिकै मुसकाहट ताको।
सो कजरा गुजरान जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरान तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहि जान मिलै तौ जहान कहाँ को।"[2]

मृगनयनी 'सुभान' द्वारे पर प्रेम से आप्लावित खड़ी है, हाथ में मालती माला लिए हुए प्रेमिका और अधिक मादक, रूपवती, प्रभावती दिखायी देती है, माथे पर रोली की बेंदी इस तरह सुशोभित है, मानो वीर बहूटी हों, इसी लावण्य ने ही कवि अन्तस् में प्रेम का अंकुरण किया है–

"देवदुआरे निहारि खड़ी मृगनयनी करै रबि की छबि छोटी।
हाथ में मालती माल लियें चली भीतरैं तहि गोसाईं अँगोटी।
पाइन तें सिख लौं लखि कै कवि बोधा मजाबरनी यह छोटी।
भाल में रोरी की बेंदी लसी है ससी में लसी मनो बीर बहोटी।"[3]

---

1. इश्कनामा –4/23
2. इश्कनामा–6/31
3. इश्कनामा–9/49

सुभान रूपगर्विता नायिका है, बोधा के हृदय में उसका सौन्दर्य, मृगी के समान नेत्र बस गये हैं, ईश्वर सब प्रकार के कष्ट दे दे, लेकिन प्रेयसी का बिछोह न सहन कराये, इस प्रकार का कष्ट असह्य है, उसकी चितवन ने ही तो प्रेम की स्थापना की है –

"बोधा सुभान हितू सों कही या दिलंदर की को सही करि मानत।
ता मृगनैनी की चारू चितौनी चुभी चित में चित सो पहिचानत।
तोसों वियोग दई ने दयौ तौ कहौ अब कैसें मैं धीरज आनत।
जानत हैं सबही समुझाई पै भावती के गुन कों नहिं जानत।"[1]

ऐसी योगिनी माया कि प्रेम स्वतः जाग्रत हो जाय –

"लखि बेनी जटा न विभूति मलै सिर गंग नहीं श्रमबुंद चुए।
ससि होइ न भाल त्रिपुंड लसै उर हार न ब्याल लखै भकुए।
बिन काजहि बोधा लदाई करै पहिचाने न बावरे अंध भए।
अरे जोगिनी प्रेमवियोगिनी हैं हम होहिं न संभु मनोज मुए।"[2]

दक्षिण दिशा में काली–घन घोर घटांए छा गयीं, प्रेयसी से घनिष्ठ सान्निध्य तो हो गया, लेकिन पुनर्मिलन की स्थिति नहीं आयी, अतः प्रेम के अंकुरण को पाला मार गया, अंकुरण को पुनर्जीवित करने के लिए वैद्यक उपचार व्यर्थ हैं, मात्र प्रेयसी का दर्शन ही पर्याप्त है –

'कारी घटा दिसि दक्षिन देखि भयो सु चहै हियरा जरि कारो।
ताही घरी घहराइ वही गिरि गोभुव पै लगि प्रेमतमारो।
केतन आइ लगाई थके कवि बोधा हकीमन को उपचारो।
पै न धरै वह धीर अली न मिलै वह पीर को जाननहारो।"[3]

---

1. इश्कनामा – 8/44
2. इश्कनामा – 11/63
3. इश्कनामा – 8/42

बोधा ने एक तो स्वयं सुभान से प्रेम किया, बिछुड़ने पर कथा के माध्यम से उस प्रेम की स्मृति के हृदयंगम करने का सत्प्रयास किया। माधव लीलावती की भेंट, वास्तव में बोधा और सुभान की पूर्व भेट ही है, कथा बदली, पात्र बदले, लेकिन भावों में परिवर्तन कर पाना भला किसकी सामर्थ्य है –

"सबको सकत रिझाय जो रीझतु जहिं गुन बिबस।
माध्वनल कों पाय दिलमाहिर मोहत सबैं।
मूरख अतिहि रिसाय माधवलन से गुनी पर।
ढिग आवत उठि जाय फिर पीछू गिल्ला करे।
माधव जिहि अस्थान लीलावति भेटं तहाँ।
पुरवासिन उनमान कछुक प्रीति लक्षित भई।
तब माधव लगि कान प्यारी सों या रीति कहि।
जाते होय गलान सो निदान कीजै नहीं।"[1]

बोधा ने कथा के माध्यम से प्रेम की गहनता को व्यक्त किया है, इस प्रेम में उच्च भावनाओं का आदर्श हैं, अनुभूति की तीव्रता है, गहरी आस्था है, क्योंकि उनका स्वयं भोगा हुआ प्रेम है। बोधा की मान्यता है कि प्रेम का उद्भव अचानक होता है, यह व्यापार नहीं है, वैयक्तिक है, इसके लिए दोनों पक्षों में विश्वास का होना, अनिवार्य शर्त है, यह ऐसी भावना है, जहाँ स्वार्थ, लेश मात्र नहीं रहता, समपर्ण ही इसका आधार है -

"नेह तत्यो घर सों बर सों बरहू बटपार के हाथ बिकाने।
त्यागि तिन्हैं तिनुका करि कूबरी हाथ लै आधिक राति पराने।
काहू सों को अनुकूल जहान में सो जस बोधा कहाँ न बखाने।
ऊधो जू यामै कछू सक ना हम आकिल ही ते खुदा पहिचाने।[2]

---

1. **विरहवारीश** – 4, –48/57,58,59,60
2. **इश्कनामा** – 15/85

बोधा ने राधा–कृष्ण के माध्यम से बोधा ने प्रेम का उद्भव चित्रित किया है, इस रचना के मूल में यदि देखा जाय तो, मिलता है कि अपनी प्रेम गाथा को कथा का आधार बना कर प्रस्तुत किया गया है –

"चौखंडा हवेली जहाँ पौन कौ न गौन ऐसे,
ठौर मन भावती सो हित कै निवाहिये।
चाहिये मिलाप बिसराइये न एकौ बेर,
मिलिबे कों कोटि कोटि बातै अवगाहिये।
बोधा कबि आपने उपाय में न कमी कीजै,
दूसतऊ लोगन की दूस पै न चाहिये।
समै पाय बनि जाय कीजै सो उपाय आली,
दूसरो न जानै तौन इस्क को सराहिये।"[1]

बोधा उसी प्रेम की प्रशंसा करते हैं जिसमें एकनिष्ठता हो, एक ही के प्रति समर्पण हो।

माधव के रूप को देख लीलावती में प्रेम–स्पंदन हुआ, तो आगे की कथा में कामकंदला के संगीत पर मुग्ध होकर माधव में प्रेम का अंकुर उग आया –

"सुन सुभान यह रीति दिल भरि दिल महरम कहत।
दीद दीद पर प्रीति माधव लीलावति जथा।
बढ़त एक ही साथ दिन पर दिन अधिकात हित।
लीलावती रतिनाथ द्वै तन मन एकइ भए।"[2]

"स्वेद कंप रोमांच फुर अस्रुपात जंभात।
प्रलय बेबरन भंगसुर तन तोरत अलसात।

---

1. विरहवारीश – 50/69
2. विरहवारीश – 46/35–36

प्रगट होत पियपरस तें ये लक्षन तिय अंग।
निरखि कंदला देह ते माधव चाह्यो रंग।"[1]

<u>प्रेम का पंथ</u> :–

रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम को पहचाना, मन मस्तिष्क और हृदय की गहराइयों से उसकी अनुभूति प्राप्त की। परिणाम यह हुआ कि प्रेम का पंथ कठिन लगने लगा। सहजता से प्राप्त होने वाला प्रेम बहुत दिनों तक स्थायी नहीं रह पाता, उसकी प्राप्ति में जितनी काठिन्य अनुभूति होगी, रसानुभूति उतनी ही द्विगुणित होगी।

प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन है, इस पर चलना सहज नहीं, सरल नहीं, कपटी, स्वार्थी व्यक्ति एक कदम भी नहीं रख सकते, प्रेम के मार्ग में चलना तलवार की धार पर चलना है। एक मजा हुआ खिलाड़ी ही तलवार की धार पर कोशल प्रदर्शित कर सकता है, जरा सी चूक हुई, पैर कट गया, बिल्कुल ऐसे ही प्रेम का मार्ग है, स्वार्थ की भावना आई प्रेम में ग्रन्थि पड़ गयी –

"अति छीन मृनाल के तारहु तें तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुईबेह तें द्वार सकीन तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है।
कवि बोधा अनी छनी नेंजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पर धावनो है।"[2]

नारी के प्रति पुरूष का आकर्षण मनोवैज्ञानिक सत्य है, नारी ने सौन्दर्य के द्वारा लुभाने का प्रयत्न किया तो पुरूष ने पौरूष के द्वारा लेकिन यह तो मात्र छल है, स्वार्थ सिद्ध हुआ आकर्षण समाप्त। प्रेम करने की सौगन्ध तो बहुत खायी जाती है, लेकिन इसका निर्वहण कम ही लोग कर पाते हैं –

---

1. विरहवारीश – 116/25–26
2. इश्कनामा – 1/7

"नेहा सब कोऊ करे कहा करे में जात।

करिवो ओर निवाहिवो बड़ी कठिन यह बात।"[1]

प्रेम करके सफलता पूर्वक उसका निर्वहण करना इतना कठिन है, जितना कि सिंह के सिर पर मुकुट बाँधना अपना सब कुछ समर्पण करके ही इसको प्राप्त किया जा सकता है, इसको स्थापित रखा जा सकता है –

"सहल वाहिबो सिंह सिर बोधा कवि किरबान।

प्रीति रीति निरवाहिबो महिरम मुसकिल जान।"[2]

पुरूष, रस लोलुप होता है, इसी कारण से तो उसकी तुलना भ्रमर से की गयी है; रसपान किया बस दूसरी जगह मुड़ गया। कम ही पुरूष लोग सच्चे हृदय से प्रेम करते है, तभी तो एक सखी अपनी अंतरंग सखी को प्रेम करने के लिए वर्जित करती है– यह पुरूष लोग प्रेम सच्चे नहीं उतरते, इनसे प्रेम करके प्रेम मार्ग में चलना दु:ख को स्वतः निमन्त्रण देना है–

"द्वार में प्यारो खरो कब को लखती हियरा सों लगाइ न लीजे।

तू तो सयानी अनोंखी करी अब फेरि के ऐसी न चित्त धरीजे।

बोधा सोहाग औ सोभा सबै उड़ि जैबे के पंथ पै पाउँ न दीजे।

मानि लै मेरी कही तैं लली अहे नाह के नेह मथाह न कीजै।"[3]

निस्वार्थ प्रेमी व्यक्ति को यदि सच्चा प्रेम मिल जाता है तो, संसार की सारी निधि उसे मिल जाती है। प्रेम में एकाकार व्यक्ति संसार की ना तो चिन्ता करते हैं और न तो परवाह, वह लोग इसी भावना मस्त रहते है–

"कवि बोधा न आन के जानबे को यह प्रेम को पंथ जवाहिर है।

दिलमाहिर सों मिलो बिछुरो बा किसा तो वही दिल माहि रहैं।"[4]

प्रेम करना इतना कठिन है कि हर एक के बस के बाहर है, प्रेम वही कर सकता है, जिसका मन निर्मल, स्वार्थ रहित हो तभी प्रेम सफल

---

1. इश्कनामा– 4/19
2. इश्कनामा – 19/112
3. इश्कनामा – 19/113
4. विरहवारीश – 200/12

होता हे अन्यथा सारी भावनाएं विफल हो जाती हैं–

"प्रेम कोठरी कुलुफ लखि बोधा कठिन अपार।
रची जुलुफ महबूब की रूचिर कुंचि की तार।।"[1]

प्रेम में क्रय और विक्रय की भावना नहीं होती हानि और लाभ का व्यापार नहीं होता यह तोऐसा अनिवर्चनीय सुख है जिसका वर्णन परे है, इस भाव को वही जान सकता है जो अन्तस् से किसी से जुड़ा हो। बड़े से बड़ा दर्द प्रेम के मरहम से ठीक हो जाता है–

"महिरम जान मालहम बेचो नेह नफा ठहराई।
सो आसिक को देन न भावै मजा न दिल की पाई।
फिरै माल कीमति घटि जावैं त्यागै कथा रहाई।
कठिन पीर कहिबे की नाहीं सहिबे ही बनि आई।"[2]

<u>प्रेम का संयोग पक्ष</u> :– बोधा के काव्य में प्रेम के दो संयोग पक्ष चित्रित होते है–पहला वह जिसमें कवि ने स्वयं 'सुभान' से प्रेम किया उस प्रेम का जी भर उपभोग किया, आकण्ठ उसमें डूबा और उमड़ाया। ऐसा प्रेम स्वयं का भोगा हुआ प्रेम है इसका चित्रण बड़ा ही सहज और रोचक है 'इश्कनामा' में प्रेम के संयोग पक्ष के कई उदाहरण हैं–

दूसरा प्रेम का संयोग पक्ष वह है "विरह वारीश" में चित्रित माधव कामकन्दला का प्रेम, माधव लीलावती का प्रेम है। प्रेमी और प्रेयसी के बीच मिलने की आशा हमेशा जीवन्त रहती है–

"घाटन बाटन हाटन में बाहिरहू सुनी एक जु बानी।
भूली कहूँ कि भ्रमी हौ कहूँ डोलती कैसी थकी थहरानी।
है जो लगी या दिलंदर में कवि बोधा सु तौ न किसु पहचानी।
तेरे लिए सुनि बालम रे ये दरेरे कहैं सब लोग दीवानी।।"[3]

---

1. इश्कनामा–14/79
2. इश्कनामा–15/89
3. इश्कनामा–9/48

प्रेयसी, अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में पलक पांवडे बिछाए हुए प्रतीक्षारत है, पता नहीं कब आगमन हो जाए, इसी कारण से तो वह अहर्निशि सौन्दर्य की जीवन्त प्रति मूर्ति बनी रहती है–

"देव दुआरे निहारि खड़ी मृगनैनी करै रवि की छवि छोटी।
हाथ में मालती माल लियें चली भीतरैं ताहि गोसाईं अँगोटी।
पाइन तें सिख लौं लखि के कवि बोधा मजा बरनी यक छोटी।
भाल में रोरी की बेंदी लसी है ससी में लसी मनो वीर बहोटी।"[1]

इस प्रेम के मिलन में जहाँ एक ओर सामाजिक, नैतिक मान्यताएं बाधा के रूप में उपस्थित हो जाती हैं तो दूसरी तरफ सास का प्रचण्ड कोप, ननद और जेठानी के तीखे उलहनें भी कम बाधक नहीं हैं। प्रेम के आगे पारिवारिक बन्धन कहीं झूठे, कहीं व्यर्थ लगने लगते हैं–

'खरी सासु धरी न छमा करिहै निसिवासर त्रास नहीं मरबी।
सदा भौहें चढ़ाए रहै ननदी यों जेठानी की तीखी सुनें जरबी।
कवि बोधा न संग तिहारो चहें यह नाहक नेह फँदा परबी।
बड़ी आँखै तिहारी लगै ये लला लवि जैहैं कहूँ तो कहा करबी।"[2]

जिसके हृदय में प्रेम का रोग लग जाता है वह संन्यासी अवस्था में पहुँच जाता है, सुख दुःख से वह परे, पाप–पुण्य की चिन्ता न करता हुआ काम और क्रोध से दूर; अगर चिन्ता करता है तो सिर्फ प्रेम की । ऐसी स्थिति प्रेमी और प्रेयसी दोनों की होती है दोनों ही प्रेम पयोधि में सिंचित होते हैं–

'सुखमूल गए दुःखमूल लए पुनि पापरु छड़ाई दई।
कबौं काम न क्रोध औ लोभ गहें समुझें सम नेकी बदी की ठई।
कवि बोधा गही छबि साँवरे की उर में यह प्रेम कियारी बई।
तुम होउ सबै महरानी अबै हम तौ अब राम दीवानी भई।"[3]

---

1. इश्कनामा – 9/49
2. इश्कनामा – 9/47
3. इश्कनामा – 10/58

जैसा कि मैं लिख चूकी हूँ कि बोधा ने दो तरह के प्रेम का चित्रण किया एक तो सुभान से स्वयं किया हुआ प्रेम का चित्रण, दूसरा माधव के माध्यम से दूसरे प्रेम का चित्रण प्रस्तुत किया। माधव और लीलावती प्रथम दर्शन में ही एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं दोनों ही सुध बुध खो बैठते हैं

"बल्लभा बाल प्रिया बनिता मनभावदी बाम हितू गजनैनी।
चंद्रमुखी रवनी हे नितंबिनी पीन कुचा सुजनी पिक बैनी।
बोधा बखानत माधवा यों तरूनी धरनी गबड़ी सुखदैनी।
कामिनी कामदा प्यारी तिया अये लीलावती है कि तू मृगनैनी।"[1]

प्रेम में दृढ़ता, इतनी आस्था इतना विश्वास होता है कि हर तरह की यातनाएं सहने के लिए लोग तत्पर रहते है; प्रेम करने वाला तो सिर्फ यही कहता है

"हम तो तुमहें चाहि कै या जग को उपहास सह्यो अरू काम सहा।
पुनि पाप औ पुन्य विचार्यो नहीं परलोक हू लोक को चित्त चहा।
इतने पै तजौ तौ तिहारो बनै कवि बोधा हमें कहने कौ रहा।
जिन प्रेम मुकाबले पीठ दई नर ते जग बीच जिये तौ कहा।।"[2]

प्रेमी से प्रेयसी कहीं ज्यादा उदार सहृदय निस्वार्थ प्रेम करने वाली होती है, प्रेमी की भावना में कहीं खोट भी आ जाए तब भी उसे कोई मनो मालिन्य नहीं, कोई विषाद नहीं, क्योंकि उसने तो स्वार्थ की भावना से बहुत परे अन्तस् से जुड़ने का प्रयास किया

---

1. विरहवारीश – 92/11
2. विरहवारीश –32/33

"जिन पैं सयानी बारी लाज गृह काज त्रास,

सास को न मान्यो ओर कोऊ का बखोड़ि है।

जिन पै हुलास औ विलास पति बार बारे,

थकी ब्रजबासिनैं चरित्र केते जोड़िहैं।

बोधा कवि तिनहूँ जो ऐसी रीति कीन्हीं तौ का,

हमहूँ उन सी ह्वैहैं और प्रीति तोड़िहैं।

नेकी बदी ओड़िहैं बिपत्ति बरू गोड़िहैं जौ,

कान्ह हमें छोड़िहै तो हम तो न छोड़िहै।।"[1]

बोधा ने प्रेम के संयोग पक्ष का चित्रण करने के साथ–साथ सुभान के साथ रति–क्रीड़ा की आत्माभिव्यक्ति के चित्रणं बखूबी चित्रित किये हैं, वह स्त्री निश्चित ही धन्य है जो पति के प्रेम से तृप्त है, बोधा और सुजान का प्रेम कुछ ऐसा ही प्रेम था, इसी कारण से तो कवि ने प्रेम को अमरत्व प्रदान किया है –

"काँपत गात सकात बतात हैं साँकरी खोरि निसा अधियाँरी।

पातहूँ के खरके छरके घरके उर लाय रहै सुकुमारी।

बीच में बोधा रमे रसरीति मनो जग जीति चुंक्यो तिहि बारी।

यों दुरि केलि करें जग में नर धन्य वहै धनि है वह नारी।"[2]

बोधा ने प्रेम में कुछ वर्जनाएं भी चित्रित की है, क्योंकि यह प्रेम कोई आरोपित प्रेम नहीं था, सुभान को उन्होंने दिलो–दिमाग मनो–मस्तिष्क से चाहा था तभी तो वह कह सके थे कि अरसिक व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता, जिसके ऊपर पारिवारिक बन्धन हों, जो लोक–लज्जा के प्रपंच को स्वीकार करता हो, नैतिक मान्यताओं से जुड़ा हुआ हो, वह प्रेम के पंथ से बहुत दूर रहे, प्रेम एक जादू की तरह है जो मन से चढ़कर हृदय की गहराइयों तक उतर जाता है बोधा का कथन है कि –

---

1. विरहवारीश – 32/31

2. इश्कनामा – 18/108

"लोक की लाज औ सोच प्रलोक को वारियै प्रीति के ऊपर दोऊ।
गाँव को गेह को देह को नातो सनेह पै हातो करै पुनि सोऊ।
बोधा सों प्रीति निवाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीत डरात जौ मीत तौ प्रीति के पैड़े पड़ो जिस कोऊ।"[1]

संयोग में वियोग :–

प्रेमी जब प्रेम की चरम स्थिति में पहुँच जाता है, तो वह प्रेयसी से इतना जुड़ जाता है कि उसे इस बात का भय बना रहता है कि कहीं प्रिय से विलग ना होना पड़े; इसी कारण से संयोग की स्थिति में भी उसे वियोग की आशंका बनी रहती है, वह संयोग सुख का आनन्द नहीं उठा पाता –

"बोधा किसू सों कहा कहिये जो विथा सुनि फेर रहे अरगाइकै।
याते भलो मुख मौन धरौ कै करौ उपचार हिये थिर धाइकै।
ऐसों न कोऊ मिल्यो कबहूँ जो कहै हित रंच दया उर लाइकै।
आवत है मुख लौं बढ़िकै पुनि पीर रहै हिय में ही समाइकै।"[2]

संयोग के पश्चात् भय के कारण, लज्जा के कारण अपनी बात को नहीं कह पाते हैं, परिणाम स्वरूप स्वप्न में एक दूसरे को देखते हैं जाग्रत–अवस्था में व्यथित होते हैं, और जब उनका पुनर्मिलन होता है तो बिछड़ने का भय एक बार फिर व्याप्त हो जाता है –

"मेरे तेरे मिलन में अन्तर कबहूँ नाहिं।
तूँ मेरे जिय में बसत जिय मेरे हिय माँहि।"[3]

बोधा सुभान हितू सों कहै झिरवाइकै झारि कै फेरि झिरे ना।
फेरि ना फूली निवारी उतै उन नारिन सों फिरि कै अभिरे ना।

---

1. विरहवारीश 49/64
2. विरहवारीश 94/37
3. विरहवारीश 127/69

फेरि ना ऊसी भई अखती कबहूँ उहि बाग के घेरि ना।
खोरन खोलिबो संग सखीन के वे दिन भावदी फेरि फिरे ना।।"[1]

यारा मिलन बहारां बिछुरंद ताहिँ पुन हंसं नहीं।
बिछुरन दरद अपारं। संहं नाति प्रीय बिछुरते।"[2]

सुभान के सौन्दर्य सारे विश्व का रूप सौन्दर्य न्यौछावर है संसार में सारे लोग मिल जाएं, लेकिन सुभान से अगर संयोग नहीं हुआ तो मानव जीवन मिलना व्यर्थ है, जीवन की सार्थकता तो तभी है जब जीवन में सुभान जैसी प्रेयसी हो

"एक सुभान के आनन पै कुरवान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयों सतऋतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसकाहट ताको।
सो कजरा गुजरान जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरान तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहिं जान मिलै तो जहान कहाँ को।"[3]

प्रेम में वियोग :–

जहाँ प्रेम में संयोग और वियोग दो पक्ष होते हैं, वहीं वियोग वह कसौटी है जिससे प्रेम की घनिष्ठता का परिचय प्राप्त होता है, प्रमुदित होता है, सुखद संयोग की स्थिति में प्रेमी आह्लादित होता है, प्रेम की तरंगों में आकण्ठ डूब जाता है तो विरह की स्थिति में रोता–चीखता चिल्लाता है –

बोधा की बिल्कुल यही मनोवैज्ञानिक स्थिति है, अपने प्रेम की पीड़ा को किससे कहें –

---

1. विरहवारीश – 128/71
2. विरहवारीश – 128/72
3. इश्कनामा – 6/31

कहिबे कौ व्यथा सुनिबे कौं हँसी को दया सुनिकै उर आनतु है।
अरू पीर घटै तजि धीर सखी दुख को नहीं का पै बखानतु है।
कवि बोधा कहे में सवाद कहा को हमारी कही पुनि मानतु है।
हमें पूरी लगी कै अधूरी अधूरी लगी यह जीव हमारोई जानतु है।"[1]

हृदय की गहन मार्मिक पीड़ा को विरही व्यक्ति ही समझ सकता है, जिसने प्रेम किया ही नहीं अन्तस् में नेह की भावना ने जन्म ही नहीं लिया वह वियोग को जान ही नही सकता। वियोग की स्थिति को समझने के लिए वियोगी बनना पड़ता है, तभी इस मर्म को गहराई से पहचाना जा सकता है, इसमें एक ओर जहाँ वेदना है, दर्द की चुभन का एहसास है तो दूसरी ओर प्रेयसी की मादक मधुर जन्य स्मृति भी धरोहर के रूप में संचित है–

काहू सो कहा कहियै अव है यह वात अनैसी कहै ते कहावत।
कोऊ कहा कहिहै सुनिहै कही काहू की कौनौ हमैं नहिं भावत।
वोधा कहे को परेखो कहा दुनिया सब माँस की जीभ चलावत।
जाहि जो जाके हितू ने दई वह छोड़े बनै नहिं ओढ़ने आवत।"[2]

विरह की अधिकता उस समय और कष्टदायिनी प्रतीत होती है, उद्दीपक ऋतु होती है, पावस की रिमझिम बूँदें, पपीहे की पिउ–पीउ की ध्वनि चित्त में प्रेमी की चाह और बढ़ा देती है–

"रितु पावस स्याम घटा उनई लखि कै मन धिरातो नहीं।
पुनि दादुर मोर पपीहन की सुनि कै धुनि चित्तथिरातो नहीँ।
जब तें बिछुरे कवि बोधा हितू तबतें दाह सिरातो नहीं।
हम कौन सो परि कहैं अपनी दिलदार तौ कोऊ दिखातो नहीं।[3]

मधुमास की मादक ऋतु, उस समय कष्टित करती है, जब आम की अमराइयों में कोयल कूकती है। प्रेम के वियोग से पीड़ित विवश होकर हृदय

---

1. इश्कनामा – 4/22
2. इश्कनामा – 4/24
3. इश्कनामा – 6/30

थाम लेता है, न दिन को चैन और न ही रात्रि को नींद। प्रेमी विचारा प्रार्थना के सिवा कर ही क्या सकता है–

"बैठि रसालन के बन में अधराति कहूँ रन सो ललकारति।
नाहक बैर परी विरहीन के कूक वियोग के लूकन जारति।
बोधा अनेक कियो विनती रतिकौ न कहूँ करूना उर धारति।
बाल मरै मधुमास छकी यह क्वैलिया पापिनि पीसेई डारति।"[1]

जीवन में जब सुभान थी तो हर क्षण में रमणीयता थी, हर पल हँसता हुआ जीवन्त दिखायी देता था, लेकिन सुभान के दूर जाते ही सब कुछ विपरीत हो गया, यहाँ तक कि भूख और नींद भी गायब हो गयी –

निसि बासर नींद औ भूख नहीं जबतें हिये में यह आनि बसी।
मिलते न बनै जग की भय तें बरजी न रहै हिय की हुलसी।
कवि बोधा सुनैहे सुभान हितू उर अंतर प्रेम की गाँस गसी।
तिनको कल कैसे परै निरद्वे जिनकों है कुसाँगरे आँख कसी।"[2]

सँजीवनी मूल की तरह सुभान बोधा के जीवन से चली गयी, सारा जीवन शून्य हो गया, तमाम लोग समझाते है, लेकिन मन धैर्य धारण नहीं करता क्योंकि सुभान ही तो सर्वस्व थीं–

"बात नहीं समुझावैं सबै यह पीर हमारो न जानत कोई।
का करै लैकै सिखावन को जिय जाहि को आपने हाथ न होई।
बोधा कदाचित जानै वहै वहिके जिय में जिन बेदन बोई।
जातें मिटै यह पीर सरीर की है वह मूरि सजीवनि सोई।।"[3]

सुभान का सानिध्य ही बोधा का उद्‌देश्य है, उसकी माधुर्य मूर्ति हृदय में अहर्निशि विद्यमान रहती है, उसको देखने से ही सब कुछ मिल जाता था, आज भी वह समीपस्थ नहीं है, उसकी स्मृति ही धरोहर के रूप में अक्षुण्ण है।

---

1. इश्कनामा – 7/37
2. इश्कनामा – 7/39
3. इश्कनामा – 7/40

उसकी स्मृति जहाँ एक ओर व्यथित करती है तो दूसरी ओर इस वेदना से आत्मीय सुख मिलता है, तभी तो उसकी स्मृति के सहारे ही जीवन जीने का प्रयास करता है–

"पगनि परो री प्रान काहू सों पगे जो चूर,
होत मगरूरी मगरूरियै जगी रहै।
हेरनि हँसनि बतरैवै को कौन स्वाद,
उन्माद तें और पीर तन में पगी रहै।
बोधा कवि जो है मेरे हितू कों सुहाती जीव,
ताही में खगो रहै सोई जी में खगी रहै।
कैसी करौं कहाँ जाऊँ कासों कहौं दई कहूँ,
मन तौ लगे ना चित मन में लगी रहै।"[1]

यदि प्रेयसी सामने होती तो उसको बताया जाता कि प्रेम विरह की पीड़ा कितनी असह्य विशद एवं गम्भीर होती है, जब वह भी सामने नहीं है तो वियोग जन्य कष्ट को किससे सुनाएं किससे कहें। घायल की गति तो घायल प्रेमी ही समझ सकता है, शेष तो उपहास करते हैं–

"दिलबर होय तासों दिल की बखानै पीर,
हीन दिल कैसे दिल दरद की जानि है।
जिनकैं लगी ना सो का पीर जानै घायल की,
घायल की पीर कों तो घायल ही प्रमानि है।
बोधा कवि बिछुरी जौ मालती नवेली तौ है,
ओरऊ कली न तौन दरद बितानि है।
भूले जिन भरम गमावै चंचरीक कैसे,
अपत करील तेरो दरद बखानिहै।"[2]

कामी व्यक्ति को ज्ञान का उपदेश देना मूर्खतापूर्ण कार्य है, तो

---

1. विरहवारीश – 84/38
2. विरहवारीश – 85/39

नपुंसक व्यक्ति के सामने मृगनैनी की चर्चा व्यर्थ है, तो जिसने विरह के कष्ट को देखा और समझा नहीं है उसके सामने प्रेम वर्णन व्यर्थ है –

"ब्याउर की पीर कैसे बाँझ पहिचानै कैसे, रागिन की बात काऊ कामी नर मानिहै।
कैसे कोऊ ज्ञानी काम कथन प्रमान करै, गुर को संवाद कैसे बाउरो बखानिहै।
कैसे मृगनैनी भावै पुरूष नपुंसक कों कवि को कवित्त कैसे सठ पहचानिहै।
जानै कहा कोऊ जापै बीत्यो न बियोग बोधा, बिरही की पीर क्यौ विरही पहचानिहै।"[1]

प्रेम वैषम्य :–

बोधा के काव्य की विशेषता यह है कि उन्होंने प्रेम का वर्णन करते समय प्रेम मार्गी विषमता का गम्भीरता से वर्णन किया है, सुभान से उनको प्रेम हुआ, प्रिय की निष्ठुरता ने उन्हें व्यथित किया, इतना सब कुछ सह लेने के बाद भी वह सुभान से विमुख ना हो सके। उनका मन हमेशा प्रेयसी से जुड़ा रहा, उनका विचार था, कि सुभान प्रेम करे या ना करे, वो जीवन–पर्यन्त जुड़े रहेंगे, प्रेम करते रहेंगे, यह उनके प्रेम की पराकाष्ठा है; प्रेम की चरमोत्कर्ष स्थिति है। बोधा स्वयं जानते हैं कि प्रेम का मार्ग तो कंटकाकीर्ण है, इस मार्ग में विविधताएं तो हैं ही –

"उपचार औ नीच बिचारने ना उर अंतर वा छबि को घर है।
हमकों वह चाहै कि चाहै नहीं हम चाहियै वाहि बिथाहर है।
कवि बोधा कछु सक यामें नहीं भवसिंधु बजाइकै लै तरहै।
यह प्रीति की रीतिहि जानत सो परतीतिहि मानिकै जो करहै।"[2]

उनके प्रेम में कहीं निन्दा है, भर्त्सना है, फटकार है तो कहीं चाह। सुभान चाहे या ना चाहे बोधा तो उसे प्रेम करते रहेंगे, सामीप्स सुख मिले या ना मिले वे तो सुभान से प्रेम करते ही रहेंगे। ना मिल पाने के मूल में सामाजिक बन्धन के साथ ही साथ भाग्य की बिडम्बना भी थी, अन्यथा उनको मिलने से भला कौन रोक सकता था?

---

1. विरहवारीश – 90/33
2. इश्कनामा – 2/9

राजा का आदेश ही बोधा–सुभान के मिलन में बाधक है –

बोधा को इस बात में ही सन्तोष है, कि उनकी चाहत बरकरार है, लोग तमाम तरह के पुण्य कार्य करके यश प्राप्त करते हैं, धन वैभव प्राप्त करते हैं, लेकिन उन्होंने प्रेम का प्रतिदान करके प्रेम प्राप्त कर लिया, यह जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है –

"सत जज्ञ करे ते सुरेस भए करे जोग ते जीव जियावत हैं।
दिये दान के दौलति होति धनी तप के कियें राज को पावत हैं।
कवि बोधा सु तौ हम चाहत ना परतीति के प्रेम बढ़ावत हैं।
तुम्हें नीकी लगै ना लगै तौ भले हम जान अजान जनावत हैं।"[1]

जीवन में जब सुभान थीं, तो चारों तरफ बहार ही बहार थी, रूप लावण्य की मादकता से सारा उपवन चत्कृत था, सुभान के रूठते ही बहार बहार ही समाप्त हो गयी –

"बोधा सुभान हितू सों कही वे झिराव कै झारितें फेरि झिरे ना।
फेरि न फूली नेवारी उत उन बेलिन सों फिरिकै अभिरे ना।
फेरि न वैसी भई अखती कबहूँ बहि बाग में फेरि थिरे ना।
खोरिन खेलिबो संग सखीन के वे दिन भावति फेरि फिरे ना।"[2]

बोधा अपनी प्रेयसी को निरन्तर समझाते हैं, अनुनय विनय करते हैं, प्रेम करने वाले लोक और परलोक दोनों में यश पाते हैं, इस तरह की बातें कहते और सुनाते हैं, लेकिन जब वह देखते हैं कि उनके कहने का मनोनुकूल प्रभाव नही पड़ रहा तो वे प्रेयसी की निन्दा करने लगते है, स्थान–स्थान पर फटकार करते दिखायी देते है, ईश्वर तक की निन्दा करते है–

"भाल में लिखत कों भुलाने मेरी बेर कहूँ,
माखन के बीच फटकार चहियतु है।

---

1. इश्कनामा – 3/15
2. इश्कनामा – 13/73

सो ना चूक तेरी बोधा भावतो मिलो ना फिर,

बिछुरनि जानि याते खुसी रहियतु है।

जाके बड़े नैनन समाने मेरे नैन तासों,

बीच परि दीन्हों कैसे धीर गहियतु है।

भई नाहिं रंच तेहि कसाई तूँ तौ,

ऐसो निरदई तासों दई कहियतु है।"[1]

प्रेम का उदात्तीकरण :–

भावुक, सहृदय प्रेमी को प्रेम का उचित प्रतिदान नहीं मिल पाता, तो निष्ठुर प्रेमिका उसकी भावना से खिलवाड़ करती है, उसका हृदय विदीर्ण कर देती है तो हताश, निराश, कुंठित प्रेमी लौकिक बन्धनों को तोड़कर पारलौकिक प्रेम से जुड़ जाता है, बोधा ने सुभान से प्रेम किया, प्रेयसी ने सहृदयता का परिचय ना देकर निष्ठुरता का परिचय दिया, परिणामस्वरूप बोधा कृष्ण भक्ति से जुड़ गये। कृष्ण के रूप माधुरी को अपने हृदय में बसा लिया –

"जब तें ब्रजराज को रूप लख्यो तबतें उर और न आनतु है।

निसि बासर संग रहै उनके हमको धों कबै पहिचानतु है।

कवि बोधा भयो अलमस्त महा कहू काहू की सीख न मानतु है।

तुम ऐसेहिं योंहि लटी करती मन मेरी कही नहि ठानतु है।"[2]

यद्यपि बोधा ने कृष्ण से अपने को जोड़ लिया था, लेकिन कभी–कभी सुभान की स्मृति उन्हें रूला देती थी–

"सुन हे सुभान मेरो दरद अपार द्योस,

भोजन न भावै रैन रंचक न सोवत।

---

1. विरहवारीश –87/11
2. इश्कनामा –13/74

तेरीयै तलब तालावेली तन मेरे चैन,

भाव दिलहर इन आँखिन सों जोवत।

बोधा कवि चीकने चबाई घैर खाँड,

उठै मन में उठाई सो मन ही में गोवत।

निर्दई दई पै मेरो कौन बस प्यारी तू तौ,

अंदर में मेरो दिल अंदर में रोवत।"[1]

विरह वारीश को सुनकर राजा अतिशय प्रसन्न हुये और उन्होंने बोधा को 'सुभान' के साथ रहने का आदेश दे दिया। कवि की मुराद पूरी हो गयी, वह कृष्ण भक्ति के साथ सुभान–भक्ति में लीन हो गया।

उनकी कथा का नायक भी विरह विह्वल हो संन्यासी हो जाता है, लेकिन जैसे ही कन्दला लीलावती उसको मिल जाती है, विरह के साथ वैराग्य भाव भी समाप्त हो जाता है।

वास्तव में देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि बोधा के ऊपर फारसी शैली का प्रभाव अधिक था, इसी कारण से उर्दू भाषा की शायरी को उन्होंने स्वीकार किया था, लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की प्राप्ति की बात का खूब ढिंढोरा उनके द्वारा पीटा गया–

1. "होय मजाजी में जहाँ इश्क हकीकी खूब।
   सो साँचो ब्रजराज है जो मेरा महबूब।।"[2]

2. इश्क हकीकी है फुर माया। बिन मजाजी, किसी न पाया।"[3]

3. सुन सुजान यह इश्क मजाजी। जो दृढ़ एक हक्क दिलराजी।"[4]

इस जगह सूफी अन्दाज में वे कहते है–

बिछुरौ कहिहै कौन द्वै चित्त जब एकत्र हैं।
जाहिर जग में हौन आसिक की बेवाकिफी।।"[5]

---

1. विरह वारीश–59/22
2. विरह वारीश–25/38
3. विरहवारीश–54/40
4. विरहवारीश–56/56

परन्तु प्रेम पन्थ की जो गम्भीरता है, उसे बोधा सभाँल नहीं पाये, उनकी प्रेम वर्णना शुद्ध लौकिक है, वे तो मजाजी इश्क में अटक कर रह गये, हकीकी इश्क तक वे पहुँच नहीं सके, यह बात अलग है कि प्रेम द्वारा पारलौकिक संसार से जुड़ने का वाग्जाल उन्होंने अवश्य फैलाया, प्रेम को उदात्त रूप देने का सत्प्रयास किया ।

<u>काम प्रेम के विविध चित्रण</u> :– ज्वर विषम काम ज्वर होता है, इसका उपचार सहज नहीं यह विरही के रोम–रोम को मथ देता है, बोधा की बिल्कुल यही स्थिति है–

"भटभरे फिरौं सिगरी बसुधा सु बिसेखि लखौ सब एकरूखी।
जित बाल तितै खुसिहालसबै जित बाल नहीं तित हाल दुखी।
तब तौ रति चाह न दूजी रहै कवि बोधा सोहात वही सुरुखी।
दुख ठौर सबै बिधि और रचै सुख ठौर अकेली सरोजमुखी।"[1]

बोधा के साहित्य का आलोड़न–विलोड़न करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि सम्भवतः बोधा की काम–त्रसा पिपासित ही बनी रही, बहार तो उन्होंने देखी थी, लेकिन गहरे चटक रंग के साथ नहीं, बाहर की हरियाली देखने वाला मनुष्य अपने अन्तर्मन में भी हरियाली चाहता है, यह एक गहन सत्य है, इसी कारण सम्भवतः बोधा ने प्रेमी युग्म की भूरि – भूरि प्रशंसा की है–

काँपत गात सकात बतात हैं साँकरी खोरि निसा अधियाँरी।
पातहू के खरके छरकै घरकैं उर लाये रहे सुकुमारी।
बीच में बोधा रमें रसरीति मनो जग जीति चुक्यो तिहि बारी।
यों दुरि केलि करैं जग में नर धन्य वहै धनि है वह नारी।"[2]

---

1. इश्कनामा –18/103
2. इश्कनामा –18/108

बोधा तो सुभान के क्रीत–दास हैं, उसके गुणों पर न्यौछावर हैं, प्रेम में तल्लीन। उनको कुछ मिले न मिले अपना सब कुछ लुटाने के लिए तत्पर हैं –

"तब नेह नफा दिल मोल कियो छबि आपनी लैके बयाने दई।
पुनि माल लै दाम चुकायो नहीं मुलाकत चिन्हारिऊ भूल गई।
घटै कीमति बोधा जौ माल फिरै बजि कै वेवपार में टूट ठई।
उनकी पै बनै हम यों समझैं मनु बेच्यो न जानी कि लूट भई।"[1]

सुभान से जुड़ा बोधा नित्यप्रति अपने कुल देवता का स्मरण करता है, कि उनकी कृपा से ही दर्शन हो जायें, ऐसा न होने पर वह व्यग्र हो उठता है –

"नित गाउँ के नेह के देवता ध्याइ मनाइ भली विधि पाउँ परों।
तिनसों धुनिया विनती विनवों निसंक ह्वै भावतो अंक भरो।
यह चाड़ न बोधा सरी कबहूँ यहि पीरतें बीर दिवानी फिरों।
परवाह हमारी न जानै कछू मनु जाइ लग्यो कहु कैसें करो।"[2]

जिस तरह से सावन के अन्धे व्यक्ति को चतुर्दिक हरियाली ही हरियाली दिखती है, ऐसे ही प्रेम के भूखे बोधा को प्रेम की चाहत ही दृष्टिगत होती है –

कोटिक देखि फिरौं छवि मैं पैन कोउ छवै सम वा छबि जूझै।
आँखिन देखि जो ब्यानि तिन्है बिन आँखिन सो तौ जु बाहियै बूझे।
बोधा सुभान को आनन छोड़ि न आनन मोमन आन अरूझै।
जैसे मए लखि सावन के अँधरे नर को सु हरो–हरो सूझै।"[3]

---

1. इश्कनामा – 4/23
2. इश्कनामा – 10/53
3. इश्कनामा – 10/54

बोधा ने काम और प्रेम के विविध रूप प्रस्तुत किये हैं, प्रेयसी सुभान से कहते हैं, कि मैंने तुमको प्राण–प्रण से चाहा, परिणाम स्वरूप सारे संसार का मैं उपहास पात्र बना, पाप और पुण्य की व्याख्या किये बिना तुमसे जुड़ा रहा, सकाम होते हुए भी भावनाओं का उत्सर्जन करना पड़ा, लेकिन तुम ऐसी निष्ठुर हो कि परान्मुख ही रहीं –

"हम तौ तुम्हें चाहि कै या जिग को उपहास सह्यो अरू काम सहा।
पुनि पाप औ पुन्य विचार्यौ नहीं परलोक हू लोक कों चित्त चहा।
इतने पै तजौ तौ तिहारो बने कवि बोधा हमें कहने कौं रहा।
जिन प्रेम मुकाबले पीठ दई नर ते जग बीच जिये तो कहा।"[1]

प्रेम का मार्ग एक ओर जितना कठिन है, तो दूसरी ओर इसमें सामाजिक और मानसिक प्रताड़ना भी है, अपमान का घूँट पीकर भी प्रेयसी की ओर देखने की कामना बनी रहती है। निर्निमेष चकोर चन्द्रमा की तरफ देखता है, कमल, सूरज को देखकर ही सुख का अनुभव करता है, तो पतंगा, आग की लपटों से लिपटकर प्राणों का उत्सर्ग कर देता है, ठीक यही स्थिति प्रेम में विह्वल व्यक्ति की होती है –

"कह चकोर सुख लहत मीत कीन्हो रजनी पति।
कह कमलन कहँ देत भान सह हेत कीन्ह अति।
घुन कहँ कहा मिठास लकुट झूरी टकटोरत।
दीपक संग पतंग आय नाहक सिर फोरत।
नहिं तजत दुसह जद्यपि प्रगट बोधा कबि पूरी पगन।
है लगी जाहि जानत वही अजब एक मन की लगन।"[2]

प्रेम को स्वीकार करने वाले व्यक्ति को प्रेम करने वाले व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक दोनों ही रूपों में समर्थ और सक्षम बनाना चाहिए,

---

1. विरहवारीश – 32/33
2. विरहवारीश – 52/18

क्योंकि उसे विरह की तीक्ष्ण अग्नि में जलना पड़ता है, पग–पग यातनायें सहन करनी पड़ती है, और प्रेम सानिध्य की कामना में सुख के स्थान में दुख ही प्राप्त होता है, तथा निरन्तर अश्रु–प्रवाहित करना पड़ता है, इतना सब कुछ सहन करने के तदोपरान्त भी मौन होकर चुपचाप सब कुछ सहन करना पड़ता है –

"दहियै बिरहानल दावन सों निज पापग तापन का सहियै।
चहिये सुख तो सहिये दुख को दृगवारि पयोनिधि में बहियै।
कबि बोधा इतै पै हितू ना मिले मन की मन ही में पचै रहियै।
गहियै मुख मौन भई सो भई अपनी करी काहू सो का कहियै।"[1]

हर तरफ से हताश, निराश, व्यथित प्रेमी जब व्यग्र हो उठता है, तो उसे मानव का नहीं प्रकृति का ही विश्वास रह जाता है। इस प्रकृति को दौत्य कर्म करने के लिये आमन्त्रित करता है, शायद सहृदय या प्रकृति उसकी इस पीड़ा की सहभागिनी बन सके –

"सजल सरूप परमारथ सनेही बार
बेगि बलवान आयो गैन चढ़ि धाय है।
हौ तो परपीरक बिसेष जाहि जान्यो करि,
वृष्टि कै छाया म्हारी तपन बुझाय है।
उत्तर सुनाऊँ आयो उत्तर दिसा ते जोपै,
कौन देस कौन गाँव बसती बतायहै।
मौन मत होय एरे मेघा हे हमारे बीर
साँची कहु बालम बिदेसी कब आयहै।"[2]

आश्रय को आकृष्ट करने के लिए विभिन्न क्रियायें की जाती हैं, मीनाक्षी जैसी नायिका हमेशा हृदय में विद्यमान रहती है तो चन्द्रमुखी का ध्यान भावनाओं को उद्वेलित किये रहता है, उसका प्रेम ही इस शरीर को बनाये हुए

1. विरहवारीश – 59/24
2. विरहवारीश – 209/80

है, वरना शरीर तो इस संसार से कब प्रस्थानित हो गया होता –

"आवती ती हिरनाक्षी इतै वा झकोर के आखैं हितै भरी देत ती।
चौंधा लगावत चंद्रमुखी गजगामिन सो मगरूरी समेत ती।
बोधा वियोग करै सबको पिकबैनी कठोर हिये न सचेत ती।
जानती पीर गरीबन की अहे पीन कुचान हियो हरि लेत ती।"[1]

बोधा ने काम और प्रेम के हर रूप को अंतरंगता से समझा और भोगा था, प्रेम विषयक जितने भी प्रसंग होते हैं, गहन आत्मिक अनुभूति के साथ लेखनी चलायी थी। प्रेम को सजीव और जीवन्त रूप देने का प्रयास किया था, घनानंद के बाद बोधा ही ऐसे कवि हुए जिन्होंने प्रेम को जीवन्तता प्रदान की, अन्तस् की वेदनाओं को स्वाभाविक रूप से चित्रित किया, उनमें कृत्रिमता नहीं, इसीलिए साहित्य की अमूल्य धरोधर हैं –

"सुन हे प्रवीन पीर कौन पै जनैयै जो पै,
देखत ना निकट सलोनी नोनीधन कों।
ध्यान के धरत ही धड़ाको ऐसो लागो बिना,
प्यारी के संजोग समझाऊँ कैसे मन कों।
बोधा कवि भवन में कैसे हूँ रह्यो न जाये,
विरहदवागिते न जायो जाय बन कों।
सरद निसा में चंद निसिचर ऐसो ताकी,
चाँदनी चुरैल सो चबाए लेत तन कों।"[2]

घनानंद और बोधा में प्रेम विषयक साम्य :–

रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि घनानंद और बोधा के साहित्य का गहन अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ, कि घनानंद की प्रेमानुभूति स्वयं की भोगी हुई थी, उसमें स्वाभाविकता थी, इसी कारण से

1. विरहवारीश – 89/25
2. विरहवारीश – 88/19

घनानंद प्रेम में इस कदर डूबे कि सुध–बुध ही खो बैठे। सुजान से प्रेम किया, वैभव–विलास को अपने जीवन का अंग मानने वाली सुजान भला कब तक साथ दे पाती, परिणाम स्वरूप कवि का हृदय टूट गया और उन्होंने वृन्दावन की शरण ली। बोधा ने सुभान से प्रेम किया उसके प्रेम में डूबते, उमड़ते और तैरते रहे, सुभान से विश्वासघात मिलने पर हृदय विदीर्ण हुआ और लौकिकता से इनका व्यामोह भंग हो गया, क्योंकि सुभान इनके साथ नहीं चली।

घनानंद और बोधा के प्रेम का मूलाधार लौकिक है और सुजान सुभान उसके मूल में है, बाद में यह प्रेम पारलौकिक बना दोनों ही कवि प्रेम के पंथ को कठिन मानते हैं, घनानंद प्रेम में निश्छलता का वर्णन करते हुए दिखाई देते हैं – अति सूधो सनेह को मारग है – तो बोधा – 'प्रेम का पंथ कराल है री तलवार की धार पे धावनो है'– कहते हुए दिखाई देते हैं।

घनानंद और बोधा ये दोनों मानते हैं कि प्रेम का तत्त्व परम तत्त्व है जो जड़ और चेतन दोनों में विद्यमान है। घनानंद का विचार है कि प्रेम रहित व्यक्ति का संसर्ग नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह दोष देखता है, गुण नहीं तो बोधा का मन्तव्य है कि इस प्रेम से ही प्रेमी योगावस्था को प्राप्त हो जाता है, किन्तु अरसिक लोग इसके विषय में अज्ञानी ही बने रहते हैं। सैकड़ों यज्ञ करने से, तप करने से वह पुण्य प्राप्त नहीं होता जो प्रेम करने से प्राप्त होता है। घनानंद का प्रेम एक ओर तो लौकिक प्रेम है, जो सुजान से सम्बन्धित है तो दूसरा प्रेम पारलौकिक है और उनकी मान्यता है कि राधा और कृष्ण के पुण्य प्रताप के कारण ही सारा विश्व प्रकाशित है। बोधा ने 'विरहवारीश' रचना के माध्यम से माधव, लीलावती और काम कंदला के बीच में प्रेम की चरम परिणति दिखायी है। इस तरह दोनों ही रीतिमुक्त कवि प्रेम विषयक विचार पर एकमत हैं।

प्रेम के उद्‌भव को लेकर दोनों कवियों की मान्यताएं एक ही जैसी हैं। घनानंद के मन, हृदय, मस्तिष्क में सुजान ने अधिकार जमा लिया

है, कवि का समस्त काव्य, सुजान की कहानी मात्र बनकर रह गया है। सुजान के अतिरिक्त न किसी को देखना पसन्द करते हैं और न ही वर्णन करना, कहीं सुजान के गौर वर्ण की चर्चा है तो कहीं तिरछी चितवन की; सुजान का सौन्दर्य रूपी समुद्र कवि के हृदय में निरन्तर हिलकोरें लेता रहता है। अपनी प्रेयसी की निन्दा कवि को कभी सहन नहीं, प्रियतमा सुजान मेघ के समान असीम आनन्द देने वाली है, इसी कारण से तो घनानंद चकोर की भाँति उसकी तरफ देखते रहते हैं।

बोधा ने घनानंद की भाँति सुभान के प्रति अपनी अनन्यता प्रकट की है। प्रेयसी को देखकर प्रेमी के हृदय में प्रेम का स्फुरण हुआ, प्रियतमा की कुछ छवि ही ऐसी थी कि प्रथम दर्शन में ही प्रेम हो गया, क्योंकि बोधा की मान्यता है कि परिचय से ही घनिष्ठता होती है, घनिष्ठता प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। बोधा अपने को सुभान का क्रीत-दास समझते है, उसे देखकर अपना सब कुछ लुटा देते हैं।

घनानंद की मान्यता है कि संसार में सच्चे प्रेमी दुर्लभ हैं, फसली प्रेमी तो हर समय हर परिस्थिति में उपलब्ध हो जाते हैं, अन्तस् से चाहने वाला एक ही मिलता है। घनानंद ने अपनी प्रेयसी सुजान से सच्चा प्रेम किया, लेकिन उसने समुचित प्रतिदान नहीं दिया, परिणामस्वरूप कवि को विरह की तीव्र वेदना सहन करनी पड़ी और उन्होंने इस वेदना को सहा। रीतिमुक्त कवि नहीं चाहते थे कि किसी को भी उनके प्रेम का पता चल सके। वियोगावस्था को सहन करने की शक्ति और सामर्थ्य उनमें थी, क्योंकि वियोग-दाह को बताकर उपहास का पात्र नहीं बनना चाहते थे। विरह-जन्य की सुन्दर भावनाओं का चित्रण घनानंद के काव्य में चित्रित हुआ है।

बोधा की मान्यता है कि नारी ने सदैव सौन्दर्य के माध्यम से पुरूष को लुभाने का प्रयास किया है, लेकिन इसमें कहीं प्रेम नहीं। निःस्वार्थ

प्रेमी व्यक्ति को सच्चा प्रेम मिल जाता तो संसार की सारी निधि मिल जाती है, ऐसा प्रेमी न तो संसार की चिन्ता करता है और न अन्य किसी की। बोधा की मान्यता है कि प्रेम क्रय और विक्रय की भावनाओं से परे है, इसके विरह मे भी सुख है, इन्हीं विरही भावनाओं का सुन्दर चित्रण बोधा के साहित्य से प्राप्त होता है।

घनानंद ने प्रेम के संयोग पक्षा का चित्रण तीव्र भावानुभूति से प्रस्तुत किया है, यद्यपि संयोग के क्षण अल्प रहे, उन छन्दों को पढ़कर स्पष्ट होता है कि कवि ने सुजान का सामीप्य प्राप्त किया, ऐसे किसी भाव को वह गुप्त नहीं रखना चाहता; वह तो साहित्य की धरोहर है। प्रियतमा के साथ संभोग सुख की चरम परिणति का चित्रण भी कवि ने खुले रूप में चित्रित किया है, लेकिन इस वर्नन में परम्परागत शैली का ही वर्णन है, यह वर्णन रीतिबद्ध कवियों जैसा ही है, इसमें किसी प्रकार की नवीनता नहीं, कुछ अन्तर वर्णन शैली में है।

बोधा के साहित्य में प्रेम के संयोग पक्ष का चित्रण है, बोधा ने सुभान से प्रेम किया, उसके प्रेम में डूबा और उतराया साथ ही रति–क्रीड़ा का चित्रण बखूबी किय, इस वर्णन में उन्होंने स्वयं का भोगा हुआ चित्र, माधव–कामकंदला लीलावती के चित्र प्रस्तुत किये हैं। बोधा ने भी रीतिबद्ध कवियों की भांति चित्र वर्णित किये हैं।

हिन्दी साहित्य में घनानंद ही ऐसे कवि हुए हैं, जो संयोग में भी वियोग को देखते हैं। कवि ने संयोग में वियोग की चर्चा अनेक स्थलों पर की है, कहीं वह लौकिक रूप में कहीं कृष्ण की भक्ति के रूप में।

बोधा ने भी घनानंद की भाँति संयोग में वियोग के दृश्य प्रस्तुत किये हैं, लोक लज्जा और भय के कारण जब मिलते हैं तो अपनी वात कह नहीं पाते, बिछुड़ने के भय से मौन रह जाते हैं, 'विरहवारीश' और 'इश्कनामा' में इस तरह के चित्रण बहुतायत आये हैं।

प्रेम में वियोग शीर्षक के अन्तर्गत घनानंद ने इतना कुछ लिख डाला है कि उन्हें, "प्रेम का पीर" कहा जाने लगा, घनानंद की कविता में रीतिबद्ध कवियों की तरह वाह्य आडम्बर नहीं, कि नायिका निरन्तर उच्छवास लेती रहती है, कमल पंखुड़ियों से खरोंच लग जाती है, विरहिणी नायिका के ऊपर इत्र की शीतल जल धार छोड़ी जाती है, लेकिन विरह की उष्णता के कारण वह रास्ते में ही सूख जाती है, इस तरह के ऊहात्मक चित्रण घनानंद ने प्रस्तुत नहीं किये, उनका विरह सामान्य प्राणी का विरह है, विशेषता यह है कि विरह को वह हृदय से लगा कर रखना चाहते हैं, इस वर्णन में कृत्रिमता नहीं स्वाभाविकता है।

बोधा ने घनानंद की भाँति प्रेम में वियोग वर्णन का चित्रण स्वाभाविक रूप से किया है। बोधा ने उद्दीपक ऋतु के आने पर कृत्रिमता की जगह सजीवता का मनोहारिता का रूप चित्रित किया है, सुभान स्मृति को हृदय से लगाये हुए विरह में भी सुख का अनुभव करते हैं। रीतिबद्ध कवियों की जैसी उछलकूद उनके साहित्य में कहीं भी परिलक्षित नहीं होती, विरहव्यापार का स्वाभाविक पाठकों के मन को मोह लेता है, इस वर्णन में जीवन्तता है, प्राणमयता है, तो आत्मानुभूति है।

घनानंद के प्रेम वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्वयं कवि ने अपने प्रेम मार्ग की विषमता का वर्णन किया है।

कवि का निजी जीवन विषमतओं से घिरा रहा है। जीवन में जो सुख मिला वह क्षणिक था, बाद में जो प्रेम सुख प्राप्त हुआ वह आध्यात्मिक था।

घनानंद के काव्य में सर्वाधिक भाव जो मिलता है, वह है प्रेम वैषम्य सुजान की बेवफाई को स्वयं कवि ने स्वीकार कर लिया है, इस वर्णन में भी कवि ने भोगा हुआ यथार्थ लिखा है, रीतिबद्ध कवियों की कृत्रिमता जैसे भाव से वह बहुत दूर रहे, सुजान से बिछुड़ जाने पर भी कवि के हृदय में सहज भाव है, सम्मान है, आदर है। यहाँ पर मैं एक बात स्पष्ट कहना चाहूँगी कि 'प्रेम वैषम्य' और 'प्रेम की पीर' घनानंद के विरह की मूल सम्पदा है,

यदि इन दोनों को निकाल दिया जाये तो उनका सारा साहित्य नीरस हो जायेगा।

घनानंद की भाँति बोधा ने भी प्रेम वैषम्य को गम्भीरता से वर्णित किया है– वे जीवन–पर्यन्त सुभान से विमुख ना हो सके, इस प्रेम वैषम्य के मूल में वे सामीप्य सुख चाहते थे, लेकिन सामाजिक बन्धनों और भाग्य की विडम्बना ने उन्हें इस सुख से वंचित किया, उनके प्रेम में कहीं भर्त्सना है, कहीं फटकार है और कहीं निन्दा है लेकिन सुभान पर इसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा।

हिन्दी साहित्य का 'छायावाद' लौकिक प्रेम अनुभूतियों के साथ–साथ पारलौकिकता से जुड़ गया था, घनानंद पहले लौकिक बने और फिर ज्ञानी बनकर राधा–कृष्ण की भक्ति से जुड़ गये। उनके हृदय में वृन्दावन के प्रति असीम अनुराग था, इसी कारण से जीवन–पर्यन्त वृन्दावन में ही रहे। घनानंद की रचना 'इश्कलता' में सूफी सन्तों जैसी व्याकुलता है ओर उनका सारा प्रेम पारलौकिक अवस्था में पहुँचकर असीम सुख देने लगा था।

घनानंद की भाँति बोधा का भी लौकिक प्रेम सुभान से था, निष्ठुर प्रेमिका ने उनकी भावना से खिलवाड़ किया, निष्कासित होने पर साथ नहीं चली, परिणामस्वरूप हृदय विदीर्ण हो गया, और कवि कृष्ण भी पारलौकिक भक्ति की भाव–भूमि से जुड़ गया, बोधा की रचना 'विरहवारीश' इस बात का स्पष्ट प्रमाण देती है कि लौकिकता के धरातल से उठ कर पारलौकिकता की पृष्ठ भूमि से जा जुड़े। बोधा ने भी घनानंद की भाँति फारसी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, उनमें भी सूफी जैसी भावुकता है, विरह भावना काम एवं प्रेम विषयक विविध चित्रों को उकेरते समय घनानंद ने अतिश्योक्ति का भी सहारा लिया है, इतना मात्र कह देने से घनानंद के समग्र साहित्य का मूल्यांकन कहीं कम नहीं हो जाता, यह वर्णन अनवरूद्ध है, अकुण्ठ है और इसकी वेगवती धारा संयम के साथ प्रवाहित होती है, यह ऐसी भावना है जो

रीतिबद्ध कवियों की भीड़ से उनको अलग खड़ा करती है, तभी तो मैं निसंकोच कह सकती हूँ कि रीतिमुक्त कवियों में घनानंद की भावना सर्वोत्कृष्ट, अतुलनीय, बेनजीर, अद्वितीय है।

घनानंद की भाँति बोधा ने भी काम–प्रेम के विविध चित्रण प्रस्तुत किये हैं, सुभान पर पूर्णतया समर्पित बोधा ने अपमान और मानसिक प्रताड़ना का सहते हुए भी प्रेम की पराकाष्ठा को मर्यादित रूप में बनाये रखा, उनके प्रेम में जीवन्तता है, तन्मयता है और स्वाभाविकता है। काम प्रेम का चित्रण करते समय रीतिबद्ध कवियों ने ऊहात्मक पद्धति का सहारा लिया, कृत्रिमता का आवरण चढ़ाया इसी कारण से उनके वर्णन अतिरंजित हो गये, जबकि रीतिमुक्त कवि घनानंद ने इन दृश्यों को चित्रित करने के लिए स्वाभाविकता का ही आश्रय लिया, क्योंकि यह उनका स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ था। घनानंद के बाद बोधा रीतिमुक्त धारा में प्रेम के स्वाभाविक रम्य, भव्याकर्षक चित्रण प्रस्तुत किये हैं।

घनानंद और बोधा में प्रेम–विषयक वैषम्य –

घनानंद और बोधा दोनों ही रीतिमुक्त स्वच्छन्द धारा के कवि हैं, घनानंद ने सुजान से प्रेम किया तो बोधा ने सुभान से, दोनों ने प्रेम का स्वाभाविक चित्रण किया, पाठकों को प्रेम की असीम गहराई तक ले गये, यद्यपि दोनों ही रीतिमुक्त धारा के कवि हैं, लेकिन प्रेम विषयक भावनाओं को लेकर कहीं ना कहीं वैषम्य अवश्य है।

यदि मैं प्रेम के महत्त्व को ही लूँ तो मैं यह पाती हूँ, कि घनानंद के साहित्य में दो तरह का प्रेम है, एक लौकिक दूसरा पारलौकिक सुजान को भूलकर वह राधा और कृष्ण से जुड़े फिर कवि का समस्त पारलौकिक प्रेम हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर बन गया। घनानंद की महत्ता इस बात में है, कि वे लौकिक प्रेम का रसास्वादन कराने में सफल रहे तो पारलौकिक होने पर श्रद्धा और भक्ति को पौशाले की तरह प्रवाहित करते दिखाई दिये, घनानंद को कुछ आलोचक भक्त कहने लगे तो कुछ श्रृंगारी।

बोधा ने भी सुभान से प्रेम किया, प्रेम के महत्व को चित्रित करने को प्रयास किया, बाद में राधा और कृष्ण की भक्ति से जुड़े, माधव-कामकंदला, कथा के माध्यम से प्रेम के महत्व को वर्णित करने का प्रयास किया लेकिन बोधा प्रेम की उस भाव-भूमि तक नहीं पहुँच पाये, जहाँ पर घनानंद स्थापित हैं, बोधा का साहित्य कहीं-कहीं कृत्रिम और अस्वाभाविक लगने लगा।

प्रेम के पंथ को घनानंद ने कठिन मार्ग कहा है, सर्वस्व समर्पण करने वाला ही निस्वार्थ प्रेमी ही इस मार्ग में चल सकता है, और ऐसा घनानंद ने कर भी दिखाया, सुजान के लिये उन्होंने राज वैभव छोड़ा, धन्य धान्य विलासिता छोड़ी, जोगी बन गये, सुजान ही उस कठिन स्मृति को हृदय में बसाये हुए रोते-कलपते वृन्दावन में बस गये।

बोधा सुभान से जुड़े लेकिन सामाजिक बन्धनों के कारण राजा के आदेश से सुभान से विमुख हो गये, बोधा ना तो लौकिक प्रेम में ही सफल रहे, और ना ही पारलौकिक प्रेम को श्रद्धा और भक्ति के रूप में चित्रित करने में दक्ष बन सके। घनानंद और बोधा के प्रेम में मूल यही वैषम्य है। राजा ने 'विरहवारीश' को सुनकर सुभान के साथ रहने का आदेश दे दिया था, इसी कारण बोधा, पारलौकिक प्रेम का सफल-चित्रण न कर सके। घनानंद के काव्य में सर्वत्र प्रेम ही प्रेम के दर्शन होते हैं, चाहे वह लौकिक हो या पारलौकिक। बोधा के काव्य में पारलौकिता का अभाव है, श्रद्धा-भक्ति से वे दूर हैं।

प्रेम के संयोग पक्ष का चित्रण करते समय भोगे हुए यथार्थ का सहजता से चित्रण किया, जो बिल्कुल स्वाभाविक रूप से पाठकों को सुग्राह्य हो जाता है, संयोग की जितनी क्रीड़ायें, जितनी दशायें हो सकती हैं, उनका वर्जन चरम-सुख की अनुभूति के साथ प्रस्तुत किया गया है, बोधा सुभान से जुड़ें, अन्तस् से जुड़ें, प्रेम के संयोग पक्ष को जिस गहराई के साथ घनानंद चित्रित कर गये, बोधा पूर्णतया अक्षम रहे, शारीरिक मिलन के समय की सभी मनोवैज्ञानिक स्थितियों का स्वाभाविक चित्रण घनानंद ने किया, बोधा इस तरह के चित्रण में भी पीछे रह गये, क्योंकि

उन्होंने कृत्रिमता का सहारा लिया।

घनानंद ऐसे कवि हैं, जिन्होंने संयोग में भी वियोग को प्रतिष्ठित किया, इस तरह के तमाम वर्णन उनके साहित्य में चित्रित हैं, कि संयोग सुख की अवस्था में भी वियोग की आशंका भय–भीत किये है, चूँकि सुजान वेश्या थी, और घनानंद प्रतिष्ठित राजकवि; संयोग में कब वियोग आ जाये कवि स्वयं भयभीत थे, इसी कारण से इतनी सहजता से चित्रण कर पाये।

बोधा ने भी संयोग में वियोग की आशंका के चित्र तो प्रस्तुत किये, लेकिन भाव की गहराई उतनी नहीं है, जितनी घनानंद में थी, इस तरह के वर्णन में बोधा ने रीतिबद्ध कवियों की भावना का अनुधावन किया। घनानंद की कविता में रीतिबद्ध कवियों जैसा आडम्बर नहीं है, प्रेम में वियोग का चित्रण करते समय उनहोंने अतिश्योक्ति का कहीं भी सहारा नही लिया, वियोग अवस्था की सभी मनोवैज्ञानिक दशाओं का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है, उनका यह वर्णन प्रशान्त और गम्भीर है, जो कुछ भी हलचल है, वह अन्दर ही अन्दर है। बोधा ने प्रेम में वियोग का चित्रण तो किया है लेकिन आचार्य बनकर वियोग की मनोदशाओं की परिभाषा भी दे दी हैं, सहृदय पाठक रीतिबद्ध कवियों की आचार्यत्व भावना को पढ़ते–पढ़ते थक चुका है, उसके पास इतना अवकाश कहाँ कि वह परिभाषाओं को पढ़ सके या सुन सके। वियोग चित्रण करते समय बोधा की कही उपलब्धि नहीं है, घनानंद से वे इस मामले में बहुत पीछे छूट गये हैं।

घनानंद के काव्य में जो सर्वाधिक भाव मिलता है, वह प्रेम वैषम्य, सुजान की बेवफाई, निर्मोहिता, उदासीनता की भावना उनके काव्य का अंग है, इस वर्णन में घनानंद निष्काम प्रेमी की तरह उच्चतम आदर्श पर स्थापित दीखते हैं, उसमें कहीं प्रार्थना है तो कहीं व्यंग्य की फटकार भी है। बोधा ने प्रेम वैषम्य का चित्रण किया, लेकिन ना तो स्वाभाविक रूप से प्रार्थना ही कर पाये ना ही स्वाभाविक रूप से भर्त्सना ही कर पाये। इनमें जगह–जगह कृत्रिमता के दर्शन होते हैं, प्रेम विषमता को लेकर एक बात मैं यहाँ स्पष्ट कहना चाहूँगी कि घनानंद के साहित्य से प्रेम–वैषम्य को निकाल दिया जाये, तो उनके साहित्य में कुछ रह ही नहीं जाता, जबकि बोधा के साहित्य में ऐसा कहीं कुछ नहीं है।

काम और प्रेम के चित्रण करने में जितना घनानंद सफल रहे, बोधा सफलता की पहली सीढ़ी भी नहीं चढ़ पाये, यदि मैं यह कहूँ कि प्रेम के दृष्टिकोण में घनानंद सर्वश्रेष्ठ हैं, तो कोई भी अतिशयोक्ति नहीं, क्योंकि घनानंद की स्वयं की भोगी हुई भावनाएं है तो बोधा में आरोपित। रीतिमुक्त धारा घनानंद से प्रवाहित होती है, बोधा तो उस धारा के एक छोटे नद हैं, बोधा कई जगह प्रेम वर्णन में रीतिबद्ध कवियों के निकट दिखते हैं।

घनानंद और बोधा ऐसे स्वच्छन्दता वादी कवि हैं, जिनके आत्मिक भावों का प्रकाशन उनके काव्य में है। जो कविता आत्मा को आनन्दित करने की क्षमता रखती है वह परमानन्द तक पहुँच जाती है; इन दोनों कवियों ने रूप सौन्दर्य चित्रण, प्रेम वर्णन, शृंगार वर्णन से सहृदय पाठक की आत्मा को आन्दोलित आलोकित कर दिया। उनका प्रेम निश्छल और निष्पाप था, इसी कारण प्रेम के मार्मिक उद्‌गारों और स्त्री – पुरुष के मधुर सम्बन्ध के रमणीय प्रसंगों का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत कर सके। घनानंद के बारे में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ। बोधा में भी प्रेम का वही नशा, विरह की वही बेचैनी, भावुकता की वही लहर और निराशा में तड़पकर जान देने की वही चाह। जहाँ प्रेम भावना मांसल सौन्दर्य से आन्तरिक सौन्दर्य की ओर होती है। वहाँ वह प्रेम विशुद्ध तथा उच्च कोटि का माना जाता है। ऐसा प्रेम बोधा का है, जिसमें न तो व्यर्थ का शब्दाडम्बर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरोधी भावों का उत्कर्ष, वे श्रेष्ठ प्रेमी हैं जो प्रेम रस में निरत रहते हैं। प्रेम हृदय की आन्तरिक भावना है, उसमें किसी प्रकार की चातुरी प्रदर्शन नहीं, उसमें वासनात्मक प्रकृति की झलक शनैः-शनैः लुप्त हो जाती है।

घनानन्द–बोधा के प्रेम का मूल कारण – उनकी प्रेयसियों का अनिंद्य सौन्दर्य था, जो उनके रोम–रोम में बसा हुआ था, क्योकि वे उसकी सहज सुकुमारता

और अप्रतिम सुन्दरता के पुजारी थे। रूप वर्णन परम्परागत नहीं कल्पित नहीं, सहज नयापन और ताजगी से युक्त है। वे कभी मुख को निहारते, नेत्रों को सराहते, अरुण कपोलों की चमक से चकित होते तो कभी अंग दीप्ति, सलज्जता एवं यौवनोन्माद का चित्रण करते दिखायी देते। इस तरह सच्चे रिझवार होने का परिचय देते – सौन्दर्य चित्रण का ऐसा तारल्य जिसमें मांसलता जरा भी नहीं।

घनानंद – बोधा, विरह – अग्नि की ज्वाला में तप कर कुंदन बन चमक उठे, प्रेमी के विरह – दग्ध हृदय तथा उसके सूक्ष्मतिसूक्ष्म एवं अनिर्वचनीय मानसिक व्यापारों का जैसा सुन्दर वर्णन अपनी कविता के द्वारा उन्होंने किया वैसा बहुत कम कवि कर पाये हैं। प्रेम के जिन उन्मुक्त गायकों ने हिन्दी साहित्य के मध्य युग में रीति स्वच्छन्द श्रृंगार काव्य की धारा प्रवाहित की उनमें प्रधान हैं – रसखान, आलम, घनानंद, ठाकुर, बोधा एवं द्विजदेव। ऐसा प्रतीत होता है कि ये कवि प्रेम के लिए ही बने थे, लोक – लज्जा, रीति – मर्यादाओं से परे इनका प्रेम निर्बन्ध है, प्रेम इनका भोगा हुआ यथार्थ है। इनकी प्रेम गाथाओं से सहृदय पाठक परिचित हैं, वह आयातित नहीं तीव्र स्वानुभूति है। रसखान की सम्पूर्ण कविता ब्रज भाषा में है, निराडम्बर और प्रवाह पूर्ण भाषा में उन्होंने अपने हृदय का समस्त माधुर्य उड़ेल दिया। आलम प्रेमी थे तथा उनका काव्य उनकी भावनाओं तथा अनुभूतियों की सहज स्वाभाविक अभिव्यंजना है। उसमें प्रेम जन्य व्यथा, मिलन का आनन्द और विरह – वेदना का चित्रण है, अभिव्यंजना तथा वर्णित भावोद्गारों के सुन्दर साम्य हैं। ठाकुर भी भावुक, सरस तथा प्रेमी कवि थे, प्रेम की अनन्यता को दशार्या है, वे प्रेम में ही निमग्न रहना चाहते हैं। सहज और सीधी प्रेमाभिव्यक्ति और लोकपर्वो में अनूठा उत्साह के अतिरिक्त भक्ति भावना से ओत – प्रोत उनके कवित्त दोहे मिलते हैं। ठाकुर ने लोकोक्तियों और मुहावरों का इतना उन्मुक्त प्रयोग किया है कि वे एक नवीन मार्ग की स्थापना करते से लगते हैं। द्विज देव ने प्रेम – श्रृंगार के साथ ही साथ ऋतुओं का स्वच्छन्द वर्णन प्रस्तुत किया है, सम्भवतः उनको

प्रकृति से ही मोह था, इसी कारण उसी के वर्णन में अपनी समस्त प्रतिभा को लगा दिया। इन सभी कवियों का मूल स्वर प्रेम है और प्रेम भी [illegible] पक्ष को ज्यादा निखार दे पाये। घनानंद - बोधा में रसखान की सी [illegible] की अनिर्वचनीयता है, ठाकुर की तन्मयता है, आलम की सी उन्मुक्तता है।

बोधा से घनानंद श्रेष्ठ हैं क्योंकि घनानंद की मार्मिकता, असाधारण काव्य सौष्ठव, तीव्र गहन, उत्कृष्ट समृद्ध भावों की अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। विरोध - मूलक चत्मकार वैचित्र्य, लाक्षणिकता, वक्रोक्ति का अनुपम सौन्दर्य, जिससे भाषा समृद्ध हुई है - घनानंद को रीति मुक्त कवियों ने सवोच्च स्थान पर अधीष्ठित करती है। सरल भाषा के द्वारा मार्मिक भावों को हृदय में गहराई तक उतारना इनके बाएं हाथ का खेल था, तभी तो अपनी धारा के तो ये एक मात्र कवि - सम्राट हैं। प्रशस्तिकर्त्ता ब्रजनाथ की बात सटीक - सार्थक है -

"समझै कविता घनआनंद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी।"

सहायक ग्रन्थ

आलोच्य काव्य

1. घन आनंद – ग्रन्थावली – सम्पादक – आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – वाणीवितान बनारस – प्रथम – 2009

2. बोधा ग्रन्थावली – सम्पादक – आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी – प्रथम सं0 – 2031

सन्दर्भ ग्रन्थ – (हिन्दी)

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – सम्पा0– डॉ0 नगेन्द्र – नेशनल पब्लिशिंग हाउस – दिल्ली – द्वितीय संस्करण – 1978 ।

2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ0 रामकुमार वर्मा – रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद – पंचम – 1964 ।

3. घनआनन्द – डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा – रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर प्रथम – 1966 ।

4. घनआनंद काव्य – दर्शन – डॉ0 सहदेव वर्मा – अभिनव प्रकाशन, दिल्ली प्रथम – 1977 ।

5. घनानंद का रचना संसार – शशि सहगल – अभिनव प्रकाशन – दिल्ली प्रथम – 1980 ।

6. घनआनंद की काव्य साधना – डॉ0 सभापति मिश्र – चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद – प्रथम – 1989 ।

7. घनआनंद और स्वच्छन्द काव्य धारा – डॉ0 मनोहर लाल गौड़ – प्रथम नागरी प्रचारिणी सभा काशी – 2015 ।

8. घनानंद – डॉ0 गणेश सारस्वत – साहित्य निकेतन प्रथम संस्करण – 1979 ।

बन्धु विनोद – मिश्र बन्धु ।

10. शिवसिंह सरोज – ठाकुर शिवसिंह – सप्तम संस्करण ।

11. दि मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दूस्तान (हिन्दी अनुवाद) डॉ0 ग्रियर्सन ।

12. रीति कालीन कवियों की प्रेम व्यंजना – डॉ0 बच्चन सिंह – नागरी प्रचारणी सभा – वाराणसी – प्रथम – 2015 ।

13. रीति काव्य की भूमिका (पूर्वाद्ध) – डॉ0 नगेन्द्र – नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली – छठा संस्करण – 1969 ।

14. देव और उनकी कविता – डॉ0 नगेन्द्र – गौतम बुक डिपो – दिल्ली प्रथम – 1949 ।

15. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका – डॉ0 नगेन्द्र – नेशनल पब्लिशिंग हाउस तृतीय संस्करण – 1986 ।

16. छायावादी काव्य को व्यवहारिक सौन्दर्य शास्त्र – डॉ0 सूर्य प्रसाद दीक्षित लोक भारती प्रकाशन – प्रथम – 1993 ।

17. ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद – डॉ0 प्रभुदयाल मित्तल – द्वितीय संस्करण ।

18. आलक केलि – विद्यानिवास मिश्र – वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम – 1991 ।

19. सौन्दर्य तत्त्व की भूमिका – डॉ0 आनंद प्रकाश दीक्षित ।

20. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड) डॉ0 गणपति चन्द्रगुप्त लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद – चतुर्थ – 1994 ।

21. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका – डॉ0 फतह सिंह ।

22. शृंगार और साहित्य – डॉ0 रमाशंकर तिवारी – प्रथम – साहित्य भवन प्रा0 लि0 जीरो रोड, इलाहाबाद – 1975 ।

23. भारतीय साहित्य शास्त्र – बल्देव उपाध्याय ।

24. आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना – डॉ0 मधुर मालती सिंह – प्रथम आत्माराम एण्ड सन्स – दिल्ली – 1963 ।

25. कला और साहित्य में सुन्दर और असुन्दर – डॉ0 रामकुमार वर्मा ।

26. मंझन का सौन्दर्य – दर्शन – डॉ0 लालता प्रसाद सक्सेना ।

27. सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व – डॉ0 कुमार विमल – प्रथम – राजकमल प्रकाशन – दिल्ली – 1967 ।

28. चिन्तामणि – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

29. मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य में रूप सौन्दर्य – डॉ0 पुरुषोत्तम अग्रवाल, प्रथम – बोहरा प्रकाशन – जयपुर ।

30. सूर एवं तुलसी की सौन्दर्य भावना – डॉ0 बद्रीनारायण श्रोत्रिय – प्रथम चन्द्रलोक प्रकाशन – कानपुर 1991 ।

31. घन आनंद – श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी ।

32. हिन्दी रीति साहित्य – डॉ0 भगीरथ मिश्र – प्रथम – राजकमल प्रकाशन दिल्ली – 1956 ।

33. हिन्दी रीति कवियों की मौलिक देन – डॉ0 किशोरीलाल – प्रथम – साहित्य भवन, इलाहाबाद – 1971 ।

संस्कृत

1. साहित्य दर्पण –
2. अभिनव भारती –
3. नाट्यशास्त्र –
4. कामसूत्र –

अंग्रेजी

1. Process and Reality Nature and Life.
2. The Meaning of Beauty - ERIN NEWTON.
3. Sex in Relation to Society -HAVE LOK-ALIC. (1921) Ad.

पत्र – पत्रिकाएं

1. समालोचक का सौन्दर्यशास्त्र विशेषांक ।
2. जैनमर्मी आनंदघन – क्षितिमोहन – वीणा – नवम्बर – 1938 ।
3. आलोचना – सौन्दर्य तत्व एवं आलोचना के मानदण्डों का विकास – 1953 ।

****

*****

***